श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला—२३

अङ्ग-पूर्वज्ञाता, सिद्धान्तामृत-सागर, प्रवादिगजकेसरी
श्रीमद्धरसेनाचार्य
के
साक्षाद्विद्याशिष्य, ऋषिसमितिपति, दुर्नयान्धकाररवि
आचार्य पुष्पदन्तप्रणीत

सत्प्ररूपणासूत्र

हिन्दी अनुवाद और विशिष्ट शङ्का-समाधानसहित

सम्पादक-अनुवादक
सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री
प्राचार्य, स्याद्वाद-महाविद्यालय, काशी

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला प्रकाशन
डुमरॉवबाग, अस्सी, वाराणसी—५

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
प० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
डॉ० दरबारीलाल कोठिया, एम ए , पी-एच डी , न्यायाचार्य
रीडर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

•

प्रकाशक
मत्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला
१/१२८, डुमरांवबाग, अस्सी,
वाराणसी–५ (उ प्र)

•

प्रथम सस्करण ११०० प्रति
श्रुत-पञ्चमी,
ज्येष्ठ शुक्ला ५, वि० स० २०२८,
वीर निर्वाण सवत् २४९७,
२९ मई, १९७१

•

मूल्य पाँच रुपए

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर-प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी–१

प्रकाशकीय

'समयसार-प्रवचन' के वाद दिसम्बर १९६९ में 'मेरी जीवन गाथा' प्रथम भागके चौथे सस्करणका और १९ अप्रैल १९७० मे महावीर-जयन्तीपर 'तत्त्वार्थसार' का प्रकाशन हुआ था। 'समयसार-प्रवचन' जहाँ ग्रन्थमालाकी प्रकाशन-शृखलामें एक अपूर्व उपलब्धि है वहाँ 'तत्त्वार्थसार' का प्रकाशन भी उसकी एक नव्य भव्य देन है। ये दोनो ही कृतियाँ समादृत और लोकप्रिय हुई हैं।

हर्ष है कि आज हम उसी क्रममें श्रुत-पञ्चमी जैसे पावन पर्वपर 'षट्खण्डागमगत सत्प्ररूणासूत्र'को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर रहे हैं। सत्प्ररूपणासूत्रके कर्ता आचार्य पुष्पदन्त हैं, जो अङ्गो और पूर्वोके एक देश ज्ञाता, सिद्धान्तामृतसागर, प्रवादि-गज-केसरी श्रीमद्धरसेनाचार्यके साक्षाद्विद्याशिष्य थे और जिन्हें धवला-टीकाकार आचार्य वीरसेनने ऋषियो (मुनियो) की सभाका नायक (ऋषि-समिति-पति) और एकान्तवादरूप अन्धकारको दूर करनेवाला सूर्य (दुर्नयान्धकार-रवि) कहा है। आ० पुष्पदन्तने धरसेन स्वामीसे प्राप्त ज्ञानको 'सत्प्ररूपणा' के रूपमें सर्वप्रथम लिपिवद्ध किया था। यद्यपि यह 'सत्प्ररूपणा' धवला टीका और उसके हिन्दी व्याख्यानके साथ सन् १९३९ में श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्र शितावराय जैन साहित्योद्धारक फण्ड अमरावतीसे पट्खण्डागमकी प्रथम पुस्तकके रूपमें प्रकट हो चुकी है। किन्तु वह इतना विशाल ग्रन्थ है कि उसमें साधारण जिज्ञासुओंका प्रवेश दुष्कर है।

साधारण जिज्ञासुजन उस 'सत्प्ररूपणा' की अपूर्व ज्ञान-राशिसे वचित न रहें, इस दृष्टिसे समाज-के जाने अत पहचाने मनीषी सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री प्राचार्य स्याद्वाद-महाविद्यालय काशीने मूल 'सत्प्ररूपणा' का कई वर्ष पूर्व हिन्दी रूपान्तर किया था और धवलाटीकाके कुछ उपयोगी एव विशिष्ट शका-समाधानोको भी उसके साथ निवद्ध किया था। और अव आपने उसपर अपना महत्त्वपूर्ण प्राक्कथन भी लिखकर उसमें कितनी ही बातोपर प्रकाश डाला है जो विशेष ज्ञातव्य हैं। सक्षेपमें उस प्रयत्नका भी आपने सन्तुलित एव युक्तिपूर्ण उत्तर दिया है जिसके द्वारा दिगम्बर परम्परामें मूलागमरूपमें मान्य पट्खण्डागम-को अर्वाचीन और प्रज्ञापनाको प्राचीन वतानेका नया उपक्रम किया गया है। प्रसन्नता है कि हमारे अनुरोध पर आपने उसे श्री ग० वर्णी ग्रन्थमालाको प्रकाशनार्थ देनेकी कृपा की। इसके लिए ग्रन्थमाला-समिति आपकी आभारी है।

हमें आशा है इसके प्रकाशनसे साधारण जिज्ञासु भी मूल आगमोंके तत्त्वज्ञानसे उसी प्रकार लाभान्वित होगे, जिस प्रकार वे आचार्य गृद्धपिच्छ (उमास्वामी) के तत्त्वार्थसूत्रके स्वाध्याय, पाठ और श्रवणसे लाभ उठाते हैं।

गत ग्रीष्मावकाशमें परमपूज्य श्री १०८ आचार्य समन्तभद्र महाराजके पाद-सान्निध्यमें वाहुवली (कोल्हापुर) जाने और वहाँ कुछ दिन रहनेका सुअवसर मिला था। महाराजश्री गुरुकुलोकी स्थापनाद्वारा परकल्याण करते हुए भी आत्मकल्याणमें सतत् जागृत एव सलग्न रहते हैं। प्रतिदिन ज्ञान-चर्चा होती है। इस चर्चामें स्थानीय वन्धु भाग लेते हैं। विदुषीरत्न श्रीमती गजावेन तो द्रव्यानुयोग और करणानुयोगकी चर्चामें अत्यन्त निष्णात एवं सूक्ष्म प्रज्ञावती हैं तथा हमेशा जिज्ञासुवृत्ति रखती हैं। वाङ्मयके प्रति आपका अनन्य

अनुराग है। हमारी प्रेरणा पाकर आपने इस ग्रन्थके प्रकाशनमें एक सहस्र रुपया प्रदान किया है। उनके इस वाड्मयानुरागके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद है। यद्यपि उन्हें यह धन्यवाद-प्रकाशन रुचिकर नही लगेगा, क्योंकि वे अत्यन्त निरपेक्षवृत्ति हैं किन्तु कृतज्ञता-प्रकाशनकी प्रशस्त परम्पराका निर्वहण भी परमावश्यक है।

ग्रन्थमालाके सरक्षक-सदस्यगण भी धन्यवादार्ह हैं, जिनके आर्थिक सहयोगसे ग्रन्थमालाके लिए जिनवाणी-प्रकाशनका कार्य सुलभ हो गया है।

महावीर प्रेसके सचालक श्री वाबूलालजी फागुल्लको भी भुलाया नही जा सकता, जो ग्रन्थमालाके प्रत्येक प्रकाशनको सुरुचिपूर्ण वनानेमें योगदान करते हैं।

(डा०) नेमिचन्द्र शास्त्री
संयुक्त मन्त्री

(डा०) दरबारी लाल कोठिया
मंत्री

सम्पादकीय

कई वर्ष पूर्व जब षट्खण्डागमका प्रथम भाग—सत्प्ररूपणा अप्राप्य हो गया था तब उसकी अप्राप्यता और उपयोगिताको दृष्टिमें रखकर सत्प्ररूपणाके सूत्रोका धवलानुसारी यह अर्थ लिखा था। अर्थ लिखते समय केवल मूलसूत्रसे सम्बद्ध धवलाके अशोका ही अनुवाद देनेकी भावना रही है, प्रासगिक सब कथन छोड दिये गये है क्योकि सूत्रोका अर्थ समझनेमें उनकी उपयोगिता नही थी। मेरा भाव केवल सूत्रोके ही अनुगम तक रहा है, अत उन्हीसे सम्बद्ध शका-समाधान भी अनुवादमें दिये गये है।

धवला एक सिद्धान्तका आकर-ग्रन्थ है। वीरसेन स्वामीने उसमे इतने विविध सैद्धान्तिक विषयोका शका-समाधानपूर्वक सयोजन किया है कि उनकी सकलना कर सकना भी कठिन है। वे सब विषय सब पुस्तकोको देखे विना जाननेमें नही आ सकते। और षट्खण्डागमके सोलह भागोका स्वाध्याय कर सकना विरले ही जनोके लिये भी आयास-साध्य है। ऐसी स्थितिमे उसमें जो सर्वसाधारणके लिये भी स्वाध्यायोपयोगी शका-समाधान है वे भी सब तक पहुँचना अशक्य है। यह सब दृष्टिमें होनेसे मैंने परिशिष्ट रूपमें कुछ आवश्यक शका-समाधानोको भी विषयवार सकलित कर दिया है। इससे इसकी उपयोगिता विशेष बढ गई है। आशा है सर्वसाधारण स्वाध्याय-प्रेमी उससे लाभान्वित होगे।

बहुत वर्षों पूर्व किया गया यह अनुवाद काललब्धि आनेपर प्रकाशित हो रहा है। इसका श्रेय श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमालके मन्त्री डा० प० दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्यको है। यदि इससे सैद्धान्तिक ज्ञानका अनुराग बढा तो मैं अपने श्रमको सफल समझूँगा।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय
वाराणसी।
श्रुत-पञ्चमी।
वी नि स २४९७

कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्राक्कथन

१ षट्खण्डागमकी रचनाका इतिहास

आचार्य वीरसेनने पट्खण्डागमपर श्रीधवला नामकी टीका रची है। उसके प्रारम्भमें उन्होने षट्खण्डागमकी रचना किस प्रकार हुई, इसका विवरण दिया है। उन्होंने लिखा है—सौराष्ट्र देशमें गिरि-नगरकी चन्द्रगुफामें धरसेनाचार्य रहते थे। वे अष्टाग महानिमित्तके पारगामी थे। उनको यह भय हुआ कि मेरे वाद अगश्रुतका विच्छेद हो जायगा। अत प्रवचनवात्सल्यसे प्रेरित होकर किसी धर्मोत्सवके निमित्तसे, महिमा नगरीमें सम्मिलित हुए दक्षिणापथके आचार्योंके पास लेख भेजा। उस लेखसे धरसेनाचार्यका अभिप्राय ज्ञात करके उन आचार्योंने ऐसे दो साधुओंको उनके पास भेजा जो शास्त्रके अर्थके ग्रहण और धारणमें कुशल थे, देश, कुल, जातिसे शुद्ध थे, विनयी तथा शीलसम्पन्न थे।

दोनो साधुओने धरसेनाचार्यकी पदवन्दना करके अपने आनेका प्रयोजन निवेदन किया। आचार्यने उनकी परीक्षा लेनेके लिये दोनोको दो विद्याएँ देकर कहा कि उपवासपूर्वक इन्हे सिद्ध करो। उन्होंने विद्याएँ सिद्ध की, किन्तु विद्याओकी अधिष्ठात्री देवताओमेंसे एकके दांत वाहर निकले हुए थे और दूसरी कानी थी। किन्तु देवता तो विकृताग नही होते, यह विचारकर उन दोनोने विद्या-मत्रोंको मत्रशास्त्रके व्याकरणके अनुसार शुद्ध करके पुन सिद्ध किया तो वे अपने सुन्दर रूपमें दिखलाई पडी। उन्होने गुरुसे सव वृत्तान्त निवेदन किया तो गुरुने सन्तुष्ट होकर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभवारमें ग्रन्थ पढाना प्रारम्भ किया और आसाढ शुक्ल एकादशीके पूर्वाह्णमें पाठ समाप्त किया। यह देखकर उन दोनोमेंसे एककी भूत जातिके व्यन्तर देवोंने पूजा की, अत गुरुने उनको भूतवलि नाम दिया। और दूसरेकी अस्त-व्यस्त दन्तपक्तिको ठीक कर दिया, इसलिये दूसरेको पुष्पदन्त नाम दिया।

गुरुकी आज्ञासे उन्हे उसी दिन वहाँसे प्रस्थान करना पडा। अत मार्गमें अकलेश्वरमें उन्होने वर्पावास किया। वर्पायोग समाप्त करके पुष्पदन्त आचार्य तो जिनपालितको देखकर उसके साथ वनवास देशको चले गये और भूतवलि द्रमिल देशको।

आचार्य पुष्पदन्तने बीस प्ररूपणागर्भित सत्प्ररूपणाके सूत्र वनाकर जिनपालितको दीक्षा देकर उन्हें पढाया और उसे आचार्य भूतवलिके पास भेजा। भूतवलिने जिनपालितके पास सत्प्ररूपणासूत्र देखे और यह जाना कि पुष्पदन्तकी आयु अल्प है अत महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके विच्छेदके भयसे उन्होने द्रव्य-प्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की।

आचार्य इन्द्रनन्दिने इस वृत्तान्तको देते हुए अपने श्रुतावतारमें आगे लिखा है कि भूतवलिने पूर्व-सूत्र सहित ६ हजार सूत्रप्रमाण ग्रन्थकी रचना की। तथा इन पाँच खण्डोके अतिरिक्त महावन्ध नामके छठे खण्डकी तीस हजार सूत्रग्रन्थ प्रमाण रचना की। इससे पूर्वके पाँच खण्डोके नाम इस प्रकार हैं—जीवस्थान, क्षुल्लकवन्ध, वन्धस्वामित्व, वेदना तथा वर्गणा। इस प्रकार षट्खण्डागमकी रचना करके भूतवलिने उन्हें पुस्तकोंमें निवद्ध किया और ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको चातुर्वर्ण्य सघके साथ पूजा की। इसीसे यह तिथि श्रुत-पञ्चमीके नामसे ख्यात हुई। इसीसे आज भी जैन उस पञ्चमीको श्रुतपूजा करते हैं।

२ षट्खण्डागमसूत्र

१ इस प्रकार महाकर्मप्रकृतिप्राभृतसे षट्खण्डागमकी उत्पत्ति हुई है। यह महाकर्मप्रकृति-प्राभृत द्वादशाग श्रुतके बारहवे दृष्टिवाद अगके पूर्व नामक भेदके दूसरे भेद अग्रायणीय पूर्वके चौदह वस्तु अधिकारोमेंसे पाँचवी चयनलब्धिके २० प्राभृतोमेंसे एक प्राभृत है। उसके भी २४ अनुयोग द्वार है। उन्हींसे छ खण्डोकी निष्पत्ति हुई है। वे छह खण्ड हैं—जीवस्थान, खुद्दाबन्ध, बन्धस्वामित्वविचय, वेदना, वर्गणा और महाबन्ध।

१. जीवस्थानमें गुणस्थान और मार्गणास्थानोका आश्रय लेकर सत्, सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगद्वारोसे तथा प्रकृतिसमुत्कीर्तना, स्थानसमुत्कीर्तना, तीन महादण्डक, जघन्यास्थिति, उत्कृष्ट स्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति इन नौ चूलिकाओंके द्वारा ससारी जीवकी विविध अवस्थाओका वर्णन किया गया है।

२ कर्मका बन्ध करनेवाले जीवोको बन्धक कहते है। दूसरे खण्डमें कर्मबन्धक जीवकी प्ररूपणा ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे की गई है कि किस गति आदि मार्गणाके कौन-कौन जीव कर्मोंका बन्ध करते हैं। आदि।

३ तीसरे खण्डमें बन्धके स्वामियोका विचार होनेसे बन्धस्वामित्वविचय नाम दिया गया है। इसमें गुणस्थानो और मार्गणास्थानोके द्वारा सभी कर्मप्रकृतियोके बन्धक स्वामियोका विचार बहुत विस्तार से किया है।

४ ऊपर लिख आये हैं कि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके २४ अनुयोगद्वार हैं उनमेसे जिन छह अनु-योगद्वारोका कथन भूतबलि आचार्यने किया है उनमेसे प्रथमका नाम कृति और दूसरेका वेदना है। इस खण्डमें वेदनाका विस्तारसे वर्णन होनेसे इसका नाम वेदना है।

५ वर्गणाखण्डमे स्पर्श, कर्म और प्रकृतिअनुयोगद्वारोके साथ छठे बन्धन अनुयोगद्वारके अन्तर्गत बन्धनीयका अवलम्बन लेकर पुद्गलवर्गणाओका विशेष कथन होनेसे इसे वर्गणा नाम दिया है।

इन्ही पाँच खण्डों पर धवलाटीका है। महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके जिन शेष अठारह अनुयोगद्वारोका कथन भूतबलिने नही किया था वीरसेन स्वामीने अपने गुरुसे पढकर उन्हें लिखा और उसे सत्कर्म नाम देकर उक्त पाँच खण्डोके साथ सम्बद्ध कर दिया। इस तरह षट्खण्डागम निष्पन्न हुआ।

३ षट्खण्डागम और प्रज्ञापना

भगवान महावीरके निर्वाणके पश्चात् गौतम गणधर, सुधर्मास्वामी और जम्बू स्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। उसके पश्चात् पाँच श्रुतकेवली हुए। उनमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। जम्बू स्वामीके पश्चात् श्रुतकेवली भद्रबाहु ही ऐसे व्यक्ति है जिन्हें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही मानते हैं। इनके समय मे बारह वर्षका दुर्भिक्ष पडा तो यह सघके साथ दक्षिण भारतकी ओर चले गये। वही उनका स्वर्गवास हुआ। उसी समय जैन सम्प्रदाय दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायके रूपमें विभाजित हुआ। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार दुर्भिक्ष हटनेपर पाटलीपुत्रमें एक सम्मेलन हुआ उसमें ग्यारह अगोका सकलन किया गया। दृष्टिवादका सकलन नही हो सका, क्योकि भद्रबाहुके सिवाय उसका कोई ज्ञाता नही था और वह उस सम्मेलनमें अनुपस्थित थे। तब स्थूलभद्रको भद्रबाहुके पास भेजा गया और उन्होने उन्हें दृष्टिवादके कुछ अश की देशना दी, इत्यादि लम्बी कथा है। श्वेताम्बर परम्परामें ग्यारह अङ्ग, अङ्गबाह्य और उपाग रूप

आगमिक साहित्य पाया जाता है। यह सब भगवान महावीरके निर्वाणसे लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् देवर्द्धिगणिकी प्रधानतामें लिखा गया है। उसमें प्राचीन अंश भी है। दिगम्बर परम्परामें यह सब साहित्य नहीं है। यद्यपि बारह अङ्गोंके नामोंमें कोई अन्तर नहीं है। अङ्गबाह्य ग्रन्थोंके नाम भी मिलते-जुलते हैं। किन्तु उपाग-साहित्यका कोई निर्देश दिगम्बर साहित्यमें नहीं है। दिगम्बर परम्पराके अनुसार तो पट्खण्डागम और कसायपाहुड ये दो मूल आगमग्रन्थ ही ऐसे हैं जो दृष्टिवादके अंगभूत पूर्वोके अंशसे संकलित किये गये हैं। इनमें कसायपाहुड गाथाबद्ध है और पट्खण्डागम गद्यसूत्रोंमें निबद्ध है, कुछ गाथाएँ भी हैं। दोनों परम्पराओंको भगवान महावीरका वारसा प्राप्त हुआ है। यही वजह है कि दोनों परम्पराओंके साहित्य और आचारविषयक चिन्तनमें बहुत कुछ अंशोंमें समानता है। फलतः अनेक ऐसी प्राचीन गाथाएँ हैं जो दोनों परम्पराओंके साहित्यमें मिलती हैं। उनके सम्बन्धमें यदि कोई ऐसा दावा करे कि इसे अमुकने अमुकसे लिया है तो यह कोरा भ्रम या मिथ्या सम्प्रदायाभिनिवेश है।

पिछले वर्षमें इसी तरहका 'प्रज्ञापना और पट्खण्डागम' शीर्षक एक लेख पं० दलसुख मालवणिया अहमदाबादने एक अंग्रेजी जर्नल[1]में प्रकाशित कराया था। उसमें प्रज्ञापना और पट्खण्डागमके कुछ कथनोंमें समानता तथा प्रज्ञापनाको तीसरी चौथी ईस्वी पूर्वका बतलाते हुए पट्खण्डागमको उसका ऋणी बतलाया है।

प्रज्ञापनामें ३६ पद हैं। कुछ पदोंका कथन पट्खण्डागममें मिलता भी है। दो-तीन गाथाएँ भी दोनोंमें समान हैं किन्तु मात्र इतनेसे ही एकको दूसरेका ऋणी नहीं कहा जा सकता। जीव और कर्म ये दो ही मुख्य विवेच्य विषय हैं। प्रज्ञापनाका कथन जीवको केन्द्रमें रखकर किया गया है और पट्खण्डागम-का कथन कर्मको केन्द्रमें रखकर किया गया है। प्रज्ञापनाके छत्तीस पदोंमें भी कर्म (२३), कर्म बन्धक (२४), कर्मवेदक (२५), वेदबन्धक (२६) वेदवेदक (२७) और वेदना (३५) पद हैं और पट्खण्डागममें तो वेदना, वर्गणा, महाबन्ध आदि नामोंसे स्पष्ट ही है। प्रज्ञापनामें तो उन चर्चाओंका सामान्य-सा कथन है किन्तु पट्खण्डागमके सूत्र तो उस विषयमें गम्भीरतासे उतरे हुए हैं। किन्तु इससे यह नही कहा जा सकता कि पट्खण्डागमके कर्ताको प्रज्ञापनासे यह सब ज्ञान प्राप्त हुआ जो उसमें नहीं है। दोनो ग्रन्थोकी स्टाईल बिल्कुल भिन्न है। प्रज्ञापना गद्यात्मक वाक्योंमें निबद्ध है पट्खण्डागम सूत्रशैलीमें निबद्ध है। गुणस्थान-मार्गणास्थानोंके द्वारा आठ अनुयोगोंको लेकर उसमें विवेचन है जो प्रज्ञापनामें नही है। यहाँ इतना स्थान नही है अन्यथा एक-एक विषयको लेकर तुलना करनेसे यह स्पष्ट हो जाता कि पट्खण्डा-गममे वर्णित अनेक विषयोका प्रज्ञापनामें स्पर्श भी नही है।

यह हम ऊपर लिख आये कि महाकर्मप्रकृति प्राभृतको पढ़कर भूतबलिने पट्खण्डागमकी रचना की थी।

श्वेताम्बर परम्परामें एक 'कर्मप्रकृति' नामक ग्रन्थ है। उसमें आठ अनुयोग द्वारोका निर्देश किया है—

सतपयपरूवणया दव्वपमाण च खेत फुसण च।
कालतर च भावे अप्पावहुय च दाराई॥ ६८॥

सत्पदप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर भाव, अल्पबहुत्व ये अनुयोगद्वार हैं।

---

१ जर्नल आफ दी महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी आफ बड़ौदा, वोल्युम १९, नम्बर १-२। सितम्बर-दिसम्बर १९६९।

इसकी टीकामे लिखा है—

'अष्टानुयोगद्वाराणि कर्मप्रकृतिप्राभृतादीन् ग्रन्थान् सम्यक् परिभाव्य वक्तव्यानि। ते च कर्मप्रकृतिप्राभृतादयो ग्रन्था न सम्प्रति वर्तन्ते इति लेशतोऽपि दर्शयितु न शक्यन्ते।'

अर्थात् ये आठ अनुयोगद्वार कर्मप्रकृतिप्राभृत आदि ग्रन्थोका अनुशीलन करके कहने चाहिये। किन्तु वे कर्मप्रकृतिप्राभृत आदि ग्रन्थ वर्तमानमें नही है इसलिये लेशमात्र भी उनको दिखानेमें असमर्थ है।

इससे पहले 'गइ इदिए ए काए' आदि चौदह मार्गणा गिनाई है। षट्खण्डागममें इन्ही अनुयोग द्वारोसे गत्यादि मार्गणाओमे विस्तारसे कथन किया गया है क्योकि महाकर्मप्रकृति प्राभृतकी यही पद्धति थी, तदनुसार ही उसके सक्षिप्त रूपका निर्माण किया गया है।

यो तो भगवतीसूत्रके ८ वें शतकमें भी कर्मोका कथन और बन्धन अनुयोगद्वारसे तुलना करनेपर कुछ अश मिलता भी है और भगवतीसूत्रमे भी उपाग प्रज्ञापनाका नाम मिलता है। यह सब इतना गोरख-धन्धा है कि उसे साम्प्रदायिक अभिनिवेशसे सुलझाया नही जा सकता। उपागके कर्ता कहे जानेवाले श्यामार्य-की भी ऐसी ही स्थिति है। अपने जैनसाहित्यके इतिहासकी पूर्व पीठिकामे अगसाहित्यके सम्बन्धमें लिखा है। इसमें सन्देह नही है कि श्वेताम्बराचार्योने चाहे किसी भी प्रकारसे अपने अग साहित्यको सकलित करके सुरक्षित रखनेका जो प्रयत्न किया वह सराहनीय है। किन्तु उसमे जो खामियाँ हैं उन्हे नही भुलाया जा सकता। तीर्थक्षेत्रोवाली नीतिसे साहित्यको बचाना चाहिये।

४ षट्खण्डागम और तत्त्वार्थसूत्र—तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायमे भी सत्सख्या आदि सूत्रमे षट्खण्डागमोक्त आठ अनुयोगद्वार गिनाये है और उनसे जीवादिको जाननेका उपदेश दिया है। यह षट्-खण्डागमके जीवस्थानके प्रारम्भमे गिनाये गये आठ अनुयोगद्वारोके प्रभावका सूचक है। आगे हम बतलायेंगे कि तत्त्वार्थसूत्रकी रचना षट्खण्डागमसूत्रोके आधारसे की गई है।

५ षट्खण्डागम और सर्वार्थसिद्धि—पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामे तत्त्वार्थसूत्रके उक्त सत्सख्यासूत्रमें जो जीवद्रव्य विवेचन गति आदि मार्गणाओमे आठ अनुयोगोके द्वारा किया है वह जीव-स्थानका ऋणी है। पूज्यपाद स्वामीके सामने षट्खण्डागमकी उक्त टीकाओमे-से कोई प्राचीन टीका भी हो सकती है। किन्तु जीवस्थानके सूत्रोमें प्रतिपादित सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन आदिको ही पूज्यपाद स्वामीने सक्षेपमें निबद्ध किया है, यह तुलना करनेसे स्पष्ट हो जाता है।

६ षट्खण्डागम और तत्त्वार्थवार्तिक

आचार्य भट्टाकलकदेवने अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें शका-समाधानमें कई स्थलोपर जीवस्थानादिका तथा सत्प्ररूपणाका उल्लेख किया है और उन्हें आगम या आर्ष जैसे आदरणीय शब्दोसे बोधित किया है। यथा—

१ 'आगमे हि जीवस्थानादौ सदादिष्वनुयोगद्वारेण आदेशवचने नारकाणामेवादौ सदादि-प्ररूपणा कृता।'—पृ० ७९।

२ एव हि समयोऽवस्थित सत्प्ररूपणाया कायानुवादे त्रसा नाम द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोग-केवलिन।—पृ० १२७।

३ एव ह्यार्षे उक्तम्—सासादनसम्यग्दृष्टिरिति को भाव? पारिणामिको भाव।—पृ० १११।

४ आह चोदक जीवस्थाने योगभंगे सप्तविधकाययोगस्वामिप्ररूपणायाम्—पृ० १५३।

ये सब उल्लेख जीवस्थानके हैं। और जीवस्थानके उन उन प्रकरणोंमें देखे जा सकते हैं।

एक उद्धरण मन पर्ययज्ञानको लेकर इस प्रकार है—

'आगमे ह्युक्त-मनसा मन. परिच्छिद्य परषा सज्ञादीन् जानाति

यह उद्धरण महाबन्ध (पृ० २४) से लिया गया है।

पाचवें अध्यायमें सूत्र है 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ।' और श्वेताम्बर मान्य सूत्रपाठ है—'बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ,' इस पाठको आर्ष विरुद्ध बतलाते हुए अकलङ्कदेवने लिखा है—

'तदनुपपत्तिरार्षविरोधात् ॥ ४ ॥ स पाठो नोपपद्यते। कुत' ? आर्षविरोधात्, एव ह्युक्तमार्षे वर्गणाया बन्धविधाने नोआगमद्रव्यविकल्पे सादिवैस्रसिकबन्धनिर्देशे प्रोक्त —विषमस्निग्धताया विषमरूक्षताया च बन्ध समस्निग्धताया समरूक्षताया च भेद इति। तदनुसारेण च सूत्रमुक्तम्। 'गुणसाम्ये सदृशाना', समगुणाना बन्धप्रतिषेधात् बन्ध सम परिणामक. इत्यार्षविरोधिवचो न विद्वद्ग्राह्यम्।—पृ० ५००।

अर्थात् श्वेताम्बर परम्पराका पाठ आर्षविरुद्ध होनेसे ठीक नही है। वर्गणाम बन्धविधानके अन्तर्गत नोआगमद्रव्यबन्ध विकल्प-सादि वैस्रसिक बन्धनिर्देशम कहा है—'विषमस्निग्धता विषमरूक्षतामें बन्ध और समस्निग्धता और समरूक्षतामें भेद होता है।' उसीके अनुसार 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्र कहा है। इसलिये जब समगुणवालोंके बन्धका प्रतिषेध कर दिया तब बन्धमें 'सम भी परिणामक होता है, यह कथन आर्षविरोधी होनेसे विद्वानोंके द्वारा ग्राह्य नही है।' षट्खण्डागमके पचम खण्ड वर्गणाके अन्तर्गत बन्धन-अनुयोगद्वारमें द्रव्यबन्धका निरूपण करते हुए लिखा है—

'जो सो थप्पो सादियविस्ससा बधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—वेमादा णिद्धदा वेमादा लुक्खदा बधो ॥ ३२ ॥ समणिद्धदा समलुक्खदा भेदो ॥ ३३ ॥

इन्ही दो सूत्रोका संस्कृत रूपान्तर अकलङ्कदेवने दिया है और वे तत्त्वार्थसूत्रके कथनको तदनुगामी बतलाते हैं। नौवें अध्यायमें धर्मानुप्रेक्षाका कथन करते हुए तो सत्प्ररूपणाके सूत्रोंको ही सस्कृतमें अवतरित कर दिया है। इस तरह अकलङ्कदेव पूरे षट्खण्डागमके मर्मज्ञ थे और उन्होने उसका अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें उपयोग किया है।

७ षट्खण्डागमकी टीकाएँ

इन्द्रनन्दिके अनुसार कुन्दकुन्दपुरके पद्मनन्दि (कुन्दकुन्दाचार्य) षट्खण्डागमके आद्य तीन खण्डोपर बारह हजार श्लोकप्रमाण परिकर्म नामक ग्रन्थ रचा। उसके बाद कितना ही काल बीतनेपर शामकुण्डाचार्यने महाबन्धको छोडकर शेष पाँच खण्डोपर प्राकृत, सस्कृत और कर्णाटक भाषाके मिश्रणमें पद्धतिरूप टीकाकी रचना की। उसके पश्चात् तुम्बुलूर ग्रामके वासी तुम्बुलूराचार्यने कर्णाटक भाषामें चूडामणि नामकी महती व्याख्या रची। तथा छठे खण्डपर सात हजार श्लोक प्रमाण पञ्जिका रची। उसके पश्चात् समन्तभद्रने सस्कृतमें टीका रची।

पुन शुभनन्दि और रविनन्दि नामके मुनियोसे भीमरथि और कृष्णमेखला नामकी नदियोंके मध्यमें स्थित उत्कलिका ग्रामके समीप मगणवल्ली ग्राममें बप्पदेव गुरुने सिद्धान्तका अध्ययन किया। उन्होंने छै खण्डोंमेंसे महाबन्धको हटाकर तथा शेष पाँच खण्डोमें व्याख्याप्रज्ञप्तिको मिलाया और इस प्रकार निष्पन्न हुए छै खण्डोंपर तथा कषायप्राभृतपर साठ हजार श्लोक प्रमाण व्याख्याको प्राकृतमें लिखा तथा महाबन्धकी आठ हजार पाँच श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी।

श्रुतावतारके उक्त कथनसे सम्बद्ध श्लोक इस प्रकार है—

अपनीय महावन्ध पट्खण्डाच्छेषपञ्चखण्डे तु ।
व्याख्याप्रज्ञप्ति च पष्ठ खण्ड च तत् सक्षिप्य ॥
पण्णा खण्डानामिति निष्पन्नाना तथा कपायाख्य- ।
प्राभृतकस्य च पष्ठिसहस्रग्रन्थप्रमाणयुताम् ॥
व्यलिखत् प्राकृतभाषारूपा सम्यक्पुरातनव्याख्याम् ।
अष्टमहस्रग्रन्था व्याख्या पञ्चाधिका महावन्धे ॥

अत प्रोफेसर डा० हीरालालजीने पट् ख प्रथम पुस्तककी अपनी प्रस्तावनामे जो टीकाका नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति लिखा है उक्त श्लोकोमे वह नही बैठता । व्याख्याप्रज्ञप्ति प्रथम श्लोकमे आता है । और तीसरे श्लोकमे प्राकृतभाषारूप पुरातन व्याख्या लिखनेका निर्देश है । फिर दूसरे श्लोकमे जो कहा है—'इस प्रकार निष्पन्न हुए छै खण्डोपर' इसीका तीसरे श्लोक से सम्बन्ध है । ये छै खण्ड कैसे निष्पन्न हुए ? व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक छठे खण्डको उनमें मिलाया । अत व्याख्याप्रज्ञप्ति वप्पदेवकृत टीकाका नाम नही होना चाहिये ।

इसी तरहका कथन इन्द्रनन्दिने वीरसेनके सम्बन्धमे किया है । उन्होने लिखा है—उसके पश्चात् कितना ही काल बीतनेपर सिद्धान्तके ज्ञाता चित्रकूटपुरवासी एला हुए । वीरसेन गुरुने उनसे सकल सिद्धान्तका अध्ययन करके ऊपरके निवन्धन आदि आठ अधिकारोको लिखा । फिर चित्रकूटसे आकर गुरुकी अनुज्ञामे वाटग्राममे आनतेन्द्रकृत जिनालयमे ठहरकर टीका रचनेका निर्देश करते हुए लिखा है—

व्याख्याप्रज्ञप्तिमवाप्य पूर्वपट्खण्डतस्ततास्मिन् ।
उपरितनवन्धनाद्य धिकारैरष्टादशविकल्पै ॥
सत्कर्मनामधेय पष्ठ खण्ड विधाय सक्षिप्य ।
इति पण्णा खण्डाना ग्रन्थसहस्रैर्द्विसप्तत्या ॥
प्राकृतसस्कृतभाषामिश्रा टीका विलिख्य धवलाख्याम् ।

पहलेके छ खण्डोमेसे व्याख्याप्रज्ञप्तिको प्राप्त करके फिर उसमे उपरितन निवन्धनादि अठारह अधिकारोमे सत्कर्म नामक छठे खण्डको रचकर और उसे उनमें मिलाकर इस तरह छह खण्डोकी बहत्तर हजार ग्रन्थप्रमाण प्राकृत-सस्कृतभाषामिश्रित धवला नामक टीका लिखी ।

इसका स्पष्ट आशय यह है कि जैसे वप्पदेवने छह खण्डोमेसे महावन्धको पृथक् करके शेष बचे पांच खण्डोमे व्याख्याप्रज्ञप्तिको मिलाकर छह खण्ड निष्पन्न किये थे और तब उनपर टीका लिखी थी । उसी तरह वीरसेन स्वामीने इन छह खण्डोमेसे व्याख्याप्रज्ञप्तिको अलग करके उसमें सत्कर्म नामक छठे खण्डको मिलाकर निष्पन्न हुए छह खण्डोपर धवला टीकाकी रचना की ।

यह सत्कर्म पन्द्रहवी पुस्तकसे शुरू होता है । उसपर एक सत्कर्मपञ्जिका भी है जो उसीके साथ परिशिष्ट रूपमें छपी है । उसके प्रारम्भमें पञ्जिकाकारने लिखा है कि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके चौबीस अनुयोग है उनमें-से कृति और वेदनाका वेदना खण्डमें और स्पर्श, कर्म, प्रकृतिका वर्गणा खण्डमे कथन किया है । वन्धन अनुयोगद्वार वन्ध, वन्धनीय, वन्धक और वन्धविधान इन चार अवान्तर अनुयोगद्वारोमे विभक्त है । इनमें-से वन्ध और वन्धनीय अधिकारोकी प्ररूपणा वर्गणा खण्डमें, वन्धन अधिकारकी प्ररूपणा खुद्दाबन्ध नामक दूसरे खण्डमें, और वन्धविधानका कथन महावन्ध नामक छठे खण्डमे है । शेष १८ अनियोग द्वारोकी प्ररूपणा मूल पट्खण्डागममें नही है । किन्तु आचार्य वीरसेनने वर्गणाखण्डके अन्तिम सूत्रको देशाम-

र्पक मानकर उनकी प्ररूपणा धवलाके अन्तमें की है। उसीका नाम सत्कर्म है। इनका ज्ञान उन्होने ऐला-चार्य गुरुसे प्राप्त किया था।

व्याख्याप्रज्ञप्ति

अब प्रश्न रहता है व्याख्याप्रज्ञप्तिका। इन्द्रनन्दिने लिखा है—

'व्यलिखित प्राकृतभाषारूपा सम्यक्पुरातन व्याख्याम्'

वप्पदेवने प्राकृतभाषारूप सम्यक्पुरातन व्याख्याको लिखा। यदि यह व्याख्या वप्पदेवकृत ही होती तो इसके साथ सम्यक्पुरातन पद लगानेकी क्या आवश्यकता थी। सम्यक्पुरातनका अर्थ होता है 'काफी प्राचीन'। हमें यह व्याख्याप्रज्ञप्तिका विशेषण प्रतीत होता है। व्याख्याप्रज्ञप्ति काफी प्राचीन व्याख्या होनी चाहिये। धवला टीकामे उसके दो निर्देश मिलते हैं। दूसरे निर्देशमें उससे षट्खण्डागमका मतभेद बतलाया है। लिखा है—

'एदेण वियाहपण्णत्तिसुत्तेण सह कह ण विरोहो ? ण, एदम्हादो तस्स पुधभूदस्स आइरिय-भेएण भेदमावण्णस्स एअत्ताभावादो'—षट्‌ख, पु० १०, पृ० २३८।

शका—इस व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रके साथ विरोध क्यो नही है ?

समाधान—नही, इससे वह भिन्न है, आचार्यभेदसे भिन्नताको प्राप्त है, इन दोनोंमें एकपना नही हो सकता।

इसमें व्याख्याप्रज्ञप्तिके वचनोंको सूत्र कहा है और आचार्यभेदसे भिन्न कहा है। अत यह व्याख्या-प्रज्ञप्ति विचारणीय है। हो सकता है कि यह वही हो जिसका इन्द्रनन्दिने उल्लेख किया है और जो वीरसेन स्वामीको प्राप्त हुई थी। किन्तु वह षट्खण्डागमके सूत्रोसे विरुद्ध अर्थका भी कथन करनेवाली है, यह स्पष्ट है। अकलकदेवने अपने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें भी दो स्थलोमे २।४९।८ और ४।२६।५ में व्याख्या प्रज्ञप्तिदण्डकका उल्लेख किया है और दोनों ही स्थानोमें षट्खण्डागमसे उसका भेद बतलाया है। यह विषय अनुसन्धेय है। अस्तु,

धवला टीका

धवला टीकामें व्याख्याप्रज्ञप्ति और परिकर्मके सिवाय इन्द्रनन्दिके द्वारा निर्दिष्ट किसी अन्य टीकाका निर्देशन नही है। ये दोनो ग्रन्थ धवलाकार वीरसेन स्वामीके सन्मुख उपस्थित थे। जैसा कि हम लिख आये हैं व्याख्याप्रज्ञप्तिका तो दो ही स्थानोमें निर्देश है। किन्तु परिकर्मका तो अनेक स्थलोपर निर्देश है और उसके मतोको भी दिया गया है। किन्तु इन दो ग्रन्थोके अतिरिक्त भी षट्खण्डागमसे सम्बद्ध अनेक सुत्तपोथियाँ तथा साहित्य उनके सामने वर्तमान था, यह धवलाके अवलोकनसे स्पष्ट हो जाता है। धवला एक आकर-ग्रन्थ है। उसमें विविध आगमिक चर्चाओकी बहुतायत है और चर्चारसिको तथा अन्वेषकोंके लिये वह एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। जयधवलाकी प्रशस्तिमें आचार्य वीरसेनके शिष्य जिनसेनने लिखा है कि वीरसेनको देखकर मनीषियोकी सर्वज्ञके अस्तित्व विषयक शका दूर हो गई थी। उनका यह कथन धवला टीकासे यथार्थ ही प्रतीत होता है। यहाँ उसके कुछ चर्चनीय विषयोका आभास मात्र कराया जाता है। धवलामें, उठाई गई शकाएँ और उनके समाधान एक पृथक् ग्रन्थके रूपमें सकलित होने योग्य हैं। उनका यह शका-समाधान षट्खण्डागमके मगलाचरण णमोकार मत्रकी व्याख्यासे ही प्रारम्भ हो जाता है। यथा—अरहन्तोंको पहले नमस्कार क्यो किया ? आचार्यादिमें देवत्व कैसे है ? उनके इस शका-समाधानसे प्रकृत विषय एकदम स्पष्ट हो जाता है।

१ आजकल निश्चय और व्यवहारकी बहुत चर्चा है और प्राय यह समझा जाता है कि ये नय केवल अध्यात्मसे ही सम्बद्ध हैं। किन्तु वीरसेन स्वामीने धवलामें भी यथास्थान इन नयोके द्वारा प्रतिपादन किया है। यथा सम्यग्दर्शनका कथन करते हुए कहा है—

प्रशमसवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणसम्यक्त्वम्। सत्येवमसयतसम्यग्दृष्टिगुणस्याभाव स्यादिति चेत् सत्यमेतत् शुद्धनये समाश्रीयमाणे। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्। अस्य गमनिकोच्यते, आप्तागमपदार्थस्तत्त्वार्थस्तेषु श्रद्धानमनुरक्तता सम्यग्दर्शनमिति लक्ष्यनिर्देश। कथ पौरस्त्येन लक्षणेनास्य लक्षणस्य न विरोधश्चेन्नैष दोष, शुद्धाशुद्धनयसमाश्रयणात्। अथवा तत्त्वरुचि सम्यक्त्वमशुद्धतरनयसमाश्रयणात्।'—पु० १, पृ० १५१।

प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी अभिव्यक्ति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शन है।

शङ्का—इस प्रकार सम्यक्त्वका लक्षण माननेपर तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अभाव हो जायगा ?

समाधान—शुद्ध नयका आश्रय करनेपर वह कथन सत्य है। अर्थात् शुद्धनयमें चतुर्थ गुणस्थानका अस्तित्व नही है। अथवा, तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते है। इसका अर्थ यह है कि आप्त, आगम और पदार्थको तत्त्वार्थ कहते हैं और उनके विषयमें श्रद्धान अर्थात् अनुरक्तिको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन लक्ष्य है तथा आप्त, आगम और पदार्थका श्रद्धान लक्षण है।

शङ्का—पहले कहे हुए सम्यक्त्वके लक्षणके साथ इस लक्षणका विरोध क्यो नही है ?

समाधान—यह दोष नही है क्योकि शुद्ध और अशुद्ध नयका आश्रय लेकर उक्त दोनो लक्षण कहे गये है। पहला लक्षण शुद्ध नयसे है दूसरा अशुद्ध नयसे। अथवा अशुद्धतर नयका आश्रय लेनेपर तत्त्वरुचिको सम्यक्त्व कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि वीरसेन स्वामीके मतानुसार आगममें जहाँ शुद्धनयसे कथन है वहाँ अशुद्ध और अशुद्धतर नयसे भी कथन है। करणानुयोगका पारगामी भी विना झिझकके यह स्वीकार करता है कि शुद्ध नयका अवलम्बन लेनेपर चतुर्थ गुणस्थान नही वनता। यह आगमश्रद्धा है।

२ इसी तरह आजकल कोई सिद्धान्ताभ्यासी अनन्तानुवन्धीको केवल सम्यग्दर्शनका ही घातक वतलाते हैं और कहते है सम्यग्दर्शनके साथ चतुर्थ गुणस्थानमें चारित्र नही होता। छठी पुस्तकमे चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियोको वतलाते हुए वीरसेन स्वामी अनन्तानुवन्धीके सम्बन्धमे लिखते हैं—

'एदे चत्तारि वि सम्मत्तचारित्ताण विरोहिणो दुविहसत्तिसजुत्तादो। त कुदो णव्वदे ? गुरुवदेसादो जुत्तीदो च। का एत्थ जुत्ती ? उच्चदे, ण ताव एदे दसणमोहणिज्जा, सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेहि चेव आवरियस्स सम्मत्तस्स आवरणे फलाभावादो। ण चारित्तमोहणिज्जा वि, अपच्चक्खाणावरणादीहि आवारिदचारित्तस्स आवरणे फलाभावादो। तदो एदेसिमभावो चेव। ण च अभावो सुत्तम्हि एदेसिमत्थित्तपदुप्पायणादो। तम्हा एदेसिमुदएण सासणगुणुप्पत्तीए अण्णहाणुववत्तीदो। सिद्ध दसणमोहणीयत्त चारित्तमोहणीयत्त च। —पु० ६, पृ० ४२-४३।

ये चारो ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्रकी विरोधी है क्योकि वे सम्यक्त्व और चारित्रको घातने वाली दो प्रकारकी शक्तिसे युक्त है।

शङ्का—यह कैसे जाना कि वे दो प्रकारकी शक्तिसे युक्त है ?

समाधान—गुरुके उपदेश और युक्तिसे जाना।

शङ्का—इसमे क्या युक्ति है कि अनन्तानुबन्धीकषायशक्ति दो प्रकारकी है ?

समाधान—ये अनन्तानुबन्धीकषाय न तो दर्शनमोहनीयरूप हैं क्योकि सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्वप्रकृति और सम्यक्‌मिथ्याप्रकृतिके द्वारा ही आवरण किये जाने वाले सम्यग्दर्शनके आवरण करनेमें कोई फल नही है । और न चारित्रमोहनीय रूप हैं क्योकि अप्रत्याख्यानावरण आदिके द्वारा ढांके गये चारित्रको ढांकनेमें कोई फल नही है । अत इन कषायोका अभाव ही सिद्ध होता है । किन्तु अभाव तो नही है क्योंकि सूत्रमें उनका अस्तित्व बतलाया है । इसलिये इन कषायोके उदयसे सासादन गुणस्थानकी उत्पत्ति अन्यथा बन नही सकती, इससे सिद्ध होता कि अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीय भी है और चारित्रमोहनीय भी है ।

उक्त समाधानमें जो यह युक्ति दी है कि सासादन गुणस्थानकी उत्पत्ति अन्यथा नही हो सकती इस लिये अनन्तानुबन्धी उभयघाती है इसको स्पष्ट करनेके लिये प्रथम पुस्तकमें आगत सासणसम्माइट्ठी ॥१०॥ सूत्रकी धवलाके आवश्यक अशको नीचे उद्धृत किया जाता है—

'अथ स्यान्न मिथ्यादृष्टिरय मिथ्यात्वकर्मणा उदयाभावात्, न सम्यग्दृष्टि सम्यग्रुचेरभावात्, न सम्यग्मिथ्यादृष्टिरुभयविषयरुचेरभावात् । न च चतुर्थी दृष्टिरस्ति सम्यगसम्यगुभयदृष्ट्या लम्बन वस्तुव्यतिरिक्तवस्त्वनुपलम्भात् । ततोऽसन् एष गुण इति न, विपरीताभिनिवेशतोऽसदृष्टित्वात् । तर्हि मिथ्यादृष्टिर्भवत्य नाऽस्य सासादनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्रतिबन्ध्यनन्तानुबन्ध्युदयोत्पादितविपरीताभिनिवेशस्य तत्र सत्वाद् भवति मिथ्यादृष्टिरपितु मिथ्यात्वकर्मोदयजनितविपरीताभिनिनेशाभावात् न तस्य मिथ्यादृष्टिव्यपदेश किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते । किमिति मिथ्यादृष्टिरिति न व्यपदिश्यते चेन्न, अनन्तानुबन्धिना द्विस्वभावत्वप्रतिपादनफलत्वात् । न च दर्शनमोहनीयस्योदयादुपशमात् क्षयात् क्षयोपशमाद्वा सासादनपरिणाम प्राणिनामुपजायते येन मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि सम्यग्यमिथ्यादृष्टिरिति चोच्येत । यस्माञ्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानुबन्धिनो न तद्दर्शनमोहनीय तस्य चारित्रावरणोदयत्वात् । तस्योभयप्रतिबन्धकत्वादुभयव्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न इष्टत्वात् । सूत्रे तथाऽनुपदेशोऽप्यर्पितनयापेक्ष । पृ० १६३-१६५ ।

शङ्का—सासादनगुणस्थानवाला जीव मिथ्यात्वकर्मका उदय न होनेसे मिथ्यादृष्टि नही है समीचीनरुचिका अभाव होनेसे सम्यग्दृष्टि भी नही है । तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनोको विषय करनेवाली रुचिका अभाव होनेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नही है । इनके सिवाय कोई चौथी दृष्टि नही है क्योंकि समीचीन, असमीचीन और उभगरूप दृष्टिके आलम्बनभूत वस्तुके अतिरिक्त वस्तु नही पाई जाती । इसलिये सासादन नामक गुणस्थान नही है ?

समाधान—ऐसा नही है क्योकि सासादन गुणस्थानमें विपरीत अभिनिवेश रहता है इसलिये उसे असमीचीन दृष्टि ही समझना चाहिये ।

शङ्का—यदि ऐसा है तो उसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिये, सासादन नाम देना उचित नही है ?

समाधान—नही, क्योकि सम्यग्दर्शन और चारित्रका प्रतिबन्ध करनेवाली अनन्तानुबन्धीकषायके उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीत अभिनिवेश दूसरे गुणस्थानमें पाया जाता है । इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है फिर भी मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीत अभिनिवेश सासादनमें नही है इसलिये उसे मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादन कहते हैं ।

शङ्का—जब वह मिथ्यादृष्टि है तो उसे मिथ्यादृष्टि क्यो नही कहते ?

समाधान—नही, क्योकि सासादनगुणस्थानको पृथक् कहनेसे ही यह फलित होता है कि अनन्तानुवन्धीकपायमें सम्यक्त्व और चारित्रको घातनेका स्वभाव है। सासादनगुणस्थान न तो दर्शनमोहके उदयसे होता है जिससे उसे मिथ्यादृष्टि कहा जाये, न उसके उपशम, क्षय, और क्षयोपशमसे होता है जिससे उसे सम्यग्दृष्टि या सम्यक्मिथ्यादृष्टि कहा जाये। और जिस अनन्तानुवन्धीकपायके उदयसे विपरीत अभिनिवेश हुआ वह दर्शनमोहनीय नही है चारित्रमोहनीय है।

शका—जव अनन्तानुवन्धी सम्यक्त्व और चारित्र दोनोकी प्रतिवन्धी है तो उसे उभय प्रतिवन्धी नाम देना चाहिये ?

समाधान—यह तो हमे इष्ट ही है अर्थात् अनन्तानुवन्धीको सम्यक्त्व और चारित्र दोनोका प्रतिवन्धी माना ही है। किन्तु सूत्रमें विवक्षित नयकी अपेक्षा उस प्रकारका कथन नही किया। इस शका-समाधानसे यह स्पष्ट होता है कि अनन्तानुवन्धो सम्यक्त्व और चारित्र दोनोका घात करती है और उसके उपशमादि होनेपर सम्यक्त्वके साथ चारित्रका अश भी प्रकट होता है किन्तु चतुर्थ गुणस्थानमे उसकी मुख्यता न होनेसे विवक्षा नही है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सिद्धान्तमें कहाँ, कौन कथन, किस अपेक्षासे किया गया है इस नयविवक्षाको दृष्टिमे रखना आवश्यक है अन्यथा अर्थका अनर्थ हो सकता है। इस तरहकी सैद्धान्तिक चर्चाओसे धवला टीका भरी हुई है। कही कही उसमे ऐसे कथन हैं जो अन्यत्र कथनसे भिन्न जाते हैं। जैसे उसमें श्रेणिमें धर्म्यध्यान वतलाया है। लिखा है—असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत, उपशामक और क्षपक, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय जीवोके धर्म्यध्यानकी प्रवृत्ति होती हैं ऐसा जिनदेवका उपदेश है। इससे जाना जाता है कि धर्म्यध्यान कपायसहित जीवोके होता है (पु० १३, पृ० ७४) तत्त्वार्थसूत्र तथा उसके टीकाग्रथोमें सर्वत्र श्रेणिमें शुक्लध्यान वतलाया है। १३वी पुस्तकमें कर्म अनियोगद्वारके अन्तर्गत तपोकर्म प्ररूपणामें ध्यानका विस्तारसे वर्णन है।

इसी तरह इसी पुस्तकके प्रकृति अनुयोगद्वारमे कथित ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतियोका व्याख्यान करते हुए धवलामे पाचो ज्ञानोके और उनके भेद-प्रभेदोकी वडी विस्तारसे चर्चा की है। ज्ञानकी इतनी विस्तृत चर्चा अन्यत्र देखनेमें नही आती। इस तरह धवला टीकामें वहुत विषय भरा हुआ है। इस प्रकार ये प्रकृत ग्रन्थके सम्वन्धमें ज्ञातव्य वाते हैं।

—सम्पादक

विषय-सूची

श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यविरचित

षट्खण्डागम-सत्प्ररूपणासूत्र

हिन्दी विवेचनसहित

आचार्य पुष्पदन्त सत्प्ररूपणाका आरम्भ करते हुए मगलसूत्र कहते है—

णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं ॥१॥

अरिहतोको नमस्कार हो, सिद्धोको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोको नमस्कार हो और लोकमे सब साधुओको नमस्कार हो।

शङ्का—अरिहत किसे कहते है ?

समाधान—'अरि' अर्थात् शत्रुओके 'हनन' अर्थात् नाश करनेसे 'अरिहन्त' सज्ञा प्राप्त होती है।

शङ्का—अरि कौन है ?

समाधान—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगतिमे होनेवाले सब दु खोका मूल कारण मोह है। अत मोहको 'अरि' अर्थात् शत्रु कहा है।

शङ्का—अकेले मोहको ही 'अरि' मान लेनेसे बाकीके सात कर्म व्यर्थ हो जायेगे ?

समाधान—बाकीके सब कर्म मोहके ही अधीन है। मोहके विना शेष कर्म अपने-अपने कार्य-को करनेमे असमर्थ पाये जाते हैं, अत सच्चा 'अरि' मोह ही है।

शङ्का—मोहके नष्ट हो जानेपर भी कितने ही काल तक शेष कर्मोंकी सत्ता रहती है, इसलिये उन्हे मोहके अधीन मानना ठीक नही है ?

समाधान—मोहरूप अरिके नष्ट हो जानेपर शेष कर्मोमे जन्म-मरणकी परम्परारूप ससार-को उत्पन्न करनेकी शक्ति नही रहती। अत उसका होना न होनेके बराबर है। अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय कर्मोंके नाश करनेसे 'अरिहन्त' सज्ञा प्राप्त होती है।

शङ्का—केवल तीन कर्मोंके ही विनाशका कथन क्यो किया है ?

समाधान—इन तीनो कर्मोके नाश हो जानेपर शेप कर्मोंका नाश अवश्य हो जाता है। अत उनके नाशसे 'अरिहन्त' सज्ञा प्राप्त होती है।

अथवा 'रहस्य' के अभावसे भी 'अरिहन्त' सज्ञा प्राप्त होती है। रहस्य अन्तरायकर्मको कहते हैं। अन्तरायकर्मका नाश शेष तीन घातियाँ कर्मोके नाशका अविनाभावी है। तथा अन्तरायकर्म-का नाश होनेपर अघातियाकर्म गले हुए बीजकी तरह शक्तिहीन हो जाते है।

शङ्का—सिद्ध किन्हे कहते है ?

समाधान—जिनके ज्ञानावरण आदि आठो कर्म नष्ट हो चुके हैं उन्हे सिद्ध कहते हैं।

शङ्का—सिद्ध और अरिहन्तोमे क्या भेद है ?

समाधान—आठो कर्मोको नष्ट करनेवाले सिद्ध होते हैं, और चार घातिया कर्मोंको नष्ट करनेवाले अरिहन्त होते हैं।

शङ्का—चार घातिया कर्मोके नष्ट हो जानेपर अरिहन्तोकी आत्माके समस्त गुण प्रकट हो जाते हैं, अत सिद्धो और अरिहन्तोमे गुणोकी अपेक्षा कोई भेद नही हो सकता ?

समाधान—अरिहन्तोके अघातिया कर्मोंका उदय और सत्त्व पाया जाता है, अत दोनोमे गुणोकी अपेक्षा भी भेद है।

शङ्का—यद्यपि अरिहन्तोके अघातिया कर्मोंका उदय और सत्त्व है किन्तु शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा वे अघातिया कर्म अधजलेसे होनेके कारण अपना कार्य करनेमे समर्थ नही हैं ?

समाधान—ऐसा नही है, क्योकि यदि अरिहन्तके आयु आदि कर्म अपना-अपना कार्य करने मे असमर्थ माने जायेंगे तो अरिहन्तका शरीर छूट जाना चाहिये। परन्तु आयु पूरी होने तक शरीर नही छूटता, इसलिये आयु आदि शेष कर्मोंका कार्य करना सिद्ध है।

शङ्का—कर्मोंका काम तो चौरासी लाख योनियोमे भ्रमण करना है। वह काम अघातिया कर्मोंके रहनेपर भी अरिहन्तके नही पाया जाता। तथा अघातिया कर्म आत्माके अनुजीवी गुणोका घात करनेमे असमर्थ हैं, इसलिये अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठीमे गुणोकी अपेक्षा भेद मानना ठीक नही है ?

समाधान—तो फिर सलेपता और निर्लेपताकी अपेक्षा अरिहन्तो और सिद्धोमे भेद सिद्ध है सिद्ध परमेष्ठी आठो कर्मोंसे रहित होनेके कारण निर्लेप हैं, जब कि अरिहन्त परमेष्ठी सलेप हैं, क्योकि उनके चार घातिया कर्म पाये जाते हैं।

शङ्का—आचार्य किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य इन पांच आचारोका स्वय आचरण (पालन) करते हैं और दूसरे साधुओसे आचरण कराते है, उन्हे आचार्य कहते हैं। वे ग्यारह अग के अथवा कम-से-कम आचारागके धारी होते हैं। स्वसमय और परसमयमे पारगत होते हैं, मेरुके समान निश्चल और पृथिवीके समान सहनशील होते हैं, निर्दोष रीतिसे छह आवश्यकोका पालन करते हैं, सौम्यमूर्ति और अन्तरग बहिरग परिग्रहसे रहित होते हैं, तथा सघके सग्रह और निग्रहमे कुशल होते हैं।

शङ्का—उपाध्याय परमेष्ठी किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जो साधु चौदह पूर्वोंका अवगाहन करके मोक्षमार्गमे स्थित होते हैं और मोक्षके इच्छुक मुनियोको उपदेश देते हैं उनको उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। वे सघके सग्रह और निग्रहको छोडकर आचार्यके अन्य समस्त गुणोंसे युक्त होते हैं।

शङ्का—साधु किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जो आत्मस्वरूपकी साधना करते हुए पाँच[1] महाव्रतोको धारण करते है, तीन[2]

---

१ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत हैं।

२ मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ये तीन गुप्तियाँ हैं।

गुप्तियोसे सुरक्षित हैं, अठारह हजार शीलके भेदोको और चौरासी लाख उत्तरगुणोको पालते हैं वे साधु परमेष्ठी है। वे सिंहके समान पराक्रमी, हाथीके समान स्वाभिमानी, बैलके समान भद्र, मृगके समान सरल, पशुके समान गोचरीवृत्ति करनेवाले, पवनके समान नि सग, सूर्यके समान तेजस्वी, सागरके समान गम्भीर, सुमेरुके समान अकम्प, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक और पृथ्वीके समान सहनशील होते हैं।

विशेष—इस मत्रमे जो 'सर्व' और 'लोक' पद है, वे अन्तदीपक हैं। अत उन्हे प्रत्येक नमस्कारपदके साथ जोड़ लेना चाहिये। यथा—लोकमे रहनेवाले सब अरिहन्तोको नमस्कार हो, सब सिद्धोको नमस्कार हो, इत्यादि।

शंका—सब कर्मोंसे रहित सिद्ध परमेष्ठीके होते हुए अघातिया कर्मोंसे युक्त अरिहन्तोको पहले नमस्कार क्यो किया?

समाधान—अरिहन्त परमेष्ठीके उपदेशसे ही सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोमे सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगोको देव, शास्त्र और गुरुका यथार्थ ज्ञान नही हो सकता था। इसलिये उपकारकी अपेक्षा पहले अरिहन्तोको नमस्कार किया है।

शङ्का—सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशीको ही जैनधर्ममे सच्चा देव कहा है। तीर्थङ्कर भगवान महावीर कर्मकलङ्कसे यदि रहित थे तो वे अशरीर होगे और शरीररहित होनेसे उनका उपदेश नही बन सकता। यदि वे कर्मकलकसे सहित थे तो वे सच्चे देव नही कहे जा सकते और इसलिये उनका उपदेश आगम नही कहा जा सकता। क्योकि जो देव नही है यदि उसके वचनको भी आगम माना जायेगा तो धूर्त पुरुषोंके वचनोको भी आगम कहा जाने लगेगा?

समाधान—जैनधर्ममे अरहन्तोको समस्त कर्मकलकसे रहित तो नही माना है। किन्तु चार घातिया कर्मोंसे रहित माना है। चार घातिया कर्म ही सब बुराइयोकी जड है, उन्हींसे देवत्वका विनाश होता है। अत अरहत अवस्थाको प्राप्त भगवान महावीरके चार घातिकर्मोंका अभाव होनेसे देवत्वका अभाव नही माना जा सकता।

शङ्का—अरिहन्त अवस्थाको प्राप्त जीवोके चार घातिया कर्म नही होते तो मत होओ, किन्तु चार अघातिया कर्म तो होते हैं, तब वह सच्चे देव कैसे हो सकते हैं?

समाधान—चार अघातिया कर्म देवत्वके विरोधी नही है। यदि वे देवत्वके विरोधी होते तो उनको अघातिया नही कहा जाता। उनके 'अघातिया' नामसे ही यह स्पष्ट है कि वे देवत्वके विरोधी नही हैं। इसका खुलासा इसप्रकार है—अरिहन्त परमेष्ठी मोहसे रहित होते हैं। अत नाम, आयु और गोत्रके निमित्तसे उनमे राग और द्वेप उत्पन्न नही हो सकते। इसलिये नामकर्म, आयु-कर्म और गोत्रकर्म बुराईयोके कारण नही हैं। रहा वेदनीय कर्म, सो चार घातिया कर्मोकी सहायता से ही वेदनीय कर्म दु ख उत्पन्न करता है। परन्तु अरहन्तके चार घातिया कर्म नही हैं, अत जैसे पानी और मिट्टीकी सहायताके विना बीज अपना काम नही कर सकता, वैसे ही घातिया कर्मोंके विना वेदनीय भी अपना कार्य नही करता। यदि घातिया कर्मोंकी सहायताके बिना भी वेदनीय कर्म दु ख देनेमे समर्थ हो तो केवलीके रत्नत्रयकी बाधारहित प्रवृत्ति नही हो सकती, क्योकि वेदनीय कर्मके

निमित्तसे भूख-प्यासकी बाधा होनेपर अरहन्तको भोजन और जलकी तृष्णा होना स्वाभाविक है और ऐसा होनेसे वह मोही ठहरते हैं।

शङ्का—अरहन्त तृष्णावश भोजन नही करते, किन्तु ज्ञान, सयम और ध्यानके लिये भोजन करते हैं ?

समाधान—ऐसा कहना भी उचित नही है। इसका खुलासा इस प्रकार है—अरहन्त ज्ञानकी प्राप्तिके लिये भोजन नही करते, क्योकि उन्होने केवलज्ञानको प्राप्त कर लिया है और केवलज्ञानसे बडा कोई दूसरा ज्ञान है नही, जिसकी प्राप्तिके लिये वे भोजन करें। सयमके लिये भी वे भोजन नही करते, क्योकि यथाख्यात सयमकी प्राप्ति हो चुकी है। इसी तरह ध्यानके लिये भी वे भोजन नहीं करते, क्योकि उन्होने तीनो लोकोको पूरी तरहसे जान लिया है, इसलिए उनके ध्यान करने योग्य कोई पदार्थ ही नही रहा। अत भोजन करनेका कोई कारण न रहनेसे भगवान् भोजन नही करते। यदि वे भोजन करते है तो यही मानना पडता है कि ससारी जीवोके समान बल, आयु, स्वाद और सुखके लिये ही वे भोजन करते है। और ऐसा मानने पर वे मोही ठहरते हैं और मोही होने पर उन्हे केवलज्ञानकी उत्पत्ति नही हो सकती।

शङ्का—केवलज्ञानसे रहित जीवके वचनोको आगम माननेमे क्या हानि है ?

समाधान—ऐसा माननेपर राग, द्वेष और मोहसे कलकित व्यक्तियोमे सत्यताका अभाव होनेसे उनके वचन आगम नही कहे जा सकेंगे। और आगमके अभावमे रत्नत्रयकी प्रवृत्ति नही बनेगी, जिससे धर्मतीर्थका उच्छेद हो जायेगा। अत शरीरगत समस्त दोषोंसे रहित और क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, अनन्तवीर्य आदि गुणोसे युक्त तीर्थङ्कर भगवानके द्वारा उपदिष्ट आगम प्रमाण है।

शङ्का—भगवान[1] महावीरने धर्मतीर्थका उपदेश कहाँ दिया ?

समाधान—जब राजा श्रेणिक अपनी चेलना रानीके साथ पृथिवीका शासन करता था तब मगध देशके राजगृह नगरकी नैऋत्य दिग्गमे स्थित विपुलाचलपर भगवान महावीरने धर्मतीर्थका उपदेश दिया।

शङ्का—किस कालमे धर्मतीर्थका उपदेश दिया ?

समाधान—चौथे कालमे पन्द्रह दिन और आठ माह अधिक पचहत्तर वर्ष बाकी रहने पर आसाढ शुक्ला छठके दिन, बहत्तर वर्षकी आयु लेकर भगवान महावीर गर्भमे आये। उन बहत्तर वर्षोंमेसे तीस वर्ष तक वे कुमार अवस्थामे घरमे रहे, फिर दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक तप किया। उसके बाद तीस वर्ष तक केवलज्ञानी अवस्थामे रहे। अत पचहत्तर वर्ष, आठ माह और १५ दिन-मेसे कुमार कालके तीस वर्ष, दोक्षा कालके बारह वर्ष कम कर देने पर, चौथे कालमे तेतीस वर्ष आठ माह और १५ दिन शेष रहनेपर भगवान महावीरको केवलज्ञान हुआ। इसमेसे छियासठ दिन (२ माह ६ दिन) कम कर देनेपर चतुर्थकालमे तेतीस वर्ष, ६ माह और नौ दिन शेष रहनेपर भगवान महावीरने धर्मतीर्थका उपदेश दिया।

शङ्का—छियासठ दिन किसलिये कम किये गये ?

---

१ जयध०, भा० १, पृ० ७३ से।

समाधान—भगवान् महावीरको केवलज्ञान उत्पन्न हो जानेपर भी छियासठ दिन तक उनका उपदेश नही हो सका था, क्योकि कोई गणधर नही था। ऐसा नियम है कि जिसने अपने (तीर्थङ्कर के) पादमूलमे महाव्रत धारण किये हो, ऐसे पुरुषके बिना दिव्यध्वनि (तीर्थङ्करकी वाणी) नही खिरती।

शङ्का—तब गणधरकी प्राप्ति कैसे हुई ?

समाधान—उस समय वेद-वेदागमे पारगत एक शीलवान् श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसका नाम इन्द्रभूति गौतम था। सौधर्मेन्द्र उसके पास गया। और उसके सामने कुछ प्रश्न रखे। उत्तर न दे सकने पर, अभिमानमे आकर वह ब्राह्मण सौधर्मेन्द्रके साथ उसके गुरु महावीरसे शास्त्रार्थ करनेके लिये चल दिया। दूरसे मानस्तम्भको देखते ही उसका मान जाता रहा। और भगवान महावीरके दर्शन करनेपर उसके भाव अत्यन्त विशुद्ध हो गये। उसने जिनेन्द्र महावीरकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उन्हे पचागसे नमस्कार किया और तत्काल जिनदीक्षा धारण करली। उसके अग्निभूति और वायुभूति नामक दोनो भाइयोने भी उसीका अनुसरण किया। दीक्षा लेनेके पश्चात् एक मुहूर्तके भीतर ही इन्द्रभूति गणधरके समस्त लक्षणोसे युक्त हो गया और भगवान महावीरके मुखसे निकलनेवाले बीजपदोको समझने योग्य हो गया। तब श्रावण कृष्णा पडवाके पूर्वाह्नमे भगवानकी प्रथम देशना हुई। और इन्द्रभूति गौतम गणधरने उसे बारह अगोमे निबद्ध किया। अत भावश्रुत और अर्थपदोके कर्ता भ० महावीर हैं तथा द्रव्यश्रुतके कर्ता गौतम गणधर है। इस तरह गौतम गणधरसे ग्रन्थरचना हुई।

शङ्का—गौतम गणधरके पश्चात् श्रुतावतार कैसे हुआ ?

समाधान—गौतम गणधरने बारह अग और चौदह पूर्वोका ज्ञान लोहाचार्य उपनाम सुधर्मा स्वामीको दिया। सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामीको दिया। गौतम स्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनो ही सकलश्रुतके पारगामी अन्तमे केवलज्ञानको प्राप्त करके मुक्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँचो ही आचार्य क्रमसे चौदह पूर्वके धारी हुए। इनके पश्चात् विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह महापुरुष ग्यारह अग और दस पूर्वोके धारक तथा शेष चार पूर्वोके एकदेशके धारक क्रमसे हुए। इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कसाचार्य ये पाँचो आचार्य ग्यारह अगो और चौदह पूर्वोके एकदेशके धारक क्रमसे हुए। इसके बाद सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, और लोहार्य ये चारो आचार्य सम्पूर्ण आचारागके धारक और शेष अग और पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। इसके बाद सभी अगो और पूर्वोका एकदेश आचार्यपरम्परासे आता हुआ आचार्य धरसेनको प्राप्त हुआ। एकबार आचार्य धरसेन सौराष्ट्र देशके गिरिनगरकी चन्द्रगुफामे निवास करते थे। उन्हे भय हुआ कि मेरे बाद श्रुतका विच्छेद हो जायगा। उस समय दक्षिणापथके आचार्य किसी धर्मोत्सवके निमित्तसे महिमा नगरीमे एकत्र हुए थे। आचार्यधरसेनने उनके पास एक पत्र भेजा। पत्रसे धरसेनाचार्यके आशयको भलीभाति जानकर उन आचार्योने शास्त्रके अर्थको ग्रहण और धारण करनेमे समर्थ दो साधुओको आन्ध्रदेशकी वेणा नदीके तटसे आचार्य धरसेनके पास भेजा। धरसेनने रात्रिके पिछले पहरमे स्वप्न देखा कि दो श्वेत बैलोने आकर उन्हे नमस्कार किया है। उसी दिन उन दोनो साधुओने धरसेनके पादमूलमे पहुँचकर प्रणाम

किया। दो दिन विश्राम करनेके पश्चात् तीसरे दिन उन दोनोने आचार्य धरसेनसे निवेदन किया कि अमुक कार्यसे हम दोनो आपकी सेवामे उपस्थित हुए हैं। साधुओको आशीर्वाद देकर धरसेनने विचार किया कि स्वच्छन्दचारियोको विद्या देना खतरनाक है। अत उन्होने उनकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया। उन्होने उन दोनो साधुओको दो विद्याएँ सिद्ध करनेके लिये दी। उनमेसे एकमे अधिक अक्षर थे, और दूसरीमे हीन अक्षर थे। जब उनको विद्याएँ सिद्ध हो गईं तो उन्होने देखा कि विद्याकी अधिष्ठात्री देवताओमेसे एकके दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। दोनो साधु मत्रसम्बन्धी व्याकरणशास्त्रमे निपुण थे। अत उन्होने दोनो मंत्रोको शुद्ध करके फिरसे सिद्ध किया, जिससे वे दोनो विद्या देवता अपने स्वाभाविक सुन्दररूपमे दृष्टिगोचर हुईं। तब उन्होने धरसेनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। सन्तुष्ट होकर धरसेनने उन्हे पढाना प्रारम्भ किया। आसाढ शुक्ला एकादशीके पूर्वाह्णमे ग्रन्थ समाप्त हुआ। दोनो साधुओके विनयपूर्वक विद्याभ्यासकी समाप्तिसे सन्तुष्ट होकर भूतजातिके व्यन्तरदेवोने उनमेसे एककी खूब पूजा की। उसे देखकर धरसेनने उनका नाम 'भूतबलि' रख दिया। दूसरे साधुकी अस्तव्यस्त दन्तपक्तिको उन देवोने ठीक कर दिया, इससे धरसेनने उनका नाम 'पुष्पदन्त' रक्खा। ग्रन्थ समाप्त होते ही आचार्य धरसेनने उसी दिन उन साधुओको वहाँसे विदा कर दिया। दोनोने अकलेश्वरमे आकर वर्षाकाल बिताया। उसके बाद आचार्य पुष्पदन्त तो जिनपालितको देखकर तथा उसे अपने साथ लेकर वनवास देशको चले गये और भूतबलि द्रमिल देशको चले गये। उसके बाद पुष्पदन्त आचार्यने जिनपालितको दीक्षा देकर बीस प्ररूपणाओको लिये हुए सत्प्ररूपणाके सूत्र बनाये और उन्हे जिनपालितको पढाकर आचार्य भूतबलिके पास भेजा। जिनपालितसे सत्प्ररूपणाके सूत्रोको पाकर तथा आचार्य पुष्पदन्तको अल्पायु जानकर भूतबलिने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका विच्छेद होनेके भयसे द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रन्थ रचना की। अत सत्प्ररूपणासूत्रोके रचयिता भगवान पुष्पदन्त हैं और शेषके रचयिता भगवान् भूतबलि हैं। इसतरह मूलग्रन्थकर्ता भगवान् वर्द्धमान महावीर हैं, अनुग्रन्थकर्ता गौतमस्वामी हैं और उपग्रन्थकर्ता भूतबलि, पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य हैं।

अब अनुगमका कथन करते हैं—

एत्तो इमेसिं चोदसण्ह जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णायव्वाणि भवंति ॥२॥

इस श्रुतप्रमाणसे इन चौदह गुणस्थानोंके अन्वेषणके लिये ये चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं ॥ २ ॥

शङ्का—यहाँ कौन मार्गणास्थान लिये गये हैं—द्रव्यरूप या भावरूप ?

समाधान—जैन सिद्धान्तमे मार्गणास्थानसे भावमार्गणास्थान ही विवक्षित है।

शङ्का—यह कैसे जाना ?

समाधान—उक्त सूत्रके 'इमाणि' पदका व्याख्यान करते हुए वीरसेन स्वामीने अपनी धवला टीकामे लिखा[1] है कि 'इमानि' इस पदसे प्रत्यक्षीभूत भावमार्गणास्थानोका निर्देश किया गया है,

१ 'इमानि' इत्यनेन भावमार्गणास्थानानि प्रत्यक्षीभूतानि निर्दिश्यन्ते, नार्थमार्गणास्थानानि, तेपा देशकालस्वभावविप्रकृष्टाना प्रत्यक्षतानुपपत्ते'।—षट्खण्डागम, पु० १, पृ० १३१।

द्रव्यमार्गणाओका ग्रहण नही किया गया है; क्योकि द्रव्यमार्गणाएँ देश, काल, और स्वभावकी अपेक्षा दूरवर्ती है। अत अल्पज्ञानियोको उनका प्रत्यक्ष नही हो सकता।

शङ्का—मार्गणा किसे कहते है ?

समाधान—सत्, सख्या आदि अनुयोगद्वारोसे युक्त चौदह जीवसमास, जिनमे या जिनके द्वारा खोजे जाते हैं, उन्हे मार्गणा कहते है। कहा भी है—

'जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जते जहा तहा दिट्ठा।
ताओ चोद्दस जाणे सुदणाणे मग्गणा होंति॥

'श्रुतज्ञानमे जिस प्रकार जीव पदार्थ देखे गये है उसी प्रकार वे जिन नारकादि पर्यायोके द्वारा अथवा जिन नारकादि पर्यायोमे खोजे जाते हैं, उन्हे मार्गणा कहते हैं और वे चौदह होती हैं, ऐसा जानो।'

त जहा ॥३॥

वे चौदह मार्गणास्थान इस प्रकार हैं ?

गई इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥४॥

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणाएँ है। इनमे जीव खोजे जाते है॥ ४॥

शङ्का—इस सूत्रमे गति आदि प्रत्येक पदके साथ सप्तमी विभक्तिका निर्देश क्यो किया है ?

समाधान—गति आदि मार्गणाओको जीवोका आधार बतानेके लिये सप्तमी विभक्तिका निर्देश किया है।

शङ्का—लोकमे अन्वेषणके लिये चार वस्तुओकी आवश्यकता होती है—एक मृगयिता (खोजने वाला), एक मृग्य (जो खोजा जाये), एक मार्गणा (खोज) और एक मार्गणोपाय (खोजके साधन)। परन्तु यहाँ वे चारो प्रकार नही पाये जाते, इसलिये मार्गणाका कथन नही बनता ?

समाधान—यहाँ भी वे चारो प्रकार पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धालु भव्यजीव मृगयिता है। चौदह गुणस्थानोंसे युक्त जीव मृग्य है। जो मृग्य अर्थात् चौदह गुणस्थानोसे युक्त जीवोके आधारभूत है अथवा खोज करनेवाले भव्य जीवको खोज करनेमे अत्यन्त सहायक हैं ऐसी गति आदि मार्गणा है। और गुरु शिष्य वगैरह मार्गणाके उपाय हैं।

शङ्का—इस सूत्रमे मृगयिता, मृग्य और मार्गणोपायको छोडकर केवल मार्गणाका ही कथन क्यो किया ?

समाधान—मार्गणा शेष तीनोका अविनाभावी है। इसलिए मार्गणाका कथन करनेसे शेष तीनोका ग्रहण हो जाता है।

शङ्का—गति किसे कहते हैं ?

समाधान—गतिनामकर्मके उदयसे होनेवाली आत्माकी पर्यायविशेषको गति कहते है। अथवा एक भवसे दूसरे भवमे जानेको गति कहते है। कहा भी है—

गइकम्मविणिव्वता जा चेट्ठा सा गई मुणेयव्वा।
जीवा दु चाउरगं गच्छति त्ति य गई होई॥

'गतिनामकर्मके उदयसे जीवकी जो चेष्टाविशेष होती है उसे गति कहते हैं। अथवा जिसके निमित्तसे जीव चतुर्गतिमे जाते हैं उसे गति कहते हैं।'

शङ्का—इन्द्रिय किसे कहते हैं?

समाधान—अन्य इन्द्रियके विषयमे प्रवृत्ति न करके जो केवल अपने विषयमे ही रत हैं उन्हे इन्द्रिय कहते है। अर्थात् अपने अपने विषयका स्वतत्र आधिपत्य करनेसे इन्द्रियाँ कहलाती हैं, क्योकि 'इन्दन' का अर्थ आधिपत्य होता है। कहा भी है—

अहमिदा जह देवा अविसेस अहमहति मण्णता।
ईसती एक्कमेक इदा इव इदिए जाण॥

'जैसे अहमिन्द्र देव सेवक और स्वामीके भेदसे रहित होकर किसीके अधीन न होते हुए स्वय अपनेको इन्द्र मानते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी अन्य इन्द्रियोके अधीन न होकर अपने अपने विषयका ज्ञान करानेमे समर्थ होती हैं, अत अहमिन्द्रोकी तरह इन्द्रियोको समझना।'

शङ्का—काय किसे कहते हैं?

समाधान—योगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे सचित हुए औदारिक आदिरूप पुद्गलपिण्डको काय कहते हैं। कहा भी है—

अप्पपउत्ति-सचिद-पोग्गलपिण्ड वियाण कायो त्ति।
सो जिणमदम्हि भणिओ पुढविक्कायादयो सो दो॥

'आत्माकी योगरूप प्रवृत्तिसे सचित हुए औदारिक आदिरूप पुद्गलपिण्डको काय जानो। वह काय जिनमतमे पृथिवीकाय आदिके भेदसे छह प्रकारका कहा गया है। और वे पृथिवी आदि छह काय त्रसकाय और स्थावर कायके भेदसे दो भेदोमे विभाजित हैं।'

शङ्का—योग किसे कहते हैं?

समाधान—आत्माकी प्रवृत्तिके निमित्तसे कर्मोके ग्रहण करनेमे कारणभूत वीर्यकी उत्पत्तिको योग कहते हैं। अथवा आत्माके प्रदेशोके सकोच-विस्ताररूप होनेको योग कहते है। कहा भी है—

मणसा वचसा काएण चावि जुत्तस्स वीरियपरिणामो।
जीवस्स प्पणियोओ जोगो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठो॥

'मन, वचन और कायके निमित्तसे होनेवाली क्रियासे युक्त आत्माका जो वीर्यरूप परिणाम होता है उसे योग कहते हैं। अथवा जीवके प्रणियोग अर्थात् परिस्पन्दरूप क्रियाको योग कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।'

शङ्का—वेद किसे कहते हैं?

समाधान—आत्माकी प्रवृत्तिमे मैथुनरूप सम्मोहकी उत्पत्तिको वेद कहते हैं। कहा भी है—

वेदस्सुदीरणाए बालत्त पुण णियच्छदे बहुसो।
थी-पु-णवुंसए वि य वेए त्ति तओ हवइ वेओ ॥

"वेदकर्मकी उदीरणासे यह जीव अनेक प्रकारकी मूर्खताएँ करता है। और स्त्रीभाव, पुरुष-भाव और नपुसकभावका वेदन करता है, इसलिये वेदकर्मके उदयसे होनेवाले भावको वेद कहते हैं।"

शङ्का—कषाय किसे कहते हैं?

समाधान—सुख-दुखरूपी नाना प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी खेतको जो कर्षण करे अर्थात् जोते बोए, उसे कषाय कहते है। कहा भी है—

'सुह-दुक्ख-सुबहुसस्स कम्मक्खेत्त कसेदि जीवस्स।
ससारदूरमेर तेण कसायो त्ति ण वेंति ॥

'सुख-दु ख आदि अनेक प्रकारके धान्योको उत्पन्न करनेवाले तथा जिसकी ससाररूपी मेड (सीमा) बहुत दूर है, ऐसे कर्मरूपी खेतको जो कर्षण करती है उसे कषाय कहते हैं।'

शङ्का—ज्ञान किसे कहते हैं?

समाधान—जिसके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्यायोको जानते हैं, सत्यार्थका प्रकाश करनेवाली उस शक्तिविशेषको ज्ञान कहते है। कहा भी है—

जाणइ तिकालसहिए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेए।
पच्चक्ख च परोक्ख अणेण णाणे त्ति ण वेंति ॥

'जिसके द्वारा जीव त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यो, उनके गुण और उनकी अनेक प्रकारकी पर्यायो-को प्रत्यक्ष और परोक्षरूपसे जानता है, उसको ज्ञान कहते है।'

शङ्का—सयम किसे कहते हैं?

समाधान—व्रतोका धारण, समितियोका पालन, कषायोका निग्रह, दण्डोका त्याग और इन्द्रियोका जय सयम है। कहा भी है—

"वय-समिइ-कसायाणं दंडाण तहिंदियाण पचण्हं।
धारण-पालण-णिग्गह-चाग-जया सजमो भणिओ ॥

'अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाच महाव्रतोका धारण करना, ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण एव उत्सर्ग इन पाच समितियोका पालना, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोका निग्रह करना, मन, वचन, और काय इन तीन दण्डोका त्याग करना तथा पाच इन्द्रियोको जीतना इनको सयम कहते है।

शङ्का—दर्शन किसे कहते है?

समाधान—अन्तर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन और बहिर्मुख चित्प्रकाशको ज्ञान कहते हैं।

शङ्का—अपने अपने क्षयोपशमके अनुसार जो जीवके स्वरूपका सवेदन होता है उसे चित्

२

अथवा चैतन्य कहते हैं। और अपनेसे भिन्न बाह्य पदार्थोंके ज्ञानको प्रकाश कहते हैं। तथा जिसके द्वारा यह जीव अपने स्वरूपको और पर पदार्थोंको जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अत चित्प्रकाशरूप दर्शन और ज्ञानमे भेद सिद्ध नही होता?

समाधान—जिस तरह ज्ञानके द्वारा 'यह घट है' 'यह पट है', इत्यादि व्यवस्था होती है उस तरह दर्शनके द्वारा नही होती, इसलिये दर्शन और ज्ञानमे भेद है।

शङ्का—तब तो अन्तरग सामान्य और बहिरग समान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन है और अन्तर्विशेष तथा बाह्यविशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है, ऐसा मान लेना चाहिये?

समाधान—सामान्यको छोडकर केवल विशेष अर्थक्रिया करनेमे असमर्थ है। और जो अर्थ-क्रिया करनेमे असमर्थ होता है वह अवस्तुरूप पडता है। अत अवस्तुरूप विशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान प्रमाण नही हो सकता। इसी तरह केवल सामान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन भी प्रमाण नही माना जा सकता। साराश यह है कि जब सामान्य रहित विशेष और विशेष रहित सामान्य अवस्तु हैं तो केवल विशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान और केवल सामान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन कैसे प्रमाण माना जा सकता है। अत सामान्य-विशेषात्मक बाह्य पदार्थको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है और सामान्यविशेषात्मक आत्मरूपको ग्रहण करनेवाला दर्शन है।

शङ्का—उक्त प्रकारसे दर्शन और ज्ञानका स्वरूप मान लेने पर 'सामान्यग्रहणको दर्शन कहते हैं' आगमके इस वचनके साथ विरोध क्यो नही आता है?

समाधान—सम्पूर्ण बाह्य पदार्थोंके प्रति साधारण होनेसे आत्माका ग्रहण सामान्यपदसे किया है। और उसकी पुष्टिके लिये 'पदार्थोंके आकारको न करके' यह पद दिया है। अर्थात् भेद रूपसे प्रत्येक पदार्थको ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। कहा भी है—

"ज सामण्ण गहण भावाणं णेव कट्टुमायार।
अविसेसदूण अत्थे दसणमिदि भण्णदे समए॥

'सामान्य-विशेषात्मक बाह्य पदार्थोंको अलग-अलग भेदरूपसे ग्रहण न करके जो सामान्य-ग्रहण होता है उसे आगममे दर्शन कहा है।'

शङ्का—लेश्या किसे कहते हैं?

समाधान—कषायसे अनुरजित काययोग, वचनयोग और मनोयोगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। अर्थात् केवल कषाय और केवल योगको लेश्या नही कहते, किन्तु कषायानुबिद्ध योग-प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। किन्तु इससे यह निश्चय नही कर लेना चाहिए कि ग्यारहवें आदि गुण-स्थानवर्ती वीतरागियोके केवल योग है इसलिये वहा लेश्या नही है, क्योकि लेश्यामे योग प्रधान है, कषाय प्रधान नही है, क्योकि वह योगका विशेषण है। कहा भी है—

'लिंपदि अप्पीकीरदि एदाए णियय-पुण्ण-पाव च।
जीवो त्ति होइ लेस्सा लेस्सागुणजाणय-क्खादा॥

'जिसके द्वारा जीव अपनेको पुण्य और पापसे लिप्त करता है उसको लेश्या कहते हैं, ऐसा लेश्याके स्वरूपको जाननेवालोने कहा है।

शङ्का—भव्य किसे कहते हैं?

समाधान—जो निर्वाणपद प्राप्त करनेके योग्य हैं उन्हे भव्य कहते है और जो उसके योग्य नही हैं उन्हे अभव्य कहते हैं ।

शङ्का—सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

समाधान—शुद्धनयसे प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी अपेक्षा तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहा भी है—

'छप्पंच-णव-विहाण अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होई सम्मत्तं ॥'

'जिनेन्द्र भगवानके द्वारा उपदिष्ट छ द्रव्य, पाच अस्तिकाय और नौ पदार्थोंका आज्ञा अर्थात्, आप्तवचनके आश्रयसे अथवा प्रमाण, नय, निक्षेप आदिसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं।

शङ्का—संज्ञी किसे कहते है ?

समाधान—जो भली प्रकार जाने उसको सज्ञा अथवा मन कहते हैं। और जिसके मन हो उसे सज्ञी कहते हैं। तथा जिसके मन न हो उसे असज्ञी कहते है। अथवा जो शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उसे सज्ञी कहते है। कहा भी है—

'सिक्खा-किरियुवदेसालावग्गाहो मणोवलबेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीदो असण्णी दु ॥'

'जो जीव मनके अवलम्बनसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उसे सज्ञी कहते हैं और जो इन्हे ग्रहण नही कर सकता उसे असज्ञी कहते हैं।'

शङ्का—आहारक किसे कहते हैं ?

समाधान—औदारिक आदि शरीरके योग्य पुद्गलपिण्डके ग्रहण करनेको आहार कहते हैं और आहार करनेवालेको आहारक कहते हैं। कहा भी है—

'आहरदि सरीराणं तिण्ह एगदर-वग्गणाओ जं ।
भासा-मणस्स णियदं तम्हा आहारओ भणिओ ॥'

'औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोमे-से उदय प्राप्त किसी एक शरीरके योग्य तथा भाषा और मनके योग्य पुद्गल वर्गणाओको जो नियमसे ग्रहण करता है उसको आहारक कहते हैं।'

शङ्का—अनाहारक किसे कहते हैं ?

समाधान—जो औदारिक आदि शरीरके योग्य पुद्गल पिण्डको ग्रहण नही करता उसे अनाहारक कहते हैं। कहा भी है—

'विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहदा अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥'

'विग्रहगतिमे स्थित चारो गतिके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध ये नियमसे अनाहारक होते हैं। और शेष जीव आहारक होते हैं।'

खोजे जानेवाले गुणस्थानोके अनुयोगद्वारोका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एदेसिं चेव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवट्ठादए तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि णायव्वाणि भवंति ।।५।।

इन ही चौदह जीवसमासो (गुणस्थानो)के निरूपण करने रूप प्रयोजनके होनेपर आगे कहे जानेवाले आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं ।। ५ ।।

तं जहा ।।६।।

वे आठ अनुयोगद्वार कौनसे हैं ।। ६ ।।

सतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो फोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ।।७।।

सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये आठ अनुयोगद्वार हैं ।

कहा भी है—

"अत्थित्तं पुण सत अत्थित्तस्स य तहेव परिमाणं ।
पच्चुप्पण्णं खेत्त अदीदपदुप्पण्णण फुसणं ।।
कालो ट्ठिदि अवधरणं अंतरं विरहो य सुण्णकालो य ।
भावो खलु परिणामो सणामसिद्ध खु अप्पबहुं ।।"

अस्तित्वका प्रतिपादन करनेको सत्प्ररूपणा कहते है । जिन पदार्थोंके अस्तित्वका ज्ञान हो गया है उनके परिमाणका कथन करनेको सख्याप्ररूपणा कहते हैं । वर्तमान क्षेत्रका कथन करनेको क्षेत्रप्ररूपणा कहते हैं । अतीत और वर्तमान स्पर्शका कथन करनेको स्पर्शनप्ररूपणा कहते हैं । पदार्थोंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिका कथन करनेको कालप्ररूपणा कहते हैं । विरहकाल अथवा शून्यकालका कथन करनेको अन्तरप्ररूपणा कहते हैं । पदार्थोंके परिणामोका कथन करनेको भावप्ररूपणा कहते हैं और अल्पबहुत्व तो अपने नामसे ही स्पष्ट है।

आगे प्रथम अनुयोगका स्वरूप कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण ।।८।।

सत्प्ररूपणामे दो प्रकारका कथन है—ओघसे और आदेशसे ।।

इस सूत्रमे 'चतुर्दशजीवसमासाना' इस पदकी अनुवृति होती है। इस लिये ऐसा अर्थ करना चाहिये कि 'चौदह जीवसमासोकी सत्प्ररूपणामे'। सामान्यसे कथन करनेको ओघप्ररूपणा कहते हैं और विशेषरूपसे कथन करनेको आदेशप्ररूपणा कहते हैं ।

शङ्का—जीवसमास किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमे जीव भले प्रकारसे रहते हैं उसे जीवसमास कहते हैं ।

शङ्का—जीव कहाँ रहते हैं ?

समाधान—गुणोमे जीव रहते हैं ।

शङ्का—वे गुण कौनसे हैं ?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पाँच प्रकारके

गुण अर्थात् भाव हैं। जो कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके उपसमसे उत्पन्न होता है उसे औपशमिक भाव कहते है। जो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं। जो वर्तमान सर्वघाती स्पर्द्धकोके उदयाभावीक्षयसे और आगे उदय आनेवाले सर्वघाती स्पर्द्धकोके सदवस्थारूप उपशमसे उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षाके बिना जीवके स्वभाव मात्रसे उत्पन्न होता है उसे पारिणामिक भाव कहते है। इन गुणोंके साहचर्यसे आत्मा भी गुण सज्ञाको प्राप्त होता है। कहा भी है–

"जेहि दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहि भावेहि ॥
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहि ॥"

"दर्शनमोहनीय आदि कर्मोंकी उदय, उपशम आदि अवस्थाओके होनेपर उत्पन्न हुए भावोसे युक्त जो जीव देखे जाते है, उन जीवोको सर्वज्ञदेवने उसी गुणसज्ञावाला कहा है।

अब ओघ अर्थात् गुणस्थानोका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ओघेण अत्थि मिच्छाइट्ठी ॥९॥

सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव हैं ॥९॥

शङ्का—मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं ?

समाधान—मिथ्याशब्दका अर्थ असत्य है और दृष्टि शब्दका अर्थ श्रद्धान या रुचि है। इसलिये जिन जीवोकी रुचि असत्यकी ओर होती है उन्हे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। कहा भी है—

'मिच्छत्तं वेयंतो जीवो विवरीयदंसणो होइ।
ण य धम्मं रोचेदि महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥'

'मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्वका अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धावाला होता है। जैसे पित्तज्वरवाले जीवको मीठा रस भी अच्छा नही लगता वैसे ही उसे सच्चा धर्म अच्छा नही लगता।'

अब दूसरे गुणस्थानको कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठी ॥१०॥

सामान्यसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं॥१०॥

शङ्का—सासादनसम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ?

समाधान—सम्यग्दर्शनकी विराधनाको आसादन कहते हैं। जो आसादनसे युक्त हो उसे सासादन कहते हैं। अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जिसका सम्यग्दर्शन नष्ट हो गया है किन्तु जो मिथ्यात्वरूप परिणामोको प्राप्त नही हुआ फिर भी मिथ्यात्वके अभिमुख है उसे सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

शङ्का—दृष्टि तीन हैं—एक समीचीन, एक असमीचीन और एक उभयरूप। सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वकर्मका उदय न होनेसे मिथ्यादृष्टि नही है। समीचीन रुचि न होनेसे सम्यग्दृष्टि भी नही है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वरूप रुचिके न होनेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नही है। इनके अतिरिक्त कोई चौथी दृष्टि है नही। इसलिये सासादन नामक कोई गुणस्थान नही है ?

समाधान—सासादन गुणस्थानमे मिथ्या रुचि रहती है। मिथ्या रुचि दो प्रकारकी है एक अनन्तानुबन्धीके उदयसे उत्पन्न हुई और एक मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई। दूसरे गुण-स्थानमे अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे उत्पन्न हुई मिथ्या रुचि पाई जाती है। इसलिये दूसरे गुण-स्थानवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही है किन्तु मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मिथ्यारुचि वहा नही पाई जाती, इसलिये उसे मिथ्यादृष्टि न कहकर केवल सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं। साराश यह है कि दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे तो सासादन गुणस्थान होता नही। वह होता है अनन्तानुबन्धीके उदयसे। और अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीयका भेद न होकर चारित्रमोह-नीयका भेद है। इसलिये दूसरे गुणस्थानको मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादनसम्यग्दृष्टि कहा है।

शङ्का—जब दूसरे गुणस्थानमे मिथ्यारुचि पाई जाती है तो उसे सम्यग्दृष्टि क्यो कहा है ?

समाधान—पहले वह सम्यग्दृष्टि था, इस अपेक्षासे उसे सम्यग्दृष्टि कहा है। कहा भी है—

'सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो
णासियसम्मतो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥

'सम्यग्दर्शनरूपी रत्नमयीपर्वतके शिखरसे गिरकर जो जीव मिथ्यात्वरूपी भूमिके अभि-मुख है, अतएव जिसका सम्यग्दर्शन तो नष्ट हो चुका है, परन्तु मिथ्यादर्शनकी प्राप्ति नही हुई है उसे सासादनगुणस्थानवर्ती जानना चाहिये।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठी ॥११॥

सामान्यसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं ॥११॥

शङ्का—सम्यग्मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं ?

समाधान—जिस जीवके समीचीन और मिथ्या दोनो प्रकारकी दृष्टि होती है उसे सम्यग्-मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

शङ्का—एक जीवमे एक साथ सम्यक् और मिथ्या दृष्टि होना सभव नही है, इसलिये सम्यग्-मिथ्यादृष्टि नामक तीसरा गुणस्थान नही बनता।

समाधान—जब सम्यक् और मिथ्या श्रद्धाओका क्रमसे एक जीवमे रहना सभव है तो किसी जीवमे एक साथ भी उन दोनोका रहना सभव है, क्योकि पहलेसे भी स्वीकृत अन्य देवताओको त्यागे विना, 'अरिहन्त भी देव हैं' ऐसी सम्यग्मिथ्यारूप श्रद्धावाले पुरुष पाये जाते हैं।

शङ्का—पाच प्रकारके भावोमेंसे तीसरे गुणस्थानमे कौन-सा भाव है ?

समाधान—तीसरे गुणस्थानमे क्षायोपशमिक भाव है।

शङ्का—जो जीव मिथ्यात्वगुणस्थानसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमे आता है उसके क्षायोप-शमिक भाव कैसे सम्भव है ?

समाधान—वर्तमान समयमे मिथ्यात्वकर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोका उदयाभावी क्षय होने-से, सत्तामे रहनेवाले उसी मिथ्यात्वकर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोका उदयाभावलक्षण उपशम होनेसे और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोके उदय होनेसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान होता है, इसलिये उसमे क्षायोपशमिक भाव होता है।

शङ्का—तीसरे गुणस्थानमे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होता है, अत वहा औदयिक भाव क्यो नही कहा ?

समाधान—मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयसे जैसे सम्यक्त्वका एकदम नाश हो जाता है वैसे सम्यग-मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वका एकदम नाश नही होता। इसलिये तीसरे गुणस्थानमे औद-यिक भाव न कहकर क्षायोपशमिक भाव कहा है।

शङ्का—जव सम्यग्मिथ्यात्वका उदय सम्यग्दर्शनको एकदम नष्ट नही करता तो उसे सर्व-घाती क्यो कहा है ?

समाधान—वह सम्यग्दर्शनकी पूर्णताको रोकता है इस अपेक्षासे सम्यग्मिथ्यात्वको सर्वघाती कहा है।

कहा भी है—

> 'दहिगुणमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं।
> एव मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥'

'जैसे दही और गुडको मिला देनेपर उन्हे अलग-अलग नही किया जा सकता, उसीप्रकार एक ही कालमे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिले हुए परिणामोको मिश्र गुणस्थान कहते है।'

अव सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

असजदसम्माइट्ठी ॥ १२ ॥

सामान्यसे असयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं ॥ १२ ॥

शङ्का—असयतसम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

समाधान—जिसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। और सयमसे रहित सम्यग्दृष्टिको असयत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। वे सम्यग्दृष्टि तीन प्रकारके होते हैं—क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि और औपशमिक सम्यग्दृष्टि। अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन सात प्रकृतियोके सर्वथा विनाशसे जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। इन्ही सात प्रकृतियोके उपशमसे जीव उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। तथा सम्यक् प्रकृतिके उदयसे जीव वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि कभी भी मिथ्यात्वको प्राप्त नही होता, न किसी प्रकारका सन्देह करता है और मिथ्यात्वके अतिशयोको देखकर भी आश्चर्यचकित नही होता। उपशम सम्यग्दृष्टि भी इसीप्रकारका होता है किन्तु परिणामो-के निमित्तसे सम्यक्त्वको छोडकर मिथ्यादृष्टि हो जाता है कभी सासादन सम्यग्दृष्टि हो जाता है, कभी सम्यक्मिथ्यादृष्टि हो जाता है और कभी वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। वेदक सम्यग्दृष्टिका श्रद्धान शिथिल होता है अत कुयुक्तियोके फेरमे पडकर उसे सम्यक्त्वकी विराधना करनेमे देर नही लगती।

शङ्का—पाच भावोमेसे किस-किस भावके आश्रयसे चौथा गुणस्थान उत्पन्न होता है ?

समाधान—सात प्रकृतियोके क्षयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन क्षायिक है। उन्ही सात प्रकृतियोंके उपशमसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन औपशमिक है और सम्यक्त्वका एकदेश घातका वेदन करानेवाली सम्यक् प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला वेदक सम्यक्त्व क्षायोपशमिक है।

शङ्का—सूत्रमे सम्यग्दृष्टिके लिये असयत विशेषण क्यो दिया गया है?

समाधान—असयत विशेषण अन्तदोपक है अत वह नीचेके सभी गुणस्थानोके असयतपने-का कथन करता है।

शङ्का—वह असयतपद ऊपरके पाचवें आदि गुणस्थानोमे असयमपनेका क्यो नही बतलाता ?

समाधान—ऊपरके सब गुण स्थानोमे सयमासयम अथवा सयम ही पाया जाता है। कहा भी है—

'सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठ पवयण तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा॥
णो इंदियेसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो॥'

'सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट वचनका तो श्रद्धान करता है किन्तु नही जानता हुआ, गुरुके उपदेशसे विपरीत अर्थका भी श्रद्धान कर लेता है। जो इन्द्रियोंके विषयोंसे तथा त्रस और स्थावर जीवोकी हिंसासे तो विरक्त नही है, किन्तु जिनेन्द्र द्वारा कथित प्रवचनका श्रद्धान करता है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।'

अब देशविरति गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सजदासजदा ॥ १३ ॥

सामान्यसे सयतासयत जीव है॥ १३॥

शङ्का—सयतासयत किसे कहते हैं ?

समाधान—जो सयत होते हुए भी असयत होते हैं उन्हे सयतासयत कहते हैं।

शङ्का—जो सयत होता है वह असयत नही हो सकता और जो असयत होता है वह सयत नही हो सकता, क्योकि सयमभाव और असयमभावका परस्पर विरोध है। अत पाचवाँ गुणस्थान नही बनता ?

समाधान—सयमभाव और असयमभावको एक जीवमे स्वीकार कर लेनेपर भी कोई विरोध नही आता, क्योकि उन दोनोको उत्पत्तिके कारण भिन्न-भिन्न हैं। सयमभावकी उत्पत्तिका कारण त्रसहिंसाविरक्ति है और असयमभावकी उत्पत्तिका कारण स्थावरहिंसासे अविरक्ति है। इसलिये संयतासयत नामक पाचवाँ गुणस्थान बन जाता है। कहा भी है—

'जो तसवहाउ विरदो अविरओ तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्हि जीवो विरयाविरओ जिणेक्कमई॥'

'जो जीव जिनेन्द्रदेवमे ही अपनी श्रद्धाको रखता हुआ, एक ही समयमे त्रसजीवोकी हिंसासे विरत और स्थावरजीवोकी हिंसासे अविरत होता है उसको विरताविरत (सयतासयत) कहते हैं।'

सयतोके प्रथम गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

पमत्तसजदा ॥ १४ ॥

सामान्यसे प्रमत्तसयत जीव हैं॥ १४॥

शंका—प्रमत्तसयत किसे कहते हैं ?

समाधान—प्रकर्षसे मत्त जीवोको प्रमत्त कहते है और अच्छी तरहसे सयमको प्राप्त जीवोको सयत कहते हैं। अत· जो प्रमत्त होते हुए भी सयत होते हैं उन्हे प्रमत्तसंयत कहते हैं।

शंका—यदि छठे गुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्त हैं तो वे सयत नही हो सकते, क्योकि प्रमादी जीवोको अपने स्वरूपका बोध नही हो सकता। और यदि वे सयत है तो प्रमत्त नही हो सकते, क्योकि प्रमादके हटने पर ही सयम होता है ?

समाधान—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाँच पापोसे विरक्तिका नाम सयम है। वह सयम प्रमादसे नष्ट नही होता, किन्तु प्रमादसे उसमे केवल मल ही उत्पन्न होता है।

शंका—छठे गुणस्थानमे मल उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही लिया गया है, सयमको नष्ट करनेवाला प्रमाद नही लिया गया, इस बातका निश्चय कैसे किया जाये ?

समाधान—छठे गुणस्थानमे प्रमादके रहते हुए सयमका सद्भाव बन नही सकता, इससे निश्चय होता है कि यहाँ पर मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही इष्ट है।

शंका—पाँच भावोमेसे यहाँ कौन-सा भाव होता है ?

समाधान—प्रत्याख्यानावरणके वर्तमान सर्वघाती निषेकोके उदयाभावी क्षयसे और आगामी कालमे उदयमे आनेवाले निषेकोके सदवस्थारूप उपशमसे तथा सज्वलन कषायके उदयसे सयम उत्पन्न होता है। अतः यहाँ क्षायोपशमिक भाव है।

शंका—जब सज्वलनकषायके उदयसे सयम होता है तो औदयिक भाव क्यो नही कहा ?

समाधान—सज्वलनकषायके उदयसे सयमकी उत्पत्ति नही होती।

शंका—फिर यहाँ सज्वलनका उदय क्या करता है ?

समाधान—सयममे मलको उत्पन्न करता है। कहा भी है—

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो ॥

'जो व्यक्त और अव्यक्त प्रमादमे निवास करता है, समस्त गुणो और शीलोसे युक्त है, महाव्रती है, किन्तु जिसका आचरण चित्रल अनेकरूप है, उसे प्रमत्तसंयत कहते है।

क्षायोपशमिक सयमोमे शुद्ध सयमसे युक्त गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अप्पमत्तसंजदा ॥१५॥

सामान्यसे अप्रमत्तसयत जीव हैं ॥१५॥

शङ्का—अप्रमत्तसयत किसे कहते हैं ?

समाधान—जिनका सयम प्रमाद सहित नही होता उन्हे अप्रमत्तसयत कहते हैं। कहा भी है—

णट्ठासेसपमाओ वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी।
अणुवसमओ अक्खवओ झाण-णिलीणो हु अपमत्तो ॥

'जिसके व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रमाद नष्ट हो गये हैं, जो व्रत, गुण और शीलोंसे मण्डित है, ज्ञानी है, और ध्यानमे लीन है किन्तु जो उपशम अथवा क्षपकश्रेणिपर आरूढ नही हुआ है उसे अप्रमत्तसयत कहते हैं।'

अब चारित्रमोहनीयका उपशम करनेवाले या क्षपण करनेवाले गुणस्थानोमेसे प्रथम गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १६ ॥

अपूर्वकरण प्रविष्ट शुद्धि सयतोमें सामान्यसे उपशमक और क्षपक जीव होते है ॥ १६ ॥

शङ्का—अपूर्वकरण सयत किसे कहते हैं ?

समाधान—'करण' शब्दका अर्थ परिणाम है और जो पहले नही हुए उन्हे अपूर्व कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस गुणस्थानमे नाना जीवोकी अपेक्षा शुरूसे लेकर प्रत्येक समयमें क्रमसे बढते हुए असख्यात लोक परिणाम होते हैं। और विवक्षित समयवर्ती जीवोंके परिणामोसे भिन्न समयवर्ती जीवोके परिणाम विलक्षण ही होते हैं। इस तरह प्रत्येक समयमे होनेवाले अपूर्व परिणामोको अपूर्वकरण कहते हैं। और ऐसे अपूर्व परिणामवाले जीवोको अपूर्वकरण सयत कहते हैं। उन सयतोमें उपशमक जीव भी होते है और क्षपक जीव भी होते हैं।

शंका—आठवें गुणस्थानमे न तो कर्मोका क्षय ही होता है और न उपशम ही होता है, फिर इस गुणस्थानवाले जीवोको क्षपक और उपशमक कैसे कहा जाता है ?

समाधान—आठवें गुणस्थान वाला जीव आगे चलकर नियमसे चारित्रमोहनीयका क्षय अथवा उपशम करता है इसलिये उपशमन और क्षपणके अभिमुख हुए आठवें गुणस्थानवर्ती जीवको उपचारसे उपशमक अथवा क्षपक कहा है।

शंका—पाँच भावोमेसे इस गुणस्थानमे कौन-सा भाव होता है।

समाधान—क्षपकके क्षायिक और उपशमकके औपशमिक भाव होता है। कहा भी है—

> **भिण्ण-समय-ट्ठिएहिं दु जीवेहि ण होइ सव्वदा सरिसो।**
> **करणेहि एक्कसमयट्ठिएहि सरिसो विसरिसो य ॥**
> **एदम्मि गुणट्ठाणे विसरिस-समय-ट्ठिएहि जीवेहि।**
> **पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥**
> **तारिस-परिणामट्ठिय-जीवा हु जिणेहि गलिय-तिमिरेहि।**
> **मोहस्स पुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥**

अपूर्वकरण गुणस्थानमे भिन्नसमयवर्ती जीवोके परिणामोकी अपेक्षा कभी भी सदृशता नही पाई जाती। किन्तु एकसमयवर्ती जीवोके परिणामोकी अपेक्षा सदृशता और विसदृशता दोनो पाई जाती हैं। इस गुणस्थानमे भिन्न-भिन्न समयमे रहनेवाले जीवोके जो पहले कभी प्राप्त नही किये, ऐसे अपूर्व परिणाम ही होते हैं। ऐसे अपूर्व परिणामो वाले जीव मोहनीय कर्मकी शेष प्रकृतियोके क्षपण अथवा उपशमनमें तत्पर होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र देवने कहा है।

अब बादरकषायवाले गुणस्थानोमे अन्तिम गुणस्थानके कथनके लिये सूत्र कहते हैं—

अणियट्टि-बादर-सांपराइय-पविट्ठ-सुद्धिसजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १७ ॥

अनिवृत्तिबादरसाम्परायिकप्रविष्टशुद्धिसयतोमे उपशमक और क्षपक होते हैं ॥ १६ ॥

शंका—अनिवृत्तिबादरसाम्परायसयत किसे कहते हैं ?

समाधान—समानसमयवर्ती जीवोके परिणामोमे भेद न होनेको निवृत्ति कहते हैं। और निवृत्तिके न होनेको अनिवृत्ति कहते है। साराश यह है कि इस गुणस्थानमे समानसमयवर्ती जीवोके परिणाम समान ही होते हैं और प्रथमादि समयवर्ती जीवोके परिणाम तथा द्वितीयादि समयवर्ती जीवोके परिणामोमे भेद ही होता है। 'साम्पराय' शब्दका अर्थ कषाय है और बादर स्थूलको कहते हैं। अत स्थूल कषायको बादरसाम्पराय कहते हैं। और अनिवृत्तिरूप बादरसाम्परायको अनिवृत्ति बादर साम्पराय कहते है। उन अनिवृत्ति बादर साम्परायरूप परिणामोके धारक सयतोको अनिवृत्ति बादर साम्पराय सयत कहते है। वे सयत उपशमक भी होते हैं और क्षपक भी होते हैं, क्योकि इस गुणस्थानमे जीव मोहकी कितनी ही प्रकृतियोका उपशम करता है और कितनी ही प्रकृतियोका आगे उपशम करेगा, इस अपेक्षा यह गुणस्थान औपशमिक है। और कितनी ही प्रकृतियोका क्षय करता है तथा आगे कितनी ही प्रकृतियोका क्षय करेगा, इस दृष्टिसे क्षायिक है।

शंका—क्षपकका स्वतन्त्र गुणस्थान और उपशमकका स्वतन्त्र गुणस्थान, इस तरह अलग-अलग दो गुणस्थान क्यो नही कह दिये ?

समाधान—नही, क्योकि उपशमक और क्षपक दोनोमे अनिवृत्तिरूप परिणामोकी अपेक्षा समानता है। कहा भी है—

> 'एकम्मि कालसमये संठाणादीहि जह णिवट्टंति।
> ण णिवट्टंति तह च्चिय परिणामेहिं मिहो जेम्हु ॥
> होति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा।
> विमलयरर-झाण-हुयवह-सिहाहि णिद्दड्ढ-कम्मवणा ॥

अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्त कालमेसे किसी एक समयमे रहनेवाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीरके आकार आदिसे परस्परमे भिन्न-भिन्न होते हैं, उस प्रकार जिन परिणामोंके द्वारा उनमे भेद नही पाया जाता, उनको अनिवृत्तिकरण परिणामवाले कहते हैं। उनके प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए एकसे परिणाम होते हैं। तथा वे अत्यन्त निर्मल ध्यानरूपी अग्निकी शिखाओंके द्वारा कर्मरूपी वन को भस्म करनेवाले होते हैं।

अब कुशील मुनियोके अन्तिम गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सुहुम-सांपराइयपविट्ठसुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा ॥ १८ ॥

सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसयतोमे उपशमक और क्षपक होते हैं ॥ १८ ॥

शंका—सूक्ष्मसाम्परायसयत किसे कहते हैं ?

समाधान—सूक्ष्म कषायको सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं। जिन संयतोके सूक्ष्म कषाय होती है उन्हे सूक्ष्मसाम्परायसयत कहते हैं। उनमे उपशमक और क्षपक दोनो होते हैं। इस गुणस्थानमें जीव कितनी ही प्रकृतियोका क्षय करता है, आगे क्षय करेगा और पूर्वमे क्षय कर चुका, इसलिये इसमे क्षायिक भाव है। तथा कितनी ही प्रकृतियोका उपशम करता है, आगे उपशम करेगा, और पहले उपशम कर चुका, इसलिये इसमे औपशमिक भाव है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षपकश्रेणिवाला

क्षायिक भाव सहित होता है और उपशमश्रेणिवाला औपशमिक तथा क्षायिक दोनो भावोसे युक्त होता है, क्योकि दोनो ही सम्यक्त्वोंसे उपशमश्रेणि चढ सकता है। इस गुणस्थानमे 'अपूर्व' और 'अनिवृत्ति' इन दोनो विशेषणोकी अनुवृत्ति होती है। अत पूर्व गुणस्थानोसे इसमे सर्वथा भिन्न जातिके ही परिणाम होते हैं। कहा भी है—

पुव्वापुव्वय-फद्दय-अणुभागादो अणतगुणहीणे।
लोहाणुम्हि ट्ठियओ हद सुहमसापराओ सो॥

'पूर्वस्पर्द्धक और अपूर्वस्पर्द्धकके अनुभागसे अनन्तगुणे हीन अनुभागवाले सूक्ष्म लोभमे जो स्थित है उसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती समझना चाहिये।

अब उपशमश्रेणिके अन्तिम गुणस्थानको कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

उवसत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था ॥ १९ ॥

सामान्यसे उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव हैं ॥ १९ ॥

शंका—उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिनकी कषाय उपशान्त हो गई है उन्हे उपशान्तकषाय कहते हैं। और जिनका राग नष्ट हो गया है उन्हे वीतराग कहते हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरणको छद्म कहते हैं। उनमे जो रहते हैं उन्हे छद्मस्थ कहते हैं। जो वीतराग होते हुए भी छद्मस्थ होते है उन्हे वीत-राग छद्मस्थ कहते हैं। वीतराग विशेषणसे दसवे गुणस्थानतकके सराग छद्मस्थोका निराकरण किया गया है। और उपशान्तकषाय विशेषणसे आगेके गुणस्थानका निराकरण किया गया है। जो उपशान्तकषाय होते हुए वीतराग छद्मस्थ होते हैं उन्हे उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ[1] कहते हैं। कहा भी है—

'कदक-फल-जुद-जलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलय।
सयलोवसतमोहो उवसतकसायओ होदि॥

'निर्मली फलसे युक्त निर्मल जलकी तरह, अथवा शरद् ऋतुमे सरोवरके निर्मल जलकी तरह सम्पूर्ण मोहनीय कर्मके उपशमसे होनेवाले निर्मल परिणामोको उपशान्तकषाय गुणस्थान कहते हैं।

अब निर्ग्रन्थ गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

खीण-कसाय-वीयराय-छदुमत्था ॥ २० ॥

सामान्यसे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव हैं ॥ २० ॥

शंका—क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिनकी कषाय क्षीण हो गई है उन्हे क्षीणकषाय कहते हैं। जो क्षीणकषाय होते हुए वीतराग होते हैं उन्हे क्षीणकषायवीतराग कहते हैं। तथा जो क्षीणकषायवीतराग होते हुए छद्मस्थ होते हैं उन्हे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ कहते हैं।

---

१ इस गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे इसका पतन होता है। पतनके दो कारण होते हैं—एक तो आयुका पूरी हो जाना, दूसरा गुणस्थानका काल पूरा हो जाना। यदि गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल पूरा हो जानेसे पतन होता है तो जिस क्रमसे श्रेणिपर चढ़ा है उसी क्रमसे गिरता है।

शंका—जो क्षीणकषाय होता है वह वीतराग अवश्य होता है। इसलिये वीतराग पदका ग्रहण करना निष्फल है ?

समाधान—इस गुणस्थानमे नाम, स्थापना और द्रव्यरूप क्षीणकषायका ग्रहण नही है किन्तु भावरूप क्षीणकषायका ही ग्रहण है यह बतलानेके लिये क्षीणकषायके साथ वीतराग पद दिया है।

शंका—पाँच भावोमेसे इस गुणस्थानमे कौन-सा भाव होता है ?

समाधान—इस गुणस्थानके पहले मोहनीय कर्मका सर्वथा नाश हो जाता है अत इस गुणस्थानमे क्षायिक भाव रहता है। कहा भी है—

णिस्सेस-खीणमोहो फलियामल-भायणुदय-समचित्तो।
खीणकसाओ भण्णइ णिग्गंथो वीयराएहि॥

'जिसने सम्पूर्ण मोहनीय कर्मको नष्ट कर दिया है, अतएव जिसका चित्त स्फटिक मणिके निर्मल भाजनमे रक्खे हुए जलके समान निर्मल है, ऐसे निर्ग्रन्थको वीतराग देवने क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती कहा है।

अब स्नातकोके गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सजोगकेवली ॥ २१ ॥

सामान्यसे सयोगकेवली जीव हैं॥ २१॥

शंका—सयोगकेवली किन्हे कहते हैं ?

समाधान—'केवल' पदसे यहाँ केवलज्ञानका ग्रहण किया है। जिसमे इन्द्रिय, मन और प्रकाशकी अपेक्षा नही होती, उस असहाय ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। और जिनके वह केवलज्ञान होता है उन्हे केवली कहते हैं। तथा मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं। और जिनके वह योग होता है उन्हे सयोग कहते हैं। इस तरह जो सयोग होते हुए केवली होते हैं उन्हे सयोगकेवली कहते हैं। इस गुणस्थानमे सयोगपद अन्तदीपक है अत वह नीचेके सब गुणस्थानोके सयोग होनेको सूचित करता है। चारो घातिया कर्मोंके क्षय कर देनेसे इस गुणस्थानमे क्षायिक भाव होता है। कहा भी है—

"केवल-णाण-दिवायर-किरण-कलावप्पणासि-अण्णाणो।
णव-केवल-लद्धुगम सुजणिय-परमप्प-ववएसो॥
असहाय-णाण-दसण-सहिओ इदि केवली हु जोएण।
जुत्तो त्ति सजोगो इदि अणाइ-णिहणारिसे उत्तो॥

'केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोके समूहसे जिसका अज्ञानरूपी अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है, और जिसने नौ केवल लब्धियो (क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षयिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक चारित्र) के प्रकट होनेसे 'परमात्मा' नाम पा लिया है, वह असहाय ज्ञान और दर्शनसे युक्त होनेके कारण केवली, योगोंसे युक्त होनेके कारण सयोगी और घातिकर्मोंसे रहित होनेके कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादि निधन आगममे कहा है।

अब पुष्पदन्तभट्टारक अन्तिम गुणस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अयोगकेवली ॥ २२ ॥

सामान्यसे अयोगकेवली जीव हैं ॥ २२ ॥

शङ्का—अयोगकेवली किन्हे कहते है ?

समाधान—जिसके योग नही है उसे अयोग कहते हैं। जिसके केवलज्ञान पाया जाता है उसे केवली कहते है। जो योगरहित होते हुए केवली होता है उसे अयोगकेवली कहते हैं।

शङ्का—पाच भावोमेसे इस गुणस्थानमे कौन-सा भाव है ?

समाधान—सम्पूर्ण घातिया कर्मोंका क्षय हो जानेसे तथा अघातिया कर्मोंके भी नाशोन्मुख होनेसे इस गुणस्थानमे क्षायिक भाव है। कहा भी है—

सीलेंसि सपत्तो णिरुद्ध-णिस्सेस-आसवो जीवो।
कम्म-रय-विप्पमुक्को गय-जोगो केवली होई ॥

"जिन्होने अट्ठारह हजार शीलके स्वामीपनेको प्राप्त कर लिया है, और सम्पूर्ण आस्रवका निरोध कर दिया है, जो नये बधनेवाले कर्मोंसे रहित हैं, और योगसे रहित होते हुए केवलज्ञानी हैं उन्हे अयोगकेवली कहते हैं।

इस प्रकार ये चौदह गुणस्थान होते हैं।

मोक्षके लिये सीढीरूप चौदह गुणस्थानोका कथन करके अब संसारातीत गुणस्थानका कथन करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

सिद्धा चेदि ॥ २३ ॥

सामान्यसे सिद्ध जीव हैं ॥ २३ ॥

शङ्का—सिद्ध किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिन्होने समस्त कर्मोंको नष्ट कर दिया है, बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षासे रहित स्वाभाविक अनन्त सुखको प्राप्त कर लिया है, जो सब गुणोके निधान हैं, जिनकी आत्माका आकार चरम शरीरसे कुछ न्यून है और लोकके अग्रभागमे रहते हैं उन्हे सिद्ध कहते हैं। कहा भी है—

अट्ठविह-कम्म-वियला सीघीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥

'जो ज्ञानावरण आदि आठो कर्मोंसे सर्वथा मुक्त हैं, सुख स्वरूप हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं ज्ञान दर्शन सुख वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघु इन आठ गुणोसे युक्त हैं, कृतकृत्य हैं, और लोकके अग्रभागमे निवास करते हैं उन्हे सिद्ध कहते हैं।

चौदह गुणस्थानोका सामान्य कथन करके अब विशेषरूपसे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धगदी चेदि ॥ २४ ॥

आदेशको अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगति हैं ॥ २४ ॥

शङ्का—गत्यनुवादका क्या अर्थ है ?

समाधान—गतिका लक्षण पहले कह आये है। आचार्यपरम्परासे आये प्रसिद्ध अर्थका तदनुसार कथन करना अनुवाद है। इस तरह गतिका आचार्यपरम्पराके अनुसार कथन करना गत्यनुवाद है।

शङ्का—नरकगति किसे कहते हैं ?

समाधान—जो नर अर्थात् प्राणियोको यातना देता है, पीसता है उसे नरक कहते हैं। नरक एक कर्म है उससे जिनकी उत्पत्ति हो उन्हे नारक कहते हैं और उनकी गतिको नारक गति कहते हैं। अथवा, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावम परस्परमे रत नही हैं, अर्थात् परस्पर प्रेम नही करते उन्हे नरत कहते हैं और उनकी गतिको नरतगति कहते है। कहा भी है—

'ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य।
अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिया॥

'यत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे वे परस्परमे कभी भी रमण नही करते, इसलिये उन्हे नारत कहते हैं।

शङ्का—तिर्यञ्चगति किसे कहते हैं ?

समाधान—तिर्यग्गति नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुए तिर्यञ्चपर्यायोके समूहको तिर्यञ्चगति कहते हैं। अथवा जो तिरछे यानी कुटिल होते हैं उन्हे तिर्यञ्च कहते हैं और उनकी गति को तिर्यग्गति कहते हैं। कहा भी है—

तिरियंति कुडिलभावं सुवियडसण्ण णिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंत-पावबहुला तम्हा तेरिच्छया भणिया॥

'जिनके मन और वचन कुटिल होते हैं, जिनकी आहार आदि संज्ञाएँ स्पष्ट होती हैं। तथा जो निकृष्ट अज्ञानी और अत्यधिक पापी होते हैं, उन्हे तिर्यञ्च कहते हैं।

शङ्का—मनुष्य गति किसे कहते हैं ?

समाधान—जो मनुष्यकी सम्पूर्ण पर्यायोकी उत्पादक है उसे मनुष्यगति कहते है। अथवा मनुष्यगति नामकर्मके उदयसे प्राप्त मनुष्यपर्यायोके समूहको मनुष्यगति कहते है। अथवा जो मनसे निपुण हैं उन्हे मनुष्य कहते हैं और उनकी गतिको मनुष्यगति कहते हैं। कहा भी है—

'मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मणु-उब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिया॥

'यत जो सदा हेय-उपादेयका विचार करते है, मनसे गुण-दोषका विचार करनेमे निपुण हैं, अथवा जो मनसे उत्कृष्ट है, अथवा जो मनुसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये उन्हे मनुष्य कहते है।

शङ्का—देवगति किसे कहते हैं ?

समाधान—अणिमा आदि आठ ऋद्धियोके बलसे जो क्रीडा करते है उन्हे देव कहते हैं। और देवोकी गतिको देवगति कहते हैं। अथवा देवगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायको देवगति कहते हैं। कहा भी है—

'दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहि य दिव्वभावेहि ।
भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा ॥

'यत वे दिव्य स्वभाववाले आठ गुणोके द्वारा निरन्तर क्रीडा करते हैं और उनका प्रकाशमान दिव्य शरीर है, इसलिये उन्हे देव कहते हैं।

शङ्का—सिद्धगति किसे कहते हैं ?

समाधान—आत्मस्वरूपकी प्राप्तिको अथवा अपने सम्पूर्ण गुणोसे आत्मस्वरूपमे स्थित होनेको सिद्धि कहते हैं। और सिद्धि स्वरूप गतिको सिद्धगति कहते हैं। कहा भी है—

'जाइ-जरा-मरण-भया सजोय-वियोय-दुक्ख-सण्णाओ ।
रोगादिया य जिस्से ण संति सा होइ सिद्धगई ॥

'जिसमे जन्म, जरा, मरण, भय, सयोग, वियोग, दु ख, वान्छा और रोगादि नही होते उसे सिद्धगति कहते हैं।

मार्गणाके एकदेशरूप गतिका सद्भाव बताकर अब उसमे गुणस्थानोकी खोज करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया चउट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ २५ ॥

नारकी मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और असयत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोमे होते हैं ॥ २५ ॥

शंका—जिन मनुष्य या तिर्यञ्चोने पहले नरकायुका बन्ध किया और पीछेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उन बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टियोकी नरकमे उत्पत्ति होती है। इसलिये नरकमे असयत सम्यग्दृष्टि भले ही पाये जायें। परन्तु सासादन गुणस्थानवाले मरकर नरकमे उत्पन्न नही होते, इसलिये सासादन गुणस्थानवालोका नरकमे सद्भाव कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान—नारकियोके पर्याप्त अवस्थामे दूसरा गुणस्थान हो सकता है। जिस तरह नारकियोके अपर्याप्तकालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है उस तरह पर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध नही है।

शका—तो फिर नरकगतिमे पर्याप्त अवस्थामे सम्यग्दर्शनकी भी उत्पत्ति माननी चाहिये ?

समाधान—सो तो मानते ही हैं, सातो नरकोमे पर्याप्त अवस्थामे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति मानी गई है।

शंका—जिस प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमे उत्पन्न नही होते उसी प्रकार सम्यग्दृष्टियोकी मरकर नरकमे उत्पत्ति नही होनी चाहिये ?

समाधान—सम्यग्दृष्टि मरकर प्रथम नरकमे उत्पन्न हो सकते हैं आगे नही उत्पन्न हो सकते।

शका—सम्यग्दर्शनके सामर्थ्यसे मिथ्यादृष्टि अवस्थामे बाधी हुई नरकायुका छेद क्यो नही होता ?

समाधान—छेद तो अवश्य होता है, परन्तु बाधी हुई आयुका समूल नाश नही होता।

तिर्यञ्च गतिमे गुणस्थानोके अन्वेषणके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा पचसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी, सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी, असंजदसमाइट्ठी संजदासंजदा त्ति ॥ २६ ॥

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टी, असयतसम्यग्दृष्टी और सयतासंयत इन पाच गुणस्थानोमे होते हैं ॥ २६ ॥

शका—तिर्यञ्च पाच प्रकारके कहे हैं—सामान्य तिर्यञ्च, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चिनी और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यञ्च। इन पाच भेदोमेसे किस भेदमे पूर्वोक्त पाच गुणस्थान होते हैं ?

समाधान—अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे तो पाच गुणस्थान नही होते, क्योकि लब्ध्यपर्याप्तकोमे एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है। शेष चार प्रकारके तिर्यञ्चोमे पाँचो ही गुणस्थान होते हैं। किन्तु इतना विशेष है कि तिर्यञ्चनियोके अपर्याप्त अवस्थामे मिथ्यादृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थान ही होते है, शेष तीन गुणस्थान नही होते।

शङ्का—तिर्यञ्चनियोके अपर्याप्त अवस्थामे सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासयत इन दो गुणस्थानोका अभाव भले ही रहो, क्योकि ये दोनो गुणस्थान पर्याप्त अवस्थामे ही होते हैं। परन्तु उनमे अपर्याप्त अवस्थामे असयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अभाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—स्त्रीवेदवाले तिर्यञ्चो-तिर्यञ्चनियोमे असंयत सम्यग्दृष्टियोकी उत्पत्ति नही होती, इसलिये उनके अपर्याप्त कालमे चौथा गुणस्थान नही पाया जाता। आगममे कहा है—

"छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्वइत्थीसु।"
णेदेषु समुप्पज्जइ सम्माइट्ठी दु जो जीवो॥

'जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है, वह प्रथम पृथिवीके बिना नीचेकी छै पृथिवियोमे ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोमे, तथा सब प्रकारकी स्त्रियोमे उत्पन्न नही होता'।

अब मनुष्यगतिमे गुणस्थानोके अन्वेषणके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा चोद्दससु गुणट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी, सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी, असजदसम्माइट्ठी, सजदासजदा, पमत्तसंजदा, अप्पमत्तसजदा, अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसजदेसु अत्थि उवसमा खवा, अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा, सुहुमसांपराइयपविट्ठ-सुद्धिसजदेसु अत्थि उवसमा खवा, उवसंत-कसायवीयराय-छदुमत्था, खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था, सजोगिकेवली, अजोगिकेवलि त्ति ॥ २७ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयत सम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत, अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतोमे उपशमक और क्षपक, अनिवृत्तिबादर साम्पराय-प्रविष्ट-शुद्धिसयतोमे उपशमक और क्षपक, सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसयतोमे उपशमक

और क्षपक, उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, इन चौदह गुणस्थानोमे पाये जाते है ॥ २७ ॥

अब देवगतिमे गुणस्थानोका अन्वेषण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी, सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ २८ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोमे पाये जाते हैं ॥ २८ ॥

शंका—जिनमे अथवा जिनके द्वारा जीवोकी खोज की जाती हैं उन्हे मार्गणा कहते हैं। इस प्रकार पहले मार्गणाशब्दकी निरुक्ति की है। किन्तु सूत्रोमे तो इतने गुणस्थानोमे नारकी होते हैं, इतनेमे तिर्यञ्च होते हैं, इतनेमे मनुष्य होते हैं और इतनेमे देव होते हैं इस प्रकार गुणस्थानोमे मार्गणाओको खोजा गया है। इसलिये मार्गणाशब्दकी निरुक्ति आगमविरुद्ध क्यो नही है ?

समाधान—मार्गणाकी उक्त निरुक्ति आगमविरुद्ध नही है, क्योकि भगवान् भूतवलिने 'नरकगतिमे नारकियोमे मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणसे कितने है ?' इस प्रकार गुणस्थानोका अवलम्बन लेकर सख्या आदिका प्रतिपादन किया है। और उसीके आधारसे मार्गणाशब्दकी उक्त निरुक्तिका अवतार हुआ है।

शंका—तो फिर भूतवलि और पुष्पदन्तके वचनोमे विरोध क्यो न माना जाये ?

समाधान—दोनोके वचनोमे कोई विरोध नही है, क्योकि जब सामान्यरूपसे जाने गये गुणस्थानोकी विवक्षा होती है तो गुणस्थान आधार हो जाते हैं और मार्गणाएँ आधेय होती हैं। और जब सामान्यरूपसे जानी गईं मार्गणाओकी विवक्षा होती है तो मार्गणाएँ आधार हो जाती हैं और गुणस्थान आधेय हो जाते हैं। इस प्रकार सामान्यरूपसे ज्ञात और विशेषरूपसे अज्ञात गुणस्थानो और मार्गणाओमे विवक्षाके अनुसार आधार-आधेयभाव वन जाता है। इसलिये आचार्य पुष्पदन्त और भूतवलिके वचनोमे कोई विरोध नही है ॥

पूर्व सूत्रोमे कहे गये अर्थका विशेष कथन करनेके लिये आगेके चार सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा सुद्धा एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ २९ ॥

एकेन्द्रियसे लेकर असज्ञी पञ्चेन्द्रिय तकके जीव शुद्ध तिर्यञ्च होते हैं ॥ २९ ॥

शंका—यह सूत्र क्यो कहा ?

समाधान—यदि यह सूत्र न कहते तो 'एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तकके जीव इसी गतिमे होते हैं, इस बातके जाननेका कोई दूसरा उपाय नही था। अत उक्त बातको जतानेके लिये उक्त सूत्र कहा है।

असाधारण (शुद्ध) तिर्यञ्चोका प्रतिपादन कर अब साधारण (मिश्र) तिर्यञ्चोका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा मिस्सा सण्णिमिच्छाइट्ठि पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ॥ ३० ॥

सज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयतासयत गुणस्थान तक तिर्यञ्च मिश्र होते हैं ॥३०॥

शंका—तिर्यञ्चोका किसी भी गतिवाले जीवोके साथ मिश्रण समझमे नही आता। अतः इस मिश्रणका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—मिश्रणका अभिप्राय गुणकृत समानतासे है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टिरूप गुणोकी अपेक्षा तो तिर्यञ्च तीन गतिके जीवोके साथ समानता रखते हैं और सयमासयम गुणकी अपेक्षा तिर्यञ्च मनुष्योके साथ समानता रखते हैं।

शंका—गतिमार्गणाके कथनमें बतलाया है कि इस गतिमे इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नही होते। उसीसे यह ज्ञात हो जाता है कि इस गतिके साथ गुणस्थानोकी अपेक्षा समानता है और इसकी इसके साथ समानता नही है। अत फिरसे इसका कथन करना व्यर्थ क्यो नही है ?

समाधान—अल्पबुद्धि वाले शिष्योको भी विषयका स्पष्टीकरण हो जाये, इसलिये यहाँ इसका कथन किया है। अथवा गुणस्थानो और मार्गणाओमे जीवोका अन्वेषण करनेके लिये उक्त सूत्र कहा है।

आगे गुणस्थानोके द्वारा मनुष्योकी समानता अथवा असमानताका कथन करनेके लिये सूत्र कहते है—

मणुस्सा मिस्सा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजदासंजदा त्ति ॥ ३१ ॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयतासयत तकके मनुष्य मिश्र हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण स्थानोकी अपेक्षा मनुष्य तीन गतिके जीवोके साथ समान हैं और सयमासयम गुणस्थानकी अपेक्षा तिर्यञ्चोके साथ समान हैं ॥ ३१ ॥

तेण परं सुद्धा मणुस्सा ॥ ३२ ॥

पाचवे गुणस्थानसे आगे शुद्ध (केवल) मनुष्य है ॥ ३२ ॥

शंका—देवगति और नरकगतिके जीवोकी अन्य गतिके जीवोके साथ समानता और असमानता नही बतलाई ?

समाधान—तिर्यञ्च और मनुष्य सम्बन्धी प्ररूपणाओके द्वारा ही उसका ज्ञान हो जाता है। अत उसका अलग कथन करनेकी आवश्यकता नही है।

अब इन्द्रियमार्गणामे गुणस्थानोके अन्वेषणके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चदुरिंदिया पचिंदिया अणिं-दिया चेदि ॥ ३३ ॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनि-न्द्रिय जीव हैं ॥ ३३ ॥

शङ्का—इन्द्रिय किसे कहते है ?

समाधान—ऐश्वर्यशाली होनेसे आत्माको इन्द्र कहते हैं। उस इन्द्रके लिंग (चिन्ह) को इन्द्रिय कहते हैं। अथवा नामकर्मको इन्द्र कहते हैं और उससे जो रची जावे उसे इन्द्रिय कहते हैं।

शङ्का—इन्द्रियके कितने भेद हैं ?

समाधान—दो भेद हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

शका—द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

समाधान—निर्वृत्ति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

शङ्का—निर्वृत्ति किसे कहते है ?

समाधान—जो कर्मके द्वारा रची जाये उसे निर्वृत्ति कहते हैं। उसके दो भेद हैं—बाह्य निर्वृत्ति और आभ्यन्तर निर्वृत्ति।

शङ्का—आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—प्रतिनियत चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकार रूप परिणत हुए लोक प्रमाण अथवा उत्सेधागुलके असख्यातवें भाग प्रमाण विशुद्ध आत्म प्रदेशोकी रचनाको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

शका—जिस प्रकार स्पर्शन इन्द्रियका क्षयोपशम सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोमे होता है उसी प्रकार चक्षु आदि इन्द्रियोका क्षयोपशम भी क्या सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोमे होता है या नियत आत्म-प्रदेशोमे होता है ? आत्माके सम्पूर्ण प्रदेशोमे क्षयोपशम होता है, यह तो माना नही जा सकता, क्योकि ऐसा माननेपर आत्माके सम्पूर्ण अवयवोसे रूपादिका बोध होनेका प्रसग आजायगा। और यदि आत्माके प्रतिनियत प्रदेशोमे चक्षु आदि इन्द्रियोका क्षयोपशम माना जाता है तो सिद्धान्तमे आत्मप्रदेशोको चल, अचल और चलाचल बतलाया है। अत आत्मप्रदेशोंके चल होनेपर चक्षु आदि इन्द्रिया रूपादिको ग्रहण नही कर सकेगी ?

समाधान—प्रत्येक इन्द्रियका क्षयोपशम जीवके सम्पूर्ण प्रदेशोमे होता है, फिर भी जीवके सम्पूर्ण प्रदेशोके द्वारा रूप आदिकी उपलब्धिका प्रसग नही आता, क्योकि रूप आदिके ग्रहण करनेमे बाह्य निर्वृत्ति भी सहायक है, किन्तु बाह्य निर्वृत्ति जीवके सम्पूर्ण प्रदेशोमे नही पाई जाती।

शङ्का—बाह्य निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—इन्द्रियसज्ञावाले उन आत्मप्रदेशोंके प्रतिनियत स्थानमे पुद्गलोकी इन्द्रिया-कार रचनाको बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं। चक्षु इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्ति मसूरके समान आकारवाली होती है, श्रोत्र इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्ति जोकी नालीके समान आकार वाली होती है, घ्राण इन्द्रिय-की बाह्य निर्वृत्ति तिलपुष्पके समान आकार वाली होती है, रसना इन्द्रियकी निर्वृत्ति खुरपाके सामान आकार वाली होती है और स्पर्शन इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्तिका कोई निश्चित आकार नही होता, जिसके शरीरका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार उसकी स्पर्शन इन्द्रियकी बाह्य निर्वृत्तिका होता है। कहा भी है—

जवणालिया मसूरी चदद्धइमुत्तफुल्लतुल्लाइ।
इदियसठाणाइ पस्सं पुण णेयसठाणं॥

"श्रोत्र इन्द्रियका आकार जवकी नालीके समान, चक्षु इन्द्रियका मसूरके समान, रसना इन्द्रियका अर्द्धचन्द्रके समान, घ्राण इन्द्रियका तिलपुष्पके समान आकार है और स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकार वाली है।

शङ्का—उपकरण किसे कहते हैं ?

समाधान—जो निर्वृत्तिका उपकार करता है उसे उपकरण कहते हैं। उसके दो भेद हैं—

बाह्य उपकरण और आभ्यन्तर उपकरण। नेत्र इन्द्रियका अभ्यन्तर उपकरण कृष्ण और शुक्ल मण्डल है और बाह्य उपकरण दोनो पलक और उनकी बरौनी है।

शंका—भावेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

समाधान—लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं।

शंका—लब्धि किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशम विशेषको लब्धि कहते हैं। उसके होनेपर ही आत्मा के द्रव्येन्द्रियोकी रचना होती है।

शंका—उपयोग किसे कहते हैं ?

समाधान—उस लब्धिके निमित्तसे आत्माका जो परिणमन होता है वह उपयोग है। अर्थात् लब्धिके होनेपर आत्मा जो ज्ञेय पदार्थकी ओर अभिमुख होता है वह उपयाग है।

शंका—उपयोगकी उत्पत्ति इन्द्रियोसे होती है, इसलिये उपयोग इन्द्रियका फल है, उसको इन्द्रिय कहना उचित नही है ?

समाधान—कारणका धर्म कार्यमे देखा जाता है, जैसे घटके आकार परिणत हुए ज्ञानको घट कहते हैं वैसे ही इन्द्रियोसे उत्पन्न हुए उपयोगको भी इन्द्रिय कहा है। दूसरे, इन्द्र (आत्मा) के लिंगको इन्द्रिय कहते हैं, यह इन्द्रियशब्दका अर्थ किया है। यह अर्थ उपयोगमे मुख्यतासे पाया जाता है। अत उपयोगको इन्द्रिय कहना उचित है।

शंका—इन्द्रियाँ कितनी हैं ?

समाधान—इन्द्रियाँ पाँच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

शङ्का—किस इन्द्रियका क्या विषय है ?

समाधान—स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है, रसना इन्द्रियका विषय रस है, घ्राण इन्द्रियका विषय गन्ध है, चक्षुका विषय रूप है और श्रोत्रका विषय शब्द है।

शङ्का—प्रत्येक इन्द्रियका क्या स्वरूप है ?

समाधान—वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम तथा अगोपाग नामकर्मका उदय होनेपर जिसके द्वारा आत्मा स्पर्शको ग्रहण करता है उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। वीर्यान्तराय और रसनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम तथा अगोपाग नामकर्मका उदय होनेपर जिसके द्वारा स्वादको ग्रहण करता है उसे रसना इन्द्रिय कहते है। वीर्यान्तराय और घ्राणेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम तथा अंगोपाग नामकर्मका उदय होने पर जिसके द्वारा गन्धको जानता है उसे घ्राण इन्द्रिय कहते हैं। इसी तरह शेष दो इन्द्रियोका भी स्वरूप समझ लेना चाहिये।

शङ्का—स्पर्शन इन्द्रियकी उत्पत्ति किन कारणोसे होती है ?

समाधान—वीर्यान्तराय और स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम, रसना आदि शेष इन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्द्धकोका उदय, और एकेन्द्रियजातिनाम कर्मका उदय होने पर एक स्पर्शन इन्द्रिय उत्पन्न होती है। इसी प्रकार शेष इन्द्रियोकी उत्पत्ति समझ लेनी चाहिये।

शंका—एकेन्द्रिय जीव कौन-कौनसे हैं ?

समाधान—पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, ये पाँच एकेन्द्रिय जीव हैं, इनके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। कहा भी है—

जाणदि, पस्सदि, भुजदि, सेवदि, पस्सिदिएण थक्केण।
कुणदि य तस्सामित्त थावरु एइन्दियो तेण॥

'यत स्थावर जोव एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ही जानता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामित्व करता है, इसलिये उसे स्थावर एकेन्द्रिय कहते हैं।'

एइंदियस्स फुसणं एक्क वि य होदि सेसजीवाणं।
होति कम उड्ढियाइ जिब्भाघाणाक्खिसोत्ताई॥

'एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, और शेप जीवोके क्रमसे बढती हुई जिह्वा घ्राण, आँख और श्रोत्र इन्द्रियाँ होती हैं।

शका—दो इन्द्रिय जीव किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं उन्हे दोइन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे शख, सीप, कृमि वगैरह।

शंका—तेइन्द्रिय जीव किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं उन्हे तेइन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे खटमल, चिउँटी, विच्छु, कानखजूरा वगैरह।

शंका—चौइन्द्रिय जीव किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती हैं उन्हे चौइन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे मच्छर, मक्खो, मकडी, भौंरा वगैरह।

शका—पञ्चेन्द्रिय जीव किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँचो इन्द्रियाँ होती हैं उन्हे पञ्चेन्द्रिय जीव कहते हैं, जैसे पशु, पक्षो, मनुष्य वगैरह। कहा भी है—

शङ्का—अनिन्द्रिय जीव कौनसे हैं ?

समाधान—शरीर रहित मुक्त जीवोके एक भी इन्द्रिय नही होतो। कहा भी है—

"ण वि इंदियकरणजुदा, अवग्गहादीहि गाहया अत्थे।
णेव य इंदियसोक्खा अणिंदियाणत-णाण-सुहा"॥

'मुक्त जीव इन्द्रियोके व्यापारसे युक्त नही हैं, वे अवग्रह आदि ज्ञानोके द्वारा पदार्थोंको ग्रहण नही करते। उनके इन्द्रियसुख भी नही है; क्योकि उनका अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख अनिन्द्रिय है।

एकेन्द्रिय जीवोके भेद कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एइंदिया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता॥ ३४॥

जीव दो प्रकारके हैं—बादर और सूक्ष्म। बादर एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म एकेन्द्रिय दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ३४ ॥

शंका—बादर और सूक्ष्म जीव किन्हे कहते है।

समाधान—जिन जीवोके बादर नामकर्मका उदय पाया जाता है वे बादर हैं और जिन जीवोके सूक्ष्म नामकर्मका उदय पाया जाता है वे सूक्ष्म हैं।

शका—सूक्ष्म नामकर्मके उदय और बादर नामकर्मके उदयमे क्या भेद है ?

समाधान—बादर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला शरीर अन्य मूर्तिक पदार्थोंसे आघात करने योग्य होता है और सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला शरीर अन्य मूर्तिक पदार्थोंसे आघात नही करने योग्य होता है, यही दोनोमे भेद है।

शङ्का—पर्याप्त किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जो पर्याप्त नामकर्मके उदयसे युक्त हैं उन्हे पर्याप्त कहते हैं।

शङ्का—पर्याप्तिया कितनी हैं ?

समाधान—पर्याप्तिया छह हैं—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति।

शङ्का—आहारपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—शरीर नामकर्मके उदयसे, आत्मासे व्याप्त आकाश क्षेत्रमे स्थित आहारवर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध आत्माके साथ सम्बन्धको प्राप्त होते हैं। खल-भाग और रसभागरूप परिणमन करनेकी शक्तिको लिये हुए उन पुद्गलस्कन्धोकी प्राप्तिको आहारपर्याप्ति कहते हैं। यह आहारपर्याप्ति शरीरको ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर एक अन्तर्मुहूर्तमे निष्पन्न होती है।

शङ्का—शरीरपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—खलभागके हड्डी आदि कठिन अवयवो और रसभागके रुधिर, चर्बी, वीर्य, आदि द्रव अवयवोके द्वारा औदारिक आदि तीन शरीररूप परिणमन करनेकी शक्तिसे युक्त पुद्गल स्कन्धोकी प्राप्तिको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। वह शरीरपर्याप्ति आहारपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमे पूर्ण होती हैं।

शका—इन्द्रियपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने योग्य देशमे स्थित मूर्तिक पदार्थो को ग्रहण करने रूप शक्तिकी उत्पत्तिमे निमितभूत पुद्गलोकी प्राप्तिको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। यह इन्द्रियपर्याप्ति भी शरीरपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमे पूर्ण होती है। परन्तु इन्द्रियपर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर भी उसी समय बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नही होता, क्योंकि उस समय उसके द्रव्येन्द्रिय नही होती।

शंका—श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—उच्छ्वास और निश्वासरूप शक्तिकी पूर्णतामे निमित्तभूत पुद्गलोकी प्राप्तिको श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी इन्दियपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तकाल बीतने पर पूर्ण होती है।

शका—भाषापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—भाषावर्गणाके स्कन्धोको चार प्रकारकी भाषारूपसे परिणमन करानेकी शक्तिमें

निमित्तभूत नोकर्म पुद्गलोकी प्राप्तिको भाषापर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तसे पूर्ण होती है।

शंका—मनःपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—अनुभूत अर्थमे स्मरणरूप शक्तिमे निमित्त, मनोवर्गणाके स्कन्धोसे निष्पन्न पुद्गलोकी प्राप्तिको मन पर्याप्ति कहते हैं। इन छहो पर्याप्तियोका आरम्भ एक साथ होता है, क्योकि जन्मसे इनका अस्तित्व पाया जाता है। परन्तु पूर्णता क्रमसे होती है।

शंका—पर्याप्ति और प्राणमे क्या भेद है ?

समाधान—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनरूप शक्तियोकी पूर्णताके कारणको पर्याप्ति कहते हैं। और जिनके द्वारा आत्मा जीता है उन्हे प्राण कहते हैं। वे प्राण १० हैं—पाच इन्द्रिया, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु।

शंका—पाचो इन्द्रिया, आयु और काय बलको प्राण कहा जा सकता है, क्योकि वे जीवन पर्यन्त पाये जाते हैं, और उनमेसे किसी एकका अभाव होनेपर मरण तक देखा जाता है। परन्तु उच्छ्वास, मनोबल और वचनबलको प्राण नही कहा जा सकता; क्योकि इनके विना भी अपर्याप्त अवस्थामे जीवन पाया जाता है।

समाधान—पर्याप्त अवस्थामे उच्छ्वास, वचन बल और मनोबलके विना जीवन नही पाया जाता, इसलिये उन्हे प्राण माननेमे कोई विरोध नही है। कहा भी है—

बाहिरपाणेहि जहा तहेव अब्भतरेहि पाणेहि।
जीवति जेहि जीवा पाणा ते होंति बोद्धव्वा॥

जिस प्रकार बाह्य प्राणोसे जीव जीते हैं, उसी प्रकार जिन आभ्यन्तर प्राणोसे जीवमे जीवितपनेका व्यवहार हो, उन्हे प्राण कहते हैं।

शंका—तब तो पर्याप्ति और प्राणमे केवल नाममात्रका भेद है ?

समाधान—पर्याप्ति और प्राणमे कारण और कार्यका भेद है।

शंका—अपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

समाधान—पर्याप्तियोकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते ?

एकेन्द्रियोके भेद कहकर अब दोइन्द्रिय आदि जीवोके भेदोंका कथन करनेके सूत्र कहते हैं—

बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तिइंदिया दुविहा पज्जता अपज्जता। चउरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। पचिंदिया दुविहा सण्णी असण्णी। सण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। असण्णी दुविहा पज्जता अपज्जत्ता चेदि॥३५॥

दो इन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। तेइन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। चौइन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। पञ्चेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—सज्ञी और असज्ञी। सज्ञी जीव दो प्रकारके हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। असज्ञी जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्तक और अपर्याप्तक॥ ३५॥

शंका—सज्ञी किसे कहते ?

समाधान—मनसहित जीवोको सज्ञी कहते हैं और मनरहित जीवोको असज्ञी कहते हैं। मनके दो भेद हैं—द्रव्यमन और भावमन। पुद्गलविपाकी अगोपाग नामकर्मके उदयकी अपेक्षा हृदयमे खिले हुए आठ पाखुरीके कमलकी तरह द्रव्यमन होता है। और वीर्यान्तरायँ तथा नोइन्द्रियावरण-कर्मके क्षयोपशमरूप जो विशुद्धि आत्मामे होती है वह भावमन है।

शंका—मनको इन्द्रिय क्यो नही कहा ?

समाधान—इन्द्र अर्थात् आत्माके लिगको इन्द्रिय कहते हैं। और परमेश्वररूप शक्तिके कारण जो इन्द्र नामको धारण करता है परन्तु कर्मबन्धनसे बद्ध होनेसे स्वय पदार्थोंको ग्रहण करनेमे असमर्थ है, ऐसे उपभोक्ता आत्माके उपयोगमे जो उपकरण (सहायक) है उसे लिंग कहते हैं। किन्तु मनके द्वारा होनेवाले उपयोगमे कोई उपकरण नही है इसलिये उसे इन्द्रिय नही कहा।

शंका—मनके द्वारा होनेवाले उपयोगका उपकरण द्रव्यमन तो है ?

समाधान—जिस प्रकार शेष इन्द्रियोका बाह्य इन्द्रियोसे ग्रहण होता है उस प्रकार मनका ग्रहण नही होता, इसलिये मनको इन्द्रका लिंग नही कह सकते।

शंका—पदार्थ, प्रकाश, मन और चक्षुसे होनेवाला रूपज्ञान सज्ञी जीवोमे पाया जाता है। परन्तु असज्ञी जीवोमे वह रूपज्ञान कैसे हो सकता है ?

समाधान—सज्ञी जीवोके रूपज्ञानसे असज्ञी जीवोका रूपज्ञान भिन्न ही प्रकारका होता है।

अब इन्द्रियोमे गुणस्थानोकी संख्या बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपचिंदिया एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे ॥ ३६ ॥

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीव एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे ही होते हैं ॥ ३६ ॥

शङ्का—एकेन्द्रियोमे सासादन गुणस्थान भी सुना जाता है। अतः केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहनेसे वह कैसे बन सकेगा ?

समाधान—इस सूत्रग्रन्थमे एकेन्द्रियोके सासादन गुण स्थानका निषेध किया है।

शंका—जब दोनो वचन परस्पर विरोधी हैं तो उन दोनोको सूत्र कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—दोनो वचन सूत्र नही हो सकते, दोनोमेसे एकको ही सूत्र माना जा सकता है ?

शङ्का—तब इसका निर्णय कैसे किया जाये कि दोनोमेसे अमुक कथन सूत्ररूप है ?

समाधान—उपदेशके विना दोनोमेसे कौन कथन सूत्ररूप है, यह नही जाना जा सकता। इसलिये दोनोका ही सग्रह करना उचित है।

पञ्चेन्द्रियोमे गुणस्थानोकी सख्या बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते है—

पंचिंदिया असण्णिपंचिंदियप्पहुडि जाव आयोगकेवलि त्ति ॥ ३७ ॥

असज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक पञ्चेन्द्रिय जीव होते हैं ॥ ३७ ॥

शङ्का—असज्ञीसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त जीव पाच द्रव्येन्द्रियोसे युक्त होनेके कारण पञ्चेन्द्रिय हैं अथवा पाच भावेन्द्रियोसे युक्त होनेके कारण पञ्चेन्द्रिय हैं ? प्रथम विकल्पमे अपर्याप्त जीवोसे व्यभिचार आता है, क्योकि पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोके द्रव्येन्द्रिया नही पाई जाती। दूसरे विकल्पमे केवलियोंसे व्यभिचार आता है, क्योकि पञ्चेन्द्रिय होते हुए भी केवलियोंके भावेन्द्रिया नही पाई जाती ?

समाधान—यहाँ भावेन्द्रियोकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय कहा है, फिर भी पूर्वोक्त व्यभिचार नही आता, क्योकि यद्यपि केवलीके भावेन्द्रियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं और वाह्य इन्द्रियोका व्यापार भी नही रहता, फिर भी भावेन्द्रियोके निमित्तसे उत्पन्न हुई द्रव्येन्द्रियोका सत्व उनमे पाया जाता है। इसलिये उन्हे पञ्चेन्द्रिय कहा है। अथवा एकेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय-जातिनामकर्मके उदयसे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे तेइन्द्रिय, चौइन्द्रियजातिनाम-कर्मके उदयसे चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे पचेन्द्रिय जीव होते हैं। केवली और अपर्याप्त जीवोंके भी पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मका उदय होता है, इसलिये उन्हे पञ्चेन्द्रिय कहा है।

शङ्का—पञ्चेन्द्रियजाति किसे कहते हैं ?

समाधान—'ये पञ्चेन्द्रिय हैं' इस प्रकारके समान प्रत्ययसे ग्राह्य कबूतर वगैरह जिसकी अवान्तर जातियाँ हैं और पञ्चेन्द्रियावरणकर्मका क्षयोपशम जिसका सहकारी है उसे पञ्चेन्द्रिय जाति कहते हैं ॥

अब अनिन्द्रिय जीवोका अस्तित्व कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तेण परमणिंदिया इदि ॥ ३८ ॥

उन एकेन्द्रिय आदि जीवोसे परे अनिन्द्रिय (इन्द्रियोसे रहित) जीव होते हैं ॥ ३८ ॥

शंका—वे अनिन्द्रिय जीव कौनसे हैं ?

समाधान—समस्त द्रव्यकर्मों और भावकर्मोंसे रहित सिद्ध अनिन्द्रिय हैं ॥

कायमार्गणाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कायाणुवादेण अत्थि पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइ-काइया तसकाइया अकाइया चेदि ॥ ३९ ॥

कायानुवादकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीव होते है ॥ ३९ ॥

शङ्का—कायानुवादका क्या अर्थ हैं ?

समाधान—सूत्रके अनुकूल कथन करनेको अनुवाद कहते हैं और कायके अनुवादको काया-नुवाद कहते हैं।

शंका—पृथिवीकायिक किन्हे कहते हैं।

समाधान—पृथिवीरूप शरीरको पृथिवीकाय कहते हैं और वह जिनके पाया जाता है उन जीवोको पृथिवीकायिक कहते हैं।

शंका—पृथिवीकायिकका इसप्रकार लक्षण करनेपर कार्मणकाययोगमे स्थित जीव पृथिवीकाय नही हो सकते ?

समाधान—उपचारसे उनको भी पृथिवीकायिक कहा जा सकता है। अथवा जिन जीवोके पृथिवीकायिकनामकर्मका उदय है उन्हे पृथिवीकायिक कहते हैं। इसीप्रकार जलकायिक आदि का भी स्वरूप जानना। स्थावरनामकर्मका उदय होनेसे पृथिवीकायिक आदि पाचोको स्थावर कहते हैं।

शंका—स्थानशील अर्थात् ठहरना ही जिनका स्वभाव है उन्हे स्थावर कहते हैं, ऐसा लक्षण क्यो नही कहा ?

समाधान—ऐसा लक्षण करनेपर वायुकायिक, अग्निकायिक और जलकायिक जीव अस्थावर हो जायेंगे क्योकि ये एक स्थानपर न रहकर गतिशील देखे जाते है। अत 'स्थानशील स्थावर होते हैं' यह केवल निरुक्तिमात्र है। इसके अर्थकी प्रधानता नही है।

शंका—त्रस किन्हे कहते हैं ?

समाधान—त्रसनामकर्मके उदयसे जिन्होने त्रसपर्यायको प्राप्त किया है उन्हे त्रस कहते है।

शंका—त्रस् धातुसे त्रस शब्द बना है और त्रस् धातुका अर्थ है डरकर भागना। अत. जो डरकर भागें वे त्रस क्यो नही हैं ?

समाधान—नही, क्योकि जब जीव गर्भमे रहता है या अण्डेमे बन्द रहता है, या मूर्छित अथवा सुप्त होता है उस अवस्थामे उक्त लक्षण न पाया जानेसे त्रसपना नही बनेगा। अत चलने और ठहरनेकी अपेक्षा त्रसपना और स्थावरपना नही समझना चाहिये।

शंका—आत्माकी प्रवृत्तिसे सचित पुद्गलपिण्डको काय कहते हैं। इस कथनसे उक्त व्याख्यान विरुद्ध क्यो नही है ?

समाधान—जीवविपाकीत्रसनामकर्म और पृथिवीकायिक आदि नामकर्मके उदयकी सहकारितामे युक्त औदारिकशरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए शरीरको भी उपचारसे काय कहनेमे कोई विरोध नही है।

शका—अकायिक किन्हे कहते हैं ?

समाधान—त्रसकायिक और स्थावरकायिक नामकर्मके बन्धनसे मुक्त सिद्धोको अकायिक कहते हैं। कहा भी है—

'जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह काय-बंधमुक्का अकाइया झाणजोएण ॥'

जैसे अग्निके योगसे सोना कीट और कालिमारूप बाह्य तथा आभ्यन्तर मलसे रहित हो जाता है। वैसे ही ध्यानयोगसे जीव काय और कर्मबन्धनमे मुक्त होकर कायरहित हो जाते हैं।

अब पृथिवीकायिक आदि जीवोके भेद कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पुढविकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। आउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तेउकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जता। सुहुमा दुविहा पज्जता अपज्जता। वायुकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ४० ॥

पृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं—बादर और सूक्ष्म। बादरपृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्मपृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त। जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादरजलकायिकजीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्मजलकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादरअग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म-अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादर वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्मवायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४० ॥

शङ्का—बादर और सूक्ष्ममे क्या अन्तर है ?

समाधान—बादर प्रतिघातसहित होते हैं और सूक्ष्म प्रतिघातरहित होते हैं।

शङ्का—पर्याप्त और अपर्याप्तमे क्या अन्तर है ?

समाधान—पर्याप्तनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जिन जीवोमे अपने अपने योग्य पर्याप्तियोको पूर्ण करनेरूप विशेषता प्रकट हो चुकी है उन्हे पर्याप्त कहते हैं। तथा अपर्याप्तनाम-कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जिन जीवोमे शरीरपर्याप्तिको पूर्ण न करके मरणरूप विशेषता प्रकट होती है उन्हे अपर्याप्त कहते हैं ॥

अब वनस्पतिकायिक जीवोके भेद कहनेके लिये सूत्र कहते है—

वणप्फइकाइया दुविहा पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा। पत्तेयसरीरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। साधारणसरीरा दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जता अप-ज्जता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ४१ ॥

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं, प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर। प्रत्येकशरीर-वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त। साधारण शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं बादर और सूक्ष्म। बादर दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म दो प्रकारके हैं पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४१ ॥

शङ्का—प्रत्येकशरीर किन्हे कहते है ?

समाधान—जिन जीवोका प्रत्येक अर्थात् अलग अलग शरीर होता है उन्हे प्रत्येकशरीर कहते हैं।

शङ्का—तब तो पृथिवीकाय आदि पाचोको भी प्रत्येकशरीर कहा जा सकता है ?

समाधान—पृथिवीकायिक आदिको प्रत्येकशरीर मानना इष्ट ही है।

शका—तो फिर पृथिवीकाय आदिके साथ भी प्रत्येकशरीर विशेषण लगाना चाहिये ?

समाधान—नही लगाना चाहिये, क्योकि जैसे वनस्पतियोमे साधारण वनस्पति भी होती है अत उसका निराकरण करनेके लिये प्रत्येकशरीर विशेषण वनस्पतिके साथ लगाया जाना है, वैसे पृथिवीकाय आदिमे कोई साधारणकाय नही होती, जिसका निराकरण करनेके लिये प्रत्येक शरीर विशेषण लगाना आवश्यक हो।

शंका—साधारणशरीर जीव किन्हे कहते है ?

समाधान—जिन जीवोका अलग अलग शरीर न होकर साधारणरूपसे एक शरीर होता है उन्हे साधारणशरीर कहते हैं।

शका—औदारिककर्म प्रत्येक जीवके द्वारा अलग अलग बाधा जाता है तथा वह पुद्गल-विपाकी होनेसे आहार वर्गणाके स्कन्धोको शरीरकाररूप परिणमन करनेमे कारण है। और भिन्न भिन्न जीवोको भिन्न-भिन्न फल देनेवाला है। ऐसे औदारिकनोकर्म स्कन्धोके द्वारा अनेक जीवोका एक शरीर कैसे उत्पन्न किया जा सकता है ?

समाधान--एक देशमे स्थित और परस्परमे सम्बद्ध जीवोके साथ समवेत पुग्गल वहाँ स्थित सम्पूर्ण जीवोका एकशरीर उत्पन्न कर सकते हैं, इसमे कोई विरोध नही है, क्योकि साधारण कारणसे साधारण कार्यकी उत्पत्ति होती है। कहा भी है—

साधारणमाहारो साधारणमाणपाणगहण च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं॥
जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरण हवे अणंताणं।
वक्कमदि जत्थ एक्को वक्कमण तत्थ णंताण॥
एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणतगुणा सव्वेण वितीदकालेण॥
अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलकइपउरा णिगोदवासं ण मुचति॥

साधारण जीवोका साधारण ही आहार होता है, साधारण ही श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते है। आगममे यह साधारण जीवोका साधारण लक्षण कहा है॥ साधारण जीवोमे जहाँ एक जीव मरता है वहाँ अनन्तानन्त जीवोका मरण हो जाता है। और जहाँ एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं॥ द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्ध राशि और सम्पूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदिया शरीरमे देखे गये हैं॥ ऐसे अनन्त जीव हैं जिन्होने कभी त्रसपर्याय नही प्राप्त की। उनके भावकर्म अत्यन्त प्रचुर होते है। इसलिये वे निगोदवासको नही छोड़ते।

शंका—अन्य शास्त्रोमे बादर निगोदिया जीवोसे प्रतिष्ठित वनस्पति सुनी जाती है। उसका अन्तर्भाव वनस्पतिके किस भेदमे होता है ?

समाधान—प्रत्येकशरीरवनस्पतिमे ही उसका अन्तर्भाव होता है।

शंका—बादरनिगोदसे प्रतिष्ठित वनस्पति कौन है ?

समाधान—थूहर, अदरख, मूली वगैरह वनस्पति बादरनिगोदसे प्रतिष्ठित हैं।

अब त्रसकायिक जीवोंके भेद कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तसकाइया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता ॥ ४२ ॥

त्रसकायिक जीव दो प्रकारके होते हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४२ ॥

शंका—त्रसजीव सूक्ष्म होते हैं अथवा बादर ?

समाधान—त्रसजीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नही होते। कहा भी है—

विहि तिहि चउहि पंचहि सहिया जे इंदिएहि लोयम्मि।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवएसेण ॥

'लोकमे जो जीव दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रियोसे सहित हैं उन्हे वीर भगवानके उपदेशसे त्रसकाय जानना चाहिये।

पृथिवीकायिक आदिके स्वरूपका कथन करके अब उनमे गुणस्थानोका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पुढविकाइया आउकाइया तेजकाइया वाउकाइया वणप्फइकाइया एक्कम्मि चेय मिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥ ४३ ॥

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक जीव एक मिथ्यादृष्टि नामक गुणस्थानमे ही होते हैं ॥ ४३ ॥

शंका—देव, शास्त्र और तत्त्वार्थकी श्रद्धासे रहित जीव मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। और श्रद्धान करने योग्य वस्तुमे श्रद्धाका भाव तभी हो सकता है जब श्रद्धाके अयोग्य वस्तुओका ज्ञान हो। ऐसी अवस्थामे देव, शास्त्र और तत्त्वार्थके ज्ञानसे रहित पृथिवीकायिक आदि जीवोको मिथ्यादृष्टि कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—पृथिवीकायिक आदि जीवोसे ज्ञाननिरपेक्ष मूढ मिथ्यात्वका सद्भाव माननेमे कोई विरोध नही आता। अथवा ऐकान्तिक, साशयिक, मूढ, व्युद्ग्राहित, वैनयिक, स्वाभाविक और विपरीत इन सातो मिथ्यात्वोका भी उन पृथिवीकायिक आदि जीवोमे सद्भाव सभव है, क्योकि सात प्रकारके मिथ्यात्वोंसे युक्त जो जीव मिथ्यात्वके साथ स्थावर पर्यायमे जन्म लेते हैं उनके सातो ही प्रकारका मिथ्यात्व पाया जाता है।

शंका—इन्द्रियानुवादसे सब एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं, ऐसा कह आये हैं। अत उसीसे यह ज्ञान हो जाता है कि पृथिवीकायिक आदि जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं। इसलिये यह सूत्र नही बनाना चाहिये था ?

समाधान—पृथिवीकायिक आदि जीवोके इतनी इन्द्रियाँ होती है अथवा इतनी इन्द्रियाँ नही होती, यह ज्ञान जिस शिष्यको नही है अथवा जो भूल गया है उस शिष्यके अनुरोधसे यह सूत्र बनाया गया है।

अब त्रस जीवोके गुणस्थानोका कथन करनेके लिये आगे सूत्र कहते हैं—

तसकाइया बीइंदिय-प्पहुडि जाव अयोगिकेवलि त्ति ॥ ४४ ॥

द्वीन्द्रियसे लेकर अयोगकेवली तक त्रसजीव होते हैं ॥ ४४ ॥

शङ्का—स्थावरजीव कौन हैं ?

समाधान—एकेन्द्रिय जीव स्थावर हैं।

शङ्का—सूत्रमे तो ऐसा नही कहा फिर कैसे जाना जाये कि एकेन्द्रिय जीवोको स्थावर कहते हैं।

समाधान—जब सूत्रमे दो इन्द्रिय आदि जीवोको त्रस कहा है तो परिशेष न्यायसे यह जाना जाता है कि एकेन्द्रिय जीव स्थावर हैं।

अब बादर जीवोका कथन करनेके लिये आगे सूत्र कहते हैं—

बादरकाइया बादरेइंदिय्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ ४५ ॥

बादर एकेन्द्रियसे लेकर अयोग केवली पर्यन्त जीव बादरकायिक होते है ॥ ४५ ॥

शंका—पृथिवीकायिकसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जीवोमे बादर और सूक्ष्म जीवोका सद्भाव पहले ही कह आये है इसलिये इस सूत्रमे बादर एकेन्द्रिय पदका ग्रहण करना व्यर्थ है।

समाधान—प्रत्येक शरीर वनस्पतिका ग्रहण करनेके लिये इस सूत्रमे बादर एकेन्द्रिय पदका ग्रहण किया है। इसके ग्रहण करनेसे प्रत्येकशरीरवनस्पति आदि बादर ही होते हैं यह स्पष्ट हो जाता है। अत उसका ग्रहण व्यर्थ नही है।

शंका—इन जीवोका बादर होना तो प्रत्यक्ष सिद्ध है अत उसका कथन नही करना चाहिए ?

समाधान—इन जीवोको केवल बादर बतलानेके लिये यह सूत्र नहीं रचा गया है किन्तु इन जीवोमे सूक्ष्मत्व नही होता, यह बतलानेके लिये यह सूत्र रचा गया है ॥

अब त्रस और स्थावर दोनो कायोसे रहित जीवोका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमकाइया चेदि ॥ ४६ ॥

त्रस और स्थावर कायसे परे कायरहित अकायिक जीव होते हैं ॥ ४६ ॥

शंका—ऐसे जीव कौनसे हैं ?

समाधान—ऐसे जीव सिद्ध हैं। वे सिद्ध बादर और सूक्ष्म शरीरके कारण भूत कर्मसे रहित होनेके कारण अशरीर होते हैं इसलिये अकायिक कहलाते हैं।

शंका—सूत्रकी समाप्तिका सूचक एक इति शब्द ही काफी है, फिर सूत्रमे 'च' शब्द क्यो दिया ?

समाधान—कायमार्गणाकी समाप्तिकी सूचनाके लिये सूत्रमे 'च' शब्द दिया है।

अब योगमार्गणाके द्वारा जीव द्रव्यका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी वचिजोगी कायजोगी चेदि ॥ ४७ ॥

योगानुवादसे मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव होते है ॥ ४७ ॥

शका—सूत्रमे 'इति' और 'च' शब्द क्यो दिये हैं ?

समाधान—'इति' शब्द सूत्रकी समाप्तिका सूचक है और 'च' शब्द समुच्चयवाची है। अथवा वह यह बतलाता है कि योग तीन ही होते हैं।

शका—मनोयोग वगैरहका क्या स्वरूप है ?

समाधान—भावमनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे मनोयोग कहते हैं। वचनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग कहते हैं और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे काययोग कहते हैं।

शका—तीनो योगोकी प्रवृत्ति एक साथ होती है या नही ?

समाधान—एकसाथ नही होती, क्योकि एक आत्माके तीनो योगोकी प्रवृत्ति एक साथ मानने पर योगका अभाव हो जायेगा।

समाधान—कही कही मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिया एकसाथ देखी जाती हैं ?

समाधान—उनकी प्रवृत्ति भले ही एक साथ देखी जाये, परन्तु मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिके लिये जो प्रयत्न होते हैं वे एकसाथ नही हो सकते; क्योकि आगममे वैसा उपदेश नही पाया जाता।

शका—प्रयत्न बुद्धिपूर्वक होता है और बुद्धि मनोयोगपूर्वक होती है अत मनोयोग शेषयोगोका अविनाभावी है, यह सिद्ध हुआ।

समाधान—कार्य और कारणकी उत्पत्ति एकसाथ नही हो सकती।

अब योगरहित जीवोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अजोगी चेदि ॥ ४८ ॥

अयोगी जीव होते हैं ॥ ४८ ॥

कहा भी है—

'जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसजणया।
ते होंति अजोइजिणा अणोवमाणतबलकलिया ॥

'जिन जीवोके पुण्य और पापके उत्पादक शुभ और अशुभ योग नही पाये जाते, वे अनुपम और अनन्त बलसे सहित अयोगिजिन होते हैं।

सामान्यकी अपेक्षा एक प्रकारके मनोयोगके भेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणजोगो चउव्विहो, सच्चमणजोगो मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो असच्चमोसमणजोगो चेदि ॥ ४९ ॥

मनोयोग चार प्रकारका है, सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग ॥ ४९ ॥

शङ्का—इन योगोंका क्या स्वरूप है ?

समाधान—सत्य पदार्थमे लगनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। जो योग सत्य और असत्य दोनोके योगसे उत्पन्न होता है उसे उभयमनोयोग कहते हैं। कहा भी है—

सब्भावो सच्चमणो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो।
तव्विवरीदो मोसो जाणुभय सच्चमोसं ति ॥

'सद्भाव और सत्यार्थको विषय करनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं और उससे जो योग होता है उसे सत्यमनोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। तथा सत्य और असत्य उभयरूप योगको उभयमनोयोग कहते हैं।'

शङ्का—अनुभयमनोयोग किसे कहते हैं ?

समाधान—सत्यमनोयोग और असत्यमनोयोगसे भिन्न योगको अनुभयमनोयोग कहते हैं ?

शका—तो अनुभयमनोयोग क्या सत्य और असत्य मनोयोगके सयोगसे पैदा होता है ?

समाधान—नही, क्योकि सत्य और असत्यके सयोगसे तीसरा उभयमनोयोग पैदा होता है।

शंका—तो फिर इनसे भिन्न चौथा मनोयोग कौनसा है ?

समाधान—मनसहित जीवोमे वचनकी प्रवृत्ति मनपूर्वक होती है, मनके बिना नही होती। इसलिये उनमे सत्यवचनके कारणभूत मनसे होनेवाले योगको सत्यमनोयोग कहते हैं। असत्य-वचनमे कारणभूत मनसे होनेवाले योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। सत्य और असत्य दोनो रूप वचनमें कारणभूत मनसे होनेवाले योगको उभयमनोयोग कहते है। और उक्त तीनो प्रकारके वचनोसे भिन्न बुलाना आदि रूप वचनमे कारणभूत मनसे होनेवाले योगको अनुभयमनोयोग कहते हैं। फिर भी यह अर्थ मुख्य नही है, क्योकि सब मनोमे ये लक्षण घटित नही होते।

शंका—तो फिर निर्दोष अर्थ कौनसा है ?

समाधान—जो वस्तु जिस रूप है उसमे उसी प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं। उसमे विपरीत प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको असत्यमन कहते हैं। दोनो प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको उभयमन कहते हैं। तथा जो सशय और अनध्यवसाय ज्ञानका कारण है उसे अनुभयमन कहते हैं। कहा भी है—

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो ॥

'जो मन सत्य और असत्यसे युक्त नही है उसको अनुभयमन कहते हैं। और उसके द्वारा जो योग होता है उसे अनुभयमनोयोग कहते है ॥'

मनके भेद कहकर अब गुणस्थानोमे उसके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते है—

मणजोगो सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ५० ॥

सामान्य मनोयोग तथा सत्यमनोयोग और अनुभयमनोयोग सज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त होते हैं ॥ ५० ॥

शका—यह पाचवाँ सामान्य मनोयोग कहासे आया ?

समाधान—चारो मनोयोगोमे रहनेवाले सामान्यको पाचवां कह दिया है।

शका—वह सामान्य क्या है ?

समाधान—मनकी सदृशता।

शङ्का—केवलीको वस्तुका यथार्थ ज्ञान होता है इसलिये केवलीके सत्यमनोयोगका सद्भाव मानना तो उचित है। परन्तु उनके अनुभयमनोयोगका सद्भाव मानना उचित नही है क्योकि केवलीमे सशय और अनध्यवसायका अभाव है।

समाधान—जो मन सशय और अनध्यवसायके कारणरूप वचनका कारण है उसे भी अनुभयमन कहा जाता है।

शका—केवलीके वचन सशय और अनध्यवसायको कैसे पैदा करते हैं ?

समाधान—केवलीके ज्ञानके विषयभूत पदार्थ अनन्त होनेसे तथा श्रोताके ज्ञानावरण कर्मका विशेप क्षयोपशम न होनेसे केवलीके वचनोको सुनकर सशय और अनध्यवसायरूप ज्ञानकी उत्पत्ति हो सकती है।

शका—तीर्थंकरके वचन अनक्षररूप होनेसे ध्वनिरूप होते हैं और इसलिये वे एकरूप हैं। और एकरूप होनेसे वे सत्य और अनुभय इसप्रकार दो रूप नही हो सकते ?

समाधान—तीर्थङ्करके वचनोमे 'स्यात्' पद लगा रहता है, अत वे अनुभयरूप भी होते हैं और इसलिये केवलीकी ध्वनि साक्षर है, अनक्षररूप नही है।

शङ्का—यदि केवलीकी ध्वनि साक्षर है तो वह एक भापारूप हो हो सकती है, सब भाषारूप नही हो सकती ?

समाधान—जो ध्वनि क्रमविशिष्ट वर्णोंकी अनेक पक्तियोके समूहरूप होती है और प्रत्येक प्राणीके प्रति प्रवृत्त होती है उसके समस्त भाषारूप होनेमे कोई विरोध नही है।

शका—तब वह ध्वनिरूप कैसे है ?

समाधान—केवलीके वचन अमुक भाषारूप हो हैं ऐसा नही कहा जा सकता। इसलिये उनका ध्वनिरूप होना सिद्ध है।

शंका—केवलीका ज्ञान अतीन्द्रिय होता है अत केवलीके मन नही है ?

समाधान—केवलीके द्रव्यमनका सद्भाव है।

शंका—केवलीके द्रव्यमन रहो, किन्तु उसका कार्य तो वहा नही है ?

समाधान—द्रव्य मनका कार्य क्षायोपशमिक ज्ञान केवलीमे नही होता यह ठीक है। किन्तु द्रव्यमनको उत्पन्न करनेमे प्रयत्न तो पाया ही जाता है, क्योकि उसका कोई प्रतिवन्धक नही है। उसके निमित्तसे आत्माका जो योग होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

शंका—जब केवलीमे द्रव्यमनको उत्पन्न करनेका प्रयत्न विद्यमान है तो उनका द्रव्यमन अपना कार्य क्यो नही करता ?

समाधान—मनसे होनेवाले ज्ञानका सहकारी कारण क्षयोपशम है। और केवलीमे क्षयोपशमका अभाव है अत उनका मन अपना कार्य नही कर सकता।

शंका—जब केवलीके भाव मनका अभाव है तो उससे सत्य और अनुभयरूप वचनकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—केवलीके मनके द्वारा दोनो प्रकारके वचनोकी उत्पत्ति उपचारसे बतलाई है।

शेष दो मनोयोगोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था त्ति ॥ ५१ ॥

असत्यमनोयोग और उभयमनोयोग सज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक पाये जाते है ॥ ५१ ॥

शका—क्षपक और उपशमक जीवोके सत्यमनोयोग और अनुभय मनोयोगका सत्व रहो, किन्तु शेष दो मनोयोग नही हो सकते, क्योकि उन दोनो योगोका कारण प्रमाद है और उपशमक तथा क्षपकमे प्रमादका अभाव हो जाता है ?

समाधान—जिन जीवोके ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका उदय रहता है उनके विपर्यय और अनध्यवसाय रूप अज्ञानका कारणभूत मन पाया जाता है। अत उपशम और क्षपक श्रेणी वाले जीवोके असत्य और उभय मनोयोग भी होते हैं। किन्तु इसका यह मतलब नही कि वे प्रमादी होते हैं, क्योकि प्रमाद आवरणकर्मकीपर्याय नही है, मोहकी पर्याय है।

अब वचनयोगके भेद बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वचिजोगो चउव्विहो सच्चवचिजोगो मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो चेदि ॥ ५२ ॥

वचनयोग चार प्रकारका है—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचनयोग ॥ ५२ ॥

शंका—जो मनोयोगोकी सज्ञा है वही सज्ञा वचनयोगोकी क्यो हैं ?

समाधान—चार प्रकारके मनसे उत्पन्न हुए वचनोकी भी वही सज्ञा होती है। कहा भी है—

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीदो मोसो जाणुभय सच्चमोसं ति॥
जो णेव सच्च मोसो त जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाण जा भासा सण्णीणामतणीयादी॥

'दश प्रकारके सत्यवचनमे वचनवर्गणाके निमित्तसे जो योग होता है उसे सत्य वचनयोग

कहते हैं। उससे विपरीत योगको असत्यवचनयोग कहते हैं। सत्य और असत्यरूप वचनयोगको उभय वचनयोग कहते हैं॥ जो न तो सत्यरूप है और न असत्यरूप है उसे अनुभय वचनयोग कहते हैं। असज्ञी जीवोकी भाषा और सज्ञी जीवोकी आमत्रणी आदि भाषाएँ अनुभयरूप हैं॥

वचनयोगके भेद कहकर अब गुणस्थानोमे उसका सत्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वचिजोगो असच्चमोसवचि जोगो बीइंदियपहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥५३॥

सामान्य वचनयोग तथा अनुभय वचनयोग दोइन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होता है ॥ ५३ ॥

शका—पहले कह आये हैं कि अनुभयरूप मनके निमित्तसे जो वचन उत्पन्न होते हैं उन्हे अनुभय वचन कहते हैं। ऐसी हालतमे मन रहित द्वीन्द्रिय आदि जीवोके अनुभय वचन कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह एकान्त नियम नही है कि सम्पूर्ण वचन मनसे ही उत्पन्न होते हैं। यदि ऐसा माना जायेगा तो मनरहित केवलियोके वचनका अभाव हो जायेगा।

शंका—विकलेन्द्रिय जीवोके मनके बिना ज्ञानकी उत्पत्ति नही हो सकती और ज्ञानके बिना वचनोकी प्रवृत्ति नही हो सकती ?

समाधान—मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ऐसा एकान्त नियम नही है। यदि ऐसा नियम माना जायेगा तो सम्पूर्ण इन्द्रियोसे ज्ञानकी उत्पत्ति नही हो सकेगी। शायद कहा जावे कि मन चक्षु आदि इन्द्रियोका सहायक है किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नही है, क्योकि प्रयत्न सहित आत्माकी सहायतासे इन्द्रियोसे ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शका—समनस्क जीवोमे ज्ञानकी उत्पत्ति मनोयोगसे ही होती है ?

समाधान—ऐसा माननेसे केवलज्ञानसे व्यभिचार आता है।

शका—तो फिर ऐसा माना जाये कि समनस्क जीवोके जो क्षायोपशमिक ज्ञान होता है वह मनोयोगसे ही होता है।

समाधान—यह मान्यता तो हमे इष्ट ही है।

शका—तब फिर 'मनोयोगसे वचन उत्पन्न होता है' ऐसा जो पहले कह आये हैं वह कैसे घटित होता है ?

समाधान—'मनोयोगसे वचन उत्पन्न होता है' यहापर मानस ज्ञानकी उपचारसे मन सज्ञा रखकर कथन किया है।

शङ्का—विकलेन्द्रियोके वचन अनुभय कैसे हैं ?

समाधान—विकलेन्द्रियोके वचन अनध्यवसायरूप ज्ञानके कारण हैं इसलिये उन्हे अनुभय कहा है।

शंका—विकलेन्द्रियोके वचनोको सुनकर यह अध्यवसाय (निश्चय) तो हो ही जाता है कि यह भी एक ध्वनि है, फिर उन्हे अनध्यवसायका कारण क्यो कहा ?

समाधान—विकलेन्द्रियोके वचनोको सुनकर उनके अभिप्रायका निश्चय नही होता, इसलिये उन्हे अनध्यवसायका कारण कहा है।

अब सत्यवचनयोगका गुणस्थानोमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सच्चवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ५४ ॥

सत्यवचनयोग सञ्ज्ञीमिथ्यादृष्टीसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होता है ॥ ५४ ॥

शेष वचनयोगोका गुणस्थानोमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते है—

मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥ ५५ ॥

असत्यवचनयोग और उभयवचनयोग संज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ ५५ ॥

शङ्का—जिसकी कषाये क्षीण हो गई है उसके वचन असत्य कैसे हो सकते है ?

समाधान—असत्य वचनका कारण अज्ञान बारहवे गुणस्थान तक रहता है इसलिये क्षीणकषायके असत्यवचनयोगका अस्तित्व कहा है। तथा इसीलिये उभयवचनयोग भी बारहवे गुणस्थान तक बतलाया है।

शंका—वचनगुप्तिके पालक क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीवके वचनयोग कैसे संभव है ?

समाधान—क्षीणकषायगुणस्थानमे अन्तर्जल्प पाया जाता है।

अब काययोगके भेद बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कायजोगो सत्तविहो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो कम्मइयकायजोगो चेदि ॥ ५६ ॥

काययोग सात प्रकारका है, औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ॥ ५६ ॥

शंका—औदारिक काययोग किसे कहते है ?

समाधान—औदारिक शरीरसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जीवके प्रदेशोमे परिस्पन्दका कारण जो प्रयत्न होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। तथा कर्मण और औदारिक स्कन्धोसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जीवके प्रदेशोमे हलन-चलन करनेके लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं। उदार, पुरु और महान् ये सब शब्द एकार्थक है। उसमे जो शरीर उत्पन्न होता है उसे औदारिकशरीर कहते है। कहा भी है—

पुरु महदुदारुरालं एयट्ठो त वियाण तम्हि भव।
ओरालियं ति वुत्त ओरालियकायजोगो सो ॥

ओरालियमुत्तत्थं विजाण मिस्स च अपरिपुण्णं ति।
जो तेण सपजोगो ओरालियमिस्सओ जोगो ॥

'पुरु' महत्, उदार, और उराल ये शब्द एकार्थक हैं। उदारमे जो होता है उसे औदारिक कहते हैं और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिककाययोग कहते हैं॥ औदारिकका अर्थ ऊपर कहा है, वह जबतक पूर्ण नही होता तब तक मिश्र कहलाता है और उसके द्वारा होनेवाले योगको औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं॥

शंका—वैक्रियिककाययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—अणिमा आदि ऋद्धियोको विक्रिया कहते है। उन ऋद्धियोके सम्पर्कसे पुद्गल भी 'विक्रिया' कहे जाते हैं। उन विक्रियारूप पुद्गलोमे उत्पन्न हुए शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते हैं। उस शरीरके अवलम्बनसे उत्पन्न हुए परिस्पन्दके द्वारा जो योग होता है उसे वैक्रियिककाययोग कहते हैं। तथा कार्मण और वैक्रियिक स्कन्धोसे उत्पन्न हुई शक्तिके द्वारा जो योग होता है उसे वैक्रियिकमिश्रयोग कहते हैं। कहा भी है—

विविहगुण-इड्ढिजुत्त वेउव्वियमहव विकिरिया चेव।
तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो॥
वेउव्वियमुत्तत्थ विजाण मिस्स च अपरिपुण्ण ति।
जो तेण संपजोगो वेउव्वियमिस्सजोगो सो॥

'अनेक प्रकारके गुण और ऋद्धियोसे युक्त शरीरको वैगूर्विक अथवा वैक्रियिक शरीर कहते हैं और इसके द्वारा होनेवाले योगको वैक्रियिक काययोग कहते हैं। वैक्रियिकका अर्थ ऊपर कह चुके। जब तक वह पूर्ण नही होता तब तक उसे वैक्रियिकमिश्र कहते हैं और उसके द्वारा जो सप्रयोग होता है उसे वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहते हैं।'

शङ्का—आहारककाययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थोको ग्रहण करता है उसे आहारकशरीर कहते हैं

यह आहारक शरीर एक हाथ प्रमाण होता है, इसका रग शखके समान सफेद होता है और समचतुरस्रसस्थानवाला होता है। सूक्ष्म होनेके कारण गमन करते समय वैक्रियिकशरीरके समान न तो यह पर्वतोसे टकराता है, न शस्त्रोसे छिदता है और न अग्निसे जलता है। उस आहारक शरीरसे जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते हैं। तथा आहारक और कार्मण स्कन्धोसे उत्पन्न हुए वीर्यके द्वारा जो योग होता है वह आहारकमिश्रकाययोग है। कहा भी है—

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अट्ठे सयस्स सदेहे।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारको जोगो॥
आहारयमुत्तत्थं वियाण मिस्स च अपरिपुण्ण ति।
जो तेण सपयोगो आहारयमिस्सको जोगो॥

'छठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपनेको सन्देह होनेपर जिस शरीरसे केवलीके पास जाकर सूक्ष्म पदार्थोंका आहरण करता है उसे आहारकशरीर कहते हैं और इसलिये उसके द्वारा होनेवाले योग-

का आहारककाययोग कहते हैं। आहारकका अर्थ ऊपर कहा है। जबतक वह आहारकशरीर पूर्ण नही होता तबतक उसे आहारकमिश्र कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसे आहारक मिश्रकाययोग कहते है।'

शका—कार्मणकाययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्म ही कार्मणशरीर है। अर्थात् आठ प्रकारके कर्मस्कन्धोको कार्मणशरीर कहते है। अथवा कर्ममे उत्पन्न होनेवाले शरीरको कार्मणशरीर कहते है। यहा कर्मसे नामकर्मके अवयवरूप कार्मणशरीर नामकर्मका ग्रहण करना चाहिये। उस शरीरके निमित्तसे जो योग होता है उसे कार्मणकाययोग कहते है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य औदारिक आदि शरीरस्कन्धोके बिना केवल एक कर्मसे उत्पन्न हुई शक्तिके द्वारा जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है उसे कार्मण-काययोग कहते है। कहा भी है—

कम्मेव य कम्मभव कम्मइयं तेण जो दु सजोगो।
कम्मइयकायजोगो एग-विग-तिगेसु समएसु ॥

'ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मस्कन्धको ही कार्मणशरीर कहते हैं, अथवा जो कार्मण-शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होता है उसे कार्मणशरीर कहते हैं। और उसके द्वारा होनेवाले योगको कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग एक, दो अथवा तीन समयतक होता है।'

औदारिककाययोग किसके होता है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो तिरिक्खमणुस्साण ॥ ५७ ॥

औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यञ्च और मनुष्योके होते हैं ॥ ५७ ॥

वैक्रियिककाययोग किन जीवोके होता है, यह बतलानेके लिये सूत्र कहते है—

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो देवणेरइयाणं ॥ ५८ ॥

वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग देवो और नारकियोके होते हैं ॥ ५८ ॥

शङ्का—तिर्यञ्च और मनुष्य भी वैक्रियिक शरीरवाले सुने जाते हैं, इसलिये यह बात कैसे घटित होगी ?

समाधान—औदारिकशरोर दो प्रकारका होता है—विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक। उनमेसे जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है वह मनुष्य और तिर्यञ्चोके वैक्रियिक रूपसे कहा गया है, उसका यहाँ ग्रहण नही किया है क्योकि उसमे नाना गुण और ऋद्धिया नही होती। यहा नाना गुण और ऋद्धियोसे युक्त वैक्रियिकशरीरका ही ग्रहण किया है, और वह देव-नारकियोके ही होता है।

आहारकशरीरका स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो संजदाणमिड्ढिपत्ताणं ॥ ५९ ॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ऋद्धिप्राप्त छठे गुणस्थानवर्ती सयतोके ही होते हैं ॥ ५९ ॥

शंका—यहाँ ऋद्धिप्राप्तसयतोसे आहारकऋद्धिप्राप्त सयतोका ग्रहण किया है अथवा वैक्रि-

यिकऋद्धिप्राप्त सयतोका ग्रहण किया है ? प्रथम पक्षमे इतरेतराश्रय दोष आता है; क्योकि जबतक आहारकऋद्धि उत्पन्न नही होती तबतक तो उन्हे ऋद्धिप्राप्त नही माना जा सकता और जबतक वे ऋद्धिप्राप्त न हो तबतक उनके आहारकऋद्धि उत्पन्न नही हो सकती। इसीप्रकार दूसरा विकल्प भी नही बनता, क्योकि उनके उस समय दूसरी ऋद्धियोका अभाव होता है। यदि दूसरी ऋद्धियोका सद्भाव माना जायेगा तो आहारक ऋद्धिवालोके मन पर्याय ज्ञानकी उत्पत्ति भी माननी चाहिये। परन्तु आगममे उसका निषेध है ?

समाधान—प्रथमपक्षमे जो इतरेतराश्रय दोष दिया है वह नही आता, क्योकि आहारक ऋद्धिवालेके आहारकऋद्धिकी उत्पत्ति नही होती, किन्तु विशिष्ट सयमवालेके आहारकऋद्धि उत्पन्न होती है। अत कारणमे कार्यका उपचार करके ऋद्धिके कारणभूत सयमको ही यहा ऋद्धि कहा है। इसलिये ऋद्धिके कारणरूप सयमको प्राप्त सयतोको ऋद्धिप्राप्त सयत कहते हैं और उनके आहारकऋद्धि होती है। अथवा, सयमविशेषसे उत्पन्न हुई आहारकशरीरके उत्पादनरूप शक्तिको आहारकऋद्धि कहते हैं, इसलिये भी इतरेतराश्रय दोष नही आता। इसीप्रकार दूसरे विकल्पमे दिया गया दोष भी नही आता, क्योकि ऐसा कोई नियम नही है कि एक आत्मामे एकसाथ अनेक ऋद्धिया नही होती। गणधरोके सातो ऋद्धिया एकसाथ पाई जाती हैं।

शङ्का—आहारकऋद्धिके साथ मन पर्यय ज्ञानका विरोध देखा जाता है ?

समाधान—आहारकऋद्धिके साथ मन पर्यय ज्ञानका विरोध भले ही रहो, किन्तु इससे आहारकऋद्धिका दूसरी सम्पूर्ण ऋद्धियोके साथ विरोध नही माना जा सकता, अन्यथा बडी गडबड उपस्थित हो जायेगी।

अब कार्मण शरीरके स्वामीको बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कम्मइयकायजोगो विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीण वा समुग्घाद-गदाणं ॥ ६० ॥

विग्रहगतिको प्राप्त चारो गतिके जीवोके तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले केवलियोके कार्मणकाययोग होता है ॥ ६० ॥

शका—विग्रहगति किसे कहते हैं ?

समाधान—'विग्रह' शरीरको कहते हैं। उसके लिये जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' शब्दका अर्थ व्याघात भी होता है। जिसका अर्थ नोकर्म पुद्गलोके ग्रहण करनेका निरोध होता है। आशय यह है कि ससारी जीव सदा कर्मपुद्गलो और नोकर्मपुद्गलोको ग्रहण करता है किन्तु विग्रहगतिमे कर्मपुद्गलोका ग्रहण तो होता है किन्तु नोकर्मपुद्गलोका ग्रहण नही होता। इसलिये नोकर्मपुद्गलोके ग्रहण करनेके निरोध पूर्वक जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' मोडेको भी कहते हैं। इस लिये विग्रह अर्थात् मोडेवाली गतिको विग्रहगति कहते हैं। आगममे कहा है कि एक गतिसे दूसरी गतिमे जानेवाले जीवोकी चार गतिया होती हैं—इषुगति, पाणिमुक्ता गति, लागलिका गति और गोमूत्रिका गति। इनमे पहली गति मोडेरहित होती है और शेष गतिया मोडेसहित होती हैं। धनुषसे छूटे हुए बाणके समान सीधी गतिको इषुगति कहते हैं। इस गतिमे एक समय लगता है। जैसे हाथसे तिरछे फेंके गये द्रव्यकी गति एक मोडे वाली

होती है वैसे ही संसारी जीवोकी एक मोडेवाली गतिको पाणिमुक्ता गति कहते हैं। इस गतिमे दो समय लगते हैं। जैसे हलमे दो मोड़ होते हैं वैसे ही दो मोडे वाली गतिको लागलिका गति कहते हैं। यह गति तीन समय वाली होती है। जैसे गायका मूत्र करना अनेक मोडोवाला होता है वैसे ही तीन मोडेवाली गतिको गोमूत्रिका कहते हैं। यह गति चार समय वाली होती है। इनमेसे इस गतिके सिवाय शेष तीनो गतियोमे कार्मण काययोग होता है।

शंका—जीव अधिक-से-अधिक तीन मोडे ही क्यो लेता है ?

समाधान—लोकके मध्यसे लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रमसे स्थित आकाशप्रदेशोकी पक्तिको श्रेणी कहते हैं। उस श्रेणीके अनुसार ही जीवोका गमन होता है, श्रेणिका उलघन करके गमन नही होता। अत. जीवको मोडा लेना पडता है किन्तु ऐसा कोई स्थान नही है जहा पहुँचनेके लिये तीनसे अधिक मोड़े लग सके।

शंका—समुद्धातगत केवली किन्हे कहते हैं ?

समाधान—कर्मोकी स्थिति और अनुभागके उत्तरोत्तर होनेवाले घातको उद्घात कहते हैं और समीचीन उद्घातको समुद्घात कहते हैं। तथा समुद्घात करनेवाले केवलियोको समुद्घातगत केवली कहते हैं।

शका—केवलियोके समुद्घात सहेतुक होता है या निर्हेतुक ? निर्हेतुक तो हो नही सकता, क्योकि ऐसा मानने पर सभी केवलियोको समुद्घातपूर्वक ही मोक्ष प्राप्तिका प्रसग आयेगा। शायद कोई कहे कि सभी केवली समुद्घातपूर्वक ही मोक्ष जाते हैं ऐसा माननेमे क्या हानि है ? तो इसका उत्तर यह है कि लोकपूरन समुद्घात करनेवाले केवलियोकी संख्या वर्षपृथक्त्वके अनन्तरमे बीस बतलाई है। वह नही बन सकती। अत समुद्धातको निर्हेतुक नही माना जा सकता। प्रथम पक्ष भी ठीक नही है, क्योकि केवलिसमुद्धातका कोई हेतु नही पाया जाता। शायद कहा जाये कि तीन अघातियाँ कर्मोकी और आयुकर्मकी स्थितिमे असमानता ही समुद्धातका कारण है, सो भी कहना ठीक नही है, क्योकि क्षीणकषाय गुणस्थानकी अन्तिम अवस्थामे सम्पूर्ण कर्म समान नही होते, इसलिये ऐसा मानने पर भी सभी केवलियोके समुद्धातका प्रसंग आ जायगा।

समाधान—यतिवृषभ आचार्यके उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमे सम्पूर्ण अघातिया कर्मोकी स्थिति समान नही होनेसे सभी केवली समुद्धात करके ही मोक्ष जाते हैं। परन्तु जिन आचार्योके मतानुसार लोकपूरण समुद्धात करनेवाले केवलियोकी बीस सख्याका नियम है, उनके मतानुसार कुछ केवली समुद्धात करते हैं और कुछ केवली समुद्धात नही करते।

शङ्का—कौनसे केवली समुद्धात नही करते ?

समाधान—जिनके संसारमे रहनेका काल वेदनीय आदि तीन कर्मोकी स्थितिके समान है वे समुद्धात नही करते, शेष केवली करते हैं।

शङ्का—ससारके विच्छेद (विनाश) का क्या कारण है ?

समाधान—द्वादशागका ज्ञान, उसमे तीव्र भक्ति, केवलिसमुद्धात और अनिवृत्तिरूप परिणाम ये सब ससारके विच्छेदके कारण हैं। परन्तु ये सब कारण सब जीवोमे नही होते, क्योकि दस पूर्व और नौ पूर्वके धारी भी क्षपकश्रेणीपर चढते देखे जाते हैं। अत सबके आयु कर्म तथा तीन

शेष अघातिया कर्मोंकी स्थिति समान नही पाई जाती। इसलिये कितने ही जीव समुद्घातके बिना ही आयुके समान शेष कर्मोंको कर लेते हैं और कितने ही जीव समुद्घातके द्वारा शेष कर्मोंको आयु-कर्मके समान कर लेते हैं। परन्तु यह ससारका घात केवलीमे पहले नही होता, क्योकि पहले सभी जीवोके परिणाम समान होते हैं।

शका—जब सभीके परिणाम समान होते हैं तो पीछे भी ससारका घात मत होओ ?

समाधान—वीतरागरूप परिणामोके समान होते हुए भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु कर्मकी अपेक्षा करके आत्मासे उत्पन्न हुए अन्य विशिष्ट परिणामोसे ससारका घात होता है।

शङ्का—अन्य आचार्यों ने ऐसा व्याख्यान नही किया, अत इस प्रकारका व्याख्यान करनेसे ऐसा क्यो न माना जाये कि आप सूत्रके विरुद्ध जा रहे हैं ?

समाधान—जो आचार्य कार्मणकाययोगमे स्थित सयोगकेवलियोका अन्तराल वपपृथ-क्त्व बतलाने वाले षट्खण्डागमसूत्रके अनुयायी हैं, उनका ही पूर्वोक्त कथनसे विरोध आता है।

शका—एक गाथा इस प्रकार है—

'छम्मासाउवसेसे उप्पण्ण जस्स केवलं णाणं।
ससमुग्घाओ सिज्झइ सेसा भज्जा समुग्घाए ॥ ६८ ॥

अर्थात्—छह मास आयु शेष रहनेपर जिसको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह समुद्घात करके ही मुक्त होता है। शेष जीव समुद्घात करते भी हैं और नही भी करते ॥ ६८ ॥

इस गाथाके उपदेशको आप क्यो नही मानते ?

समाधान—उक्त प्रकारसे किसीके समुद्घात करने और किसीके न करनेका कोई कारण नही पाया जाता, इस लिये पूर्वोक्त गाथाका उपदेश ग्रहण नही किया है।

शंका—किन्ही जीवोके समुद्घात करने और किन्हीके नही करनेमे कारण इस प्रकार बत-लाया तो है—

'जेसिं आउ-समाइ णामा गोदाणि वेयणीय च।
ते अकय-समुग्घाया वच्चतियरे समुग्घाए ॥ ६९ ॥

'जिन जीवोके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मकी स्थिति आयुकर्मके समान होती है वे समु-द्घात नही करके ही मुक्त होते हैं और अन्य जीव समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं ॥ ६९ ॥

समाधान—उक्त कथनको किन्ही जीवोके समुद्घात करने और किन्हीके न करनेमे कारण नही माना जा सकता, क्योकि सब जीवोमे समान अनिवृत्तिरूप परिणामोके द्वारा घाती हुई स्थितियोके आयुकर्मके समान होनेमे विरोध आता है। और इसका कारण यह है कि क्षीणकषायके अन्तिम समयमे तीनो अघातिया कर्मोंकी जघन्य स्थिति सभी जीवोके पल्योपमके असख्यातवें भाग पाई जाती है। अत पूर्वोक्त कथन ठीक प्रतीत नही होता।

शंका—आगम तर्कका विषय नही है, अत उक्त प्रकारसे पूर्वोक्त गाथाओके अभिप्रायका खण्डन करना उचित नही है ?

समाधान—उक्त दोनो गाथाओका आगमरूपसे निर्णय नही है। यदि उक्त दोनो गाथाएँ आगमिक सिद्ध होती हैं तो उनका ही निर्णय मान्य हो सकता है।

अब काययोगका गुणस्थानोमे ज्ञान करानेके लिये आगेके चार सूत्र कहते हैं—

कायजोगो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६१ ॥

सामान्यकाययोग, औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवलीगुणस्थान तक होते हैं ॥ ६१ ॥

शंका—ऐसा कथन करनेसे तो देशविरत आदि क्षीणकषाय पर्यन्त गुणस्थानोमे भी औदारिकमिश्रयोगका सद्भाव प्राप्त होगा ?

समाधान—आगे बतलाया है कि औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोके होता है। अत पूर्वोक्त दोष नही आता ॥

अब वैक्रियिककाययोगके स्वामी बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ ६२ ॥

वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग सञ्ज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर असयत सम्यग्दृष्टि तक होते हैं ॥ ६२ ॥

शङ्का—इस सूत्रके कथनानुसार तो सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे भी वैक्रियिकमिश्रकाययोगका सद्भाव मानना पडेगा ।

समाधान—आगे कहा है कि 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे जीव नियमसे पर्याप्तक होते हैं' तथा 'वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोके ही होता है।' इन दोनो सूत्रोसे जाना जाता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके वैक्रियिकमिश्रकाययोग नही होता ॥

आहारककाययोगका स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो एक्कम्हि चेव पमत्तसजदट्ठाणे ॥ ६३ ॥

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग एक प्रमत्तसयत गुणस्थानमे ही होते हैं ॥ ६३ ॥

शंका—अप्रमत्तसयतोके आहारककाययोग क्यो नही होता ?

समाधान—अप्रमत्तसयतोके आहारककाययोगके उत्पन्न होनेके निमित्तकारणोका अभाव है।

शङ्का—आहारककाययोगके उत्पन्न होनेमे निमित्तकारण क्या हैं ?

समाधान—आहारककायकी उत्पत्तिका निमित्तकारण प्रमाद है। अत. जो कार्य प्रमादके निमित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रमादरहित जीवोंके नही हो सकता।

अब कार्मणकाययोगके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कम्मइयकायजोगो एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६४ ॥

कार्मणकाययोग एकेन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली तक होता है ॥ ६४ ॥

शंका—इस कथनसे तो देशविरत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक भी कार्मण-काययोगका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान—आगे कहा है कि सयतासयत और सयत गुणस्थानोमे जीव नियमसे पर्याप्त होते हैं। इस कथनसे उक्त गुणस्थानोमे कार्मणकाययोगका अभाव ज्ञात होता है। तथा समुद्घात दशाको छोडकर पर्याप्तकोके कार्मणकाययोग नही पाया जाता।

शंका—पर्याप्तक जीवोके कार्मणकाययोग क्यो नही होता ?

समाधान—विग्रहगतिका अभाव होनेसे पर्याप्तक जीवोंके कार्मणकाययोग नही पाया जाता।

शंका—देव, विद्याधर आदि पर्याप्तक जीवोंके भी मोडवाली गति देखी जाती है ?

समाधान—पूर्व शरीरको छोडकर नया शरीर ग्रहण करनेके लिये जाते हुए जीवकी जो मोडेवाली गति होती है उसीको विग्रहगति कहते हैं। उसीमे कार्मणकाययोग होता है।

अब तीन योगोके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥ ६५ ॥

मनोयोग, वचनयोग और काययोग सञ्ज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीतक होते हैं ॥६५॥

शंका—काययोग एकेन्द्रिय जीवोके भी होता है फिर यहाँ उसे सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियसे क्यो बतलाया है ?

समाधान—यहाँपर वचनयोग और मनोयोगके बिना न होनेवाले काययोगकी विवक्षा है। यही बात वचनयोगके सम्बन्धमे जाननी चाहिये। अर्थात् यद्यपि वचनयोग दोइन्द्रिय जीवोसे होता है, किन्तु यहा मनोयोगके बिना न होनेवाले वचनयोगको विवक्षा है इसलिये उसको भी सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियसे बतलाया है।

अब दो योगोके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वचिजोगो कायजोगो बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥ ६६ ॥

वचनयोग और काययोग दोइन्द्रियसे लेकर असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोतक होता है ॥ ६६ ॥

शंका—यहाँपर इन दोनो योगोका सद्भाव जो दोइन्द्रियसे लेकर असञ्ज्ञीपर्यन्त बतलाया है वह घटित नही होता, क्योकि इनसे आगे भी ये दोनो योग पाये जाते हैं, अत असञ्ज्ञीतक ही ये दोनों योग नही हो सकते ?

समाधान—आगेके जीवोके तीनो योग होते हैं। अत' दो योग असञ्ज्ञीपर्यन्त ही होते हैं।

अब एक योगके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कायजोगो एइंदियाणं ॥ ६७ ॥

काययोग एकेन्द्रिय जीवोके होता है ॥ ६७ ॥

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीवोके एक काययोग ही होता है, दोइन्द्रियसे लेकर असञ्ज्ञीपर्यन्त जीवोके काययोग और वचनयोग ये दो योग होते हैं। शेष जीवोके तीनो योग होते है।

पहले सामान्यसे योगका सत्व कहा, अब अमुक कालमे अमुक योगका सत्व है और अमुक कालमे अमुक योगका सत्त्व नही है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मणजोगो वचिजोगो पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ॥ ६८ ॥

मनोयोग और वचनयोग पर्याप्तकोके ही होते है, अपर्याप्तकोके नही होते ॥ ६८ ॥

शका—अपर्याप्त अवस्थामे भी क्षयोपशमकी अपेक्षासे वचनयोग और मनोयोगके होनेमे कोई विरोध नही है ?

समाधान—जो क्षयोपशम वचन और मनरूपसे निष्पन्न नही हुआ उसे योग नही कहा जा सकता।

शङ्का—पर्याप्तक जीवोके भी किसी एक योगके होनेपर शेष दो योग नही होते। अत उसके उस समय उन दो योगोका अभाव होता है ?

समाधान—पर्याप्त अवस्थामे विवक्षित समयमे किसी एक योगके होनेपर भी शेष दो योगोका होना संभव है। अथवा उस समय शेष दोनो योग शक्तिरूपसे विद्यमान रहते है। इसलिये वहाँपर उनका अस्तित्व बतलाया है।

अब सामान्यकाययोगकी सत्ता बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि अपज्जत्ताण वि अत्थि ॥ ६९ ॥

काययोग पर्याप्तकोके भी होता है और अपर्याप्तकोके भी होता है ॥ ६९ ॥

ये योग पर्याप्तकके ही होते हैं और ये योग पर्याप्तक अपर्याप्तक दोनोंके होते हैं, ऐसा सुननेसे पर्याप्तियोके विषयमे उत्पन्न हुई शङ्काको दूर करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

छ पज्जत्तीओ, छ अपज्जत्तीओ ॥ ७० ॥

छे पर्याप्तियाँ और छे अपर्याप्तियाँ होती हैं ॥ ७० ॥

विशेषार्थ—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इनकी निष्पत्तिको पर्याप्ति कहते हैं। वे पर्याप्तियाँ छे हैं—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति। इन छे पर्याप्तियोकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं। अपर्याप्तियाँ भी छे ही हैं—आहार अपर्याप्ति, शरीर अपर्याप्ति, इन्द्रिय अपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास अपर्याप्ति, भाषा अपर्याप्ति और मन अपर्याप्ति। इन बारहोका स्वरूप पहले कह आये हैं॥

अब उन पर्याप्तियोका आधार बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं।

सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति ।। ७१ ।।

उक्त सभी पर्याप्तिया सञ्ज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होती हैं ।। ७१ ।।

शङ्का–तो क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वालोके भी छै पर्याप्तिया होती हैं ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे अपर्याप्तकाल नही पाया जाता, इसलिये वहा छ पर्याप्तियाँ नही होती ।

शंका—देशविरत आदि ऊपरके गुणस्थानोमे छै पर्याप्तियां क्यो नही होती ?

समाधान—छै पर्याप्तियोकी समाप्तिका नाम ही पर्याप्ति है और यह समाप्ति पाचवें आदि ऊपरके गुणस्थानोमे नही पाई जाती, क्योकि अपर्याप्तिकी अन्तिम अवस्थावर्ती एक समयमे पर्याप्तिकी समाप्ति होती है और यह समाप्ति चौथे गुणस्थान तक ही हो जाती है ।

छै पर्याप्तियोके सुननेसे कोई यह न समझ ले कि पर्याप्तिया छै ही होती हैं, इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पच पज्जत्तीओ पंच अपज्जत्तीओ ।। ७२ ।।

पाँच पर्याप्तियाँ और पाँच अपर्याप्तियाँ होती हैं ।। ७२ ।।

शका—छै पर्याप्तियोके अन्दर पाँच पर्याप्तियाँ आ ही जाती हैं इसलिये अलगसे पाच पर्याप्तियोका कथन करना व्यर्थ क्यो नही है ?

समाधान—किन्ही जीवोके छहो पर्याप्तिया होती हैं और किन्ही जीवोमे पाँच ही पर्याप्तियाँ होती हैं यह बतलानेके लिये अलगसे कथन किया है ।

शंका—वे पाँच पर्याप्तियाँ कौन-सी हैं ?

समाधान—मन पर्याप्तिको छोडकर शेप पाच पर्याप्तियाँ यहाँ ली गई हैं ।।

वे पाँच पर्याप्तियाँ किनके होती हैं ? यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपचिंदिया त्ति ।। ७३ ।।

वे पाँच पर्याप्तियाँ दोइन्द्रिय जीवोंसे लेकर असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्यन्त होती हैं ।। ७३ ।।

शका—मनका कार्य ज्ञान है । वह ज्ञान मनुष्योकी तरह विकलेन्द्रियोमे भी पाया जाता है, अत विकलेन्द्रियोमे भी मन क्यो नही है ?

समाधान—विकलेन्द्रियोमे रहनेवाला ज्ञान मनका कार्य है यह बात असिद्ध है ।

शङ्का—मनुष्योमे होनेवाला ज्ञान तो मनका कार्य है ?

समाधान—मनुष्योमे होनेवाला ज्ञान मनका कार्य रहो ।

शका—जब मनुष्योमे होनेवाले ज्ञानको मनका कार्य स्वीकार कर लिया तो चूँकि विकलेन्द्रियोमे होनेवाला ज्ञान भी ज्ञान ही है । इसलिये यह अनुमान क्यो नही किया जा सकता कि विकलेन्द्रियोका ज्ञान भी मनसे होता है ?

समाधान—भिन्न जातिमे होनेवाले ज्ञानके साथ भिन्न जातिमे होनेवाले ज्ञानकी समानता नही की जा सकती। अत मनुष्योमे होनेवाले ज्ञानको मनका कार्य देखकर विकलेन्द्रियोमे होनेवाले ज्ञानको मनका कार्य नही माना जा सकता।

शंका—विकलेन्द्रियोके मन नही होता, यह वात किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान—आगमप्रमाणसे जाना जाता है कि विकलेन्द्रियोके मन नही होता।

शंका—आगमको प्रमाण कैसे माना जाये ?

समाधान—जैसे प्रत्यक्ष स्वभावसे ही प्रमाण है वैसे ही आगम भी स्वभावसे ही प्रमाण है ॥

फिर भी पर्याप्तिकी संख्याके अस्तित्वमे भेद बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

चत्तारि पज्जत्तीओ चत्तारि अपज्जत्तीओ ॥ ७४ ॥

चार पर्याप्तियाँ और चार अपर्याप्तियाँ होती हैं ॥ ७४ ॥

शंका—वे चार पर्याप्तिया कौन-सी है ?

समाधान—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति।

चारो पर्याप्तियोके स्वामी जीवोको बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते है—

एइंदियाण ॥ ७५ ॥

उक्त चारो पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय जीवोके होती हैं ॥ ७५ ॥

शंका—एकेन्द्रिय जीवोके श्वासोच्छ्वास तो नही पाया जाता ?

समाधान—आगममे एकेन्द्रिय जीवोके श्वासोच्छ्वासका अस्तित्व बतलाया है।

शंका—प्रत्यक्षसे यह आगम बाधित क्यो नही है ?

समाधान—सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाले प्रत्यक्षसे यदि बाधा आती हो तो उसे प्रत्यक्षबाधा कहा जा सकता है। परन्तु इन्द्रियप्रत्यक्ष तो सम्पूर्ण पदार्थो को विषय ही नही करता। तब इन्द्रियप्रत्यक्षके अविषयी भूत वस्तुका असद्भाव कैसे माना जा सकता है ?

इस प्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोका कथन करके अब 'अमुक जीवके यह योग होता है और अमुक जीवके यह योग नही होता' यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते है—

ओरालियकायजोगो पज्जत्ताणं ओरालियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताण ॥७६॥

औदारिककाययोग पर्याप्तकोके और औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोके होता है ॥७६॥

शंका—जिन तिर्यञ्च या मनुष्योकी छै, पाच या चार पर्याप्तिया पूर्ण हो जाती हैं उन्हे पर्याप्तक कहते हैं। तो क्या किसी एक पर्याप्तिके पूर्ण होनेसे जीव पर्याप्त कहा जाता है अथवा सम्पूण पर्याप्तियोके पूर्ण होनेसे पर्याप्त कहलाता है ?

समाधान—जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जाती है उसे पर्याप्तक कहते है।

शंका—औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

समाधान—पर्याप्त शरीरके आलम्बनसे उत्पन्न हुए जीव प्रदेशपरिस्पन्दसे जो योग होता

है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। और चूंकि अपर्याप्त अवस्थामे औदारिकमिश्रकाययोग होता है इस लिये कार्मण और औदारिक शरीरके स्कन्धोके निमित्तसे उत्पन्न हुए जीव प्रदेशपरिस्पंदसे (जीवके प्रदेशोमे होनेवाले कम्पनसे) जो योग होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं।

शङ्का—पर्याप्त अवस्थामे भी कार्मण शरीरका सत्त्व रहता है अत वहा भी कार्मण और औदारिक शरीरके स्कन्धोके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोमे परिस्पन्द होता है। तब पर्याप्त दशामे भी औदारिकमिश्रकाययोग क्यो नही माना जाता ?

समाधान—पर्याप्त अवस्थामे यद्यपि कार्मणशरीर रहता है फिर भी वह जीवके प्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण नही है। शायद कहा जाये कि कार्मण शरीर परम्परासे जीवके प्रदेशोके परिस्पन्दका कारण हैं। किन्तु तब तो वह औपचारिक ठहरेगा। और औपचारिक कारणकी यहा विवक्षा नही है।

शका—यदि परिस्पन्द बन्धका कारण है तो गमन करते हुए मेघोके भी कर्मबन्धका प्रसग आता है ?

समाधान—कर्मोंके द्वारा चेतन आत्मामे होनेवाले परिस्पन्दको ही आस्रवका कारण माना है। किन्तु मेघोका परिस्पन्द कर्मजनित नही है, अत वह आस्रवका कारण भी नही है।

अब वैक्रियिककाययोगका सत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेउव्वियकायजोगो पज्जत्ताण वेउव्वियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं ॥७७॥

वैक्रियिककाययोग पर्याप्तकोके और वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोके होता है ॥ ७७ ॥

आहारककाययोगका सत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारककायजोगो पज्जत्ताण आहारमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताण ॥७८॥

आहारककाययोग पर्याप्तकोके और आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ॥७८॥

शका—आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाला साधु पर्याप्तक ही होता है, अन्यथा उसके मुनिपना नही हो सकता। ऐसी अवस्थामे आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकके कैसे हो सकता है ?

समाधान—आहारकशरीरको उत्पन्न करने वाला साधु औदारिकशरीरसम्बन्धी छे पर्याप्तियोके पूर्ण होनेसे भले ही पर्याप्तक रहे, किन्तु आहारकशरीरसम्बन्धी पर्याप्तियोके पूर्ण न होने की अपेक्षा वह अपर्याप्तक ही है।

शंका—एक जीवमे एक साथ पर्याप्तपना और अपर्याप्तपना नही रह सकता ?

समाधान—एक साथ एक जीवमे पर्याप्त योग और अपर्याप्त योग सम्भव नही है, यह बात हमे इष्ट ही है।

शका—तो फिर हमारा पूर्व कथन क्यो न मान लिया जाये और उसके माननेपर आपके कथनमे विरोध क्यो नही आता है ?

समाधान—भूतपूर्वन्यायकी अपेक्षा आहारकमिश्रअवस्थामे भी पर्याप्तकपनेका व्यवहार किया जा सकता है, इसलिये विरोध असिद्ध है।

शंका—जिसके औदारिकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तिया नष्ट हो चुकी है और आहारकशरीर सम्बन्धी पर्याप्तिया अभी पूर्ण नही हुई हैं ऐसे अपर्याप्त साधुके सयम कैसे हो सकता है ?

समाधान—सयमका लक्षण आस्रवको रोकना है। और ऐसे सयमका मन्द योगके साथ होनेमे कोई विरोध नही है। यदि संयमका मन्द योगके साथ विरोध माना जायेगा तो समुद्धात करनेवाले केवलीके भी सयम नही हो सकेगा; क्योकि आहारकमिश्रकाययोगीकी तरह समुद्धातगत केवलीके भी अपर्याप्त सम्बन्धी योग पाया जाता है।

शका—'सयतासयत तथा सयत गुणस्थानोमे जीव नियमसे पर्याप्तक होते हैं' इस सूत्रके साथ उक्त कथनका विरोध क्यो नही है ?

समाधान—उक्त सूत्रका कथन द्रव्यार्थिकनयको अपेक्षासे है। अत. आहारकशरीरकी अपर्याप्त, अवस्थामे भी औदारिकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियोंके होनेसे उक्त कथन वन जाता है।

शका—कार्मणकाययोग पर्याप्त अवस्थामे होता है, या अपर्याप्त अवस्थामे होता है अथवा दोनो अवस्थाओमे होता है, यह कुछ भी नही कहा, इसका निश्चय कैसे किया जाये ?

समाधान—सूत्र न० ६० मे कहा है कि 'विग्रह गतिको प्राप्त चारो गतिके जीवोके और समुद्धातगत केवलियोके कार्मणकाययोग होता है' उससे यह निश्चित होता है कि अपर्याप्तकोके ही कार्मणकाययोग होता है।

इसप्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमे योगोके सत्त्व और असत्त्वका कथन करके अब चारो गति सम्बन्धी पर्याप्ति और अपर्याप्तियोमे गुणस्थानोका सत्त्व और असत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥७९॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्तक होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं ॥ ७९ ॥

नारकसम्बन्धी शेष दो गुणस्थानोके कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८० ॥

नारकी जीव सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यक्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८० ॥

शङ्का—सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यक्मिथ्यादृष्टि नरकमे क्यो नही उत्पन्न होते ?

समाधान—इन दोनो गुणस्थानोमे नरकमे उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणाम नही होते ?

शका—उन दोनो गुणस्थानोमे इसप्रकारके परिणाम क्यो नही होते ?

समाधान—क्योकि ऐसा स्वभाव ही है।

शका—नारकी जीव अग्निमे जलकर भस्म हो जाते हैं और उस भस्मसे पुन उत्पन्न हो जाते है। ऐसी दशामे अपर्याप्त अवस्थामे उक्त दोनो गुणस्थानोके होनेमे कोई विरोध नही है, अत 'इन दोनो गुणस्थानोमे नारकी नियमसे पर्याप्तक होते हैं' यह नियम नही बनता।

समाधान—अग्नि आदिसे जलानेपर भी नारकियोंका मरण नही होता। यदि कदाचित् उनका मरण हो भी जावे तो वे पुन नरकमे उत्पन्न नही होते, क्योंकि, 'नारकी जीव नरकसे निकलकर नरकगतिमे नही जाते, देवगतिमे नही जाते, किन्तु तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमे जाते हैं' इस आगमके अनुसार नारकियोके पुनः नरकगतिमे उत्पन्न होनेका निषेध है।

शङ्का—जो नारकी आयु पूरी करके मरते हैं उनके लिये ही उक्त नियम है ?

समाधान—नारकियोकी अकालमृत्यु नही होती।

शंका—यदि नारकियोका अकालमरण नही होता तो जिनका शरीर जलाकर राख कर दिया गया है उन नारकियोका मरण कैसे बनेगा ?

समाधान—देहका विकार आयुकर्मके विनाशमे निमित्त नही है, अन्यथा बाल्य अवस्थासे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके भी मरणका प्रसग उपस्थित होगा।

नारकियोका सामान्यरूपसे कथन करके अब विशेषरूपसे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं-

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ८१ ॥

इसीप्रकार प्रथम पृथिवीमे नारकी होते हैं अर्थात् प्रथम पृथिवीके नारकियोकी पर्याप्तियां और अपर्याप्तियाँ नरकगतिके सामान्य कथनके अनुसार ही होती हैं ॥ ८१ ॥

शेष पृथिवियोमे रहनेवाले नारकियोंके विशेष कथनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८२ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवीतकके नारकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८२ ॥

शका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—प्रथम पृथिवीको छोडकर शेष छे पृथिवियोमे मिथ्यादृष्टि जीवोकी ही उत्पत्ति होती है, इसलिये वहांपर प्रथम गुणस्थानमे पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो अवस्थाएँ बतलाई हैं।

उन पृथिवियोमे किस अवस्थामे शेष गुणस्थानोका सद्भाव है और किस अवस्थामे नही है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥८३॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवीतकके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८३ ॥

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवकी उत्पत्ति शेष छे पृथिवियोमे भले ही न हो, क्योकि सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणामको प्राप्त हुए जीवका मरण नही होता। यदि उसका मरणकाल आता है तो वह किसी दूसरे गुणस्थानमे चला जाता है। किन्तु 'दूसरे और चौथे गुणस्थानवाले जीव मरकर वहां उत्पन्न नही होते' यह कथन नही बनता।

समाधान—सासादनगुणस्थानवाले तो नरकमे उत्पन्न ही नही होते; क्योकि सासादनगुण-

स्थानवालेके नरकायुका बन्ध नही होता। शायद कहा जाये कि जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसा जीव सासादनगुणस्थानवर्ती होकर नरकमे उत्पन्न हो जायेगा। किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नही है क्योकि ऐसे जीवका सासादन गुणस्थानमे मरण नही होता। तथा असयत सम्यग्दृष्टि जीव भी द्वितीय आदि पृथिवियोमे उत्पन्न नही होते, क्योकि सम्यग्दृष्टि जीवोके शेष छै नरकोमे उत्पन्न होनेके निमित्त नही पाये जाते। अत. सासादनगुणस्थानवर्ती तथा असयतसम्यग्दृष्टि जीव नीचेके छै नरकोमे उत्पन्न नही होते।

अब तिर्यंचगतिमे गुणस्थानोके सत्त्वकी अवस्था बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८४ ॥

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८४ ॥

शङ्का—मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोका तिर्यञ्चोमे पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो अवस्थाओमे सत्त्व भले ही रहे, क्योकि इन दोनो स्थानवालोकी तिर्यञ्चोमे उत्पत्ति होनेमे कोई विरोध नही है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव तिर्यञ्चोमे उत्पन्न नही होते, क्योकि तिर्यञ्चोंकी अपर्याप्त पर्यायके साथ सम्यग्दर्शनका विरोध है ?

समाधान—तिर्यञ्चोकी अपर्याप्त पर्यायके साथ सम्यग्दर्शनका विरोध नही है, यदि विरोध माना जायेगा तो ऊपरका सूत्र अप्रमाण ठहरेगा।

शंका—जिसने तीर्थङ्करकी सेवा की है और मोहनीयकी सात प्रकृतियोका क्षय कर दिया है, ऐसा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव दु खबहुल तिर्यञ्चोमे कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—तिर्यञ्चोको नारकियोंसे अधिक दु ख नही है।

शंका—तो फिर नारकियोमे भी सम्यग्दृष्टि जोव उत्पन्न नही होगे ?

समाधान—सम्यग्दृष्टियोकी नारकियोंमे उत्पत्ति बतलाने वाला आगमप्रमाण पाया जाता है।

शंका—सम्यग्दृष्टि जोव नारकियोमे क्यो उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—सम्यग्दर्शनको ग्रहण करनेसे पहले जिन्होने मिथ्यादृष्टि अवस्थामे तिर्यञ्चायु अथवा नरकायुका बन्ध कर लिया है, उन सम्यग्दृष्टियोकी उत्पत्ति नारकियोमे अथवा तिर्यञ्चोमे होती है।

शङ्का—सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उस बची हुई आयुका छेद क्यो नही हो जाता ?

समाधान—छेद तो अवश्य होता है किन्तु निर्मूल छेद नही होता।

शंका—जड-मूलसे नाश क्यो नही होता ?

समाधान—आगे भवकी बची हुई आयुका निर्मूल नाश नही होता, ऐसा स्वभाव ही है।

अब तिर्यञ्चोमे सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोका स्वरूप बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ८५ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमे तिर्यञ्च नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८५ ॥

शंका—जिन्होने मिथ्यादृष्टि अवस्थामे तिर्यञ्चायुका बन्ध करनेके पश्चात् सम्यग्दर्शनके साथ देशसंयमको ग्रहण किया है और मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियोका क्षय कर दिया है ऐसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य तिर्यञ्चोमे क्यो नही उत्पन्न होते ? यदि होते हैं तो तिर्यञ्च अपर्याप्तोमे संयतासंयत गुणस्थानका सत्व होनेकी आपत्ति आती है ?

समाधान—देवगतिको छोडकर शेष तीन गति सम्बन्धी आयुका बन्ध कर लेनेवाले जीवोको अणुव्रत ग्रहण करनेकी बुद्धि ही उत्पन्न नही होती। तथा तिर्यञ्चोमे उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव भी अणुव्रतोको ग्रहण नही करते, क्योकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव यदि तिर्यञ्चोमे उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमिमे ही उत्पन्न होते हैं। और भोगभूमिमे उत्पन्न हुए जीव अणुव्रत ग्रहण नही कर सकते हैं।

शंका—दान न देने वाले जीव भोगभूमिमे कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?

समाधान—भोगभूमिमे उत्पत्तिका कारण सम्यग्दर्शनके होनेसे वे वहाँ उत्पन्न होते हैं तथा पात्रदानकी अनुभावना न करने वाले सम्यग्दृष्टि नही हो सकते, क्योकि ऐसे जीवोके सम्यग्दर्शन उत्पन्न नही होता ॥

तिर्यञ्चोका सामान्य कथन करके इनका विशेष कथन करने के लिये सूत्र कहते हैं—

एव पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता ॥ ८६ ॥

इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चपर्याप्त भी होते हैं।

अर्थात् इन दोनो प्रकारके तिर्यञ्चोकी प्ररूपणा तिर्यञ्चोकी सामान्यप्ररूपणाके समान ही होती है ॥ ८६ ॥

अब स्त्रीवेदसे युक्त तिर्यञ्चोका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ८७ ॥

योनिमती पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८७ ॥

शंका—सासादनगुणस्थान वाला जीव मरकर जिस प्रकार नारकियोमे उत्पन्न नही होता उसी प्रकार उसे तिर्यञ्चोमे भी उत्पन्न नही होना चाहिये ?

समाधान—नारकी और तिर्यञ्चोमे कोई समानता नही है इसलिये नारकियोका दृष्टान्त तिर्यञ्चोको लागू नही होता ॥

योनिमती तिर्यञ्चोमे शेष गुणस्थानोका स्वरूप कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ८८ ॥

योनिमती तिर्यञ्च सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासयत गुणस्थानमे नियमसे पर्याप्तक होते है ॥ ८७ ॥

शङ्का—योनिमती पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च उक्त गुणस्थानोमे नियमसे पर्याप्तक क्यो होते है ?

समाधान—क्योकि उक्त गुणस्थानोमे योनिमती तिर्यञ्चोकी उत्पत्ति नही होती।

शंका—जिस प्रकार बद्धायुष्क क्षयिकसम्यग्दृष्टि जीव नरकसम्बन्धी नपुसकवेदमे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार यहाँ स्त्रीवेदमे क्यो नही उत्पन्न होता ?

समाधान—नरकमे एक नपुसक वेदका ही सद्भाव है। और जिस किसी गतिमे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव उस गति सम्बन्धी उत्तम वेद वगैरहमे ही उत्पन्न होता है। चूँकि तिर्यचगतिमे तीनो वेद पाये जाते हैं। इससे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर योनिमती तिर्यंचोमे उत्पन्न नही होता ॥

अब मनुष्यगतिका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८९ ॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८९ ॥

मनुष्योमे शेष गुणस्थानोके सत्त्वमे पर्याप्त आदि अवस्थाका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९० ॥

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि, सयतासयत और संयत गुणस्थानोमे नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥९०॥

शका—उक्त सूत्रमे बताये गये सभी गुणस्थानवाले भले ही पर्याप्त रहो, किन्तु जिनकी आहारकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियाँ पूर्ण नही हुई हैं ऐसे आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवोको पर्याप्त नही कहा जा सकता। शायद कहा जाये कि उनके पर्याप्तनामकर्मका उदय है इसलिये उन्हे पर्याप्त कहा है। किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नही है क्योकि प्रमत्तसयतोके समान असयतसम्यग्दृष्टियोके भी निवृत्यपर्याप्त अवस्थामे पर्याप्तकर्मका उदय पाया जाता है अत उनमे भी अपर्याप्त अवस्थाका अभाव मानना पडेगा। शायद कहा जाये कि प्रमत्तसयतके सयमकी उत्पत्ति हो चुकी है इसलिये आहारकको अपर्याप्त अवस्थामे भी वह पर्याप्त है किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नही है, क्योकि ऐसा माननेसे तो असयतसम्यग्दृष्टियोके भी अपर्याप्त अवस्थामे पर्याप्त अवस्थाका प्रसग आयेगा, क्योकि उनके सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति हो चुकी है ?

समाधान—द्रव्यार्थिकनयका आलम्बन लेकर प्रमत्तसयतोको आहारकशरीर सम्बन्धी छै पर्याप्तियोके पूर्ण नही होनेपर भी पर्याप्त कहा है।

शंका—उस द्रव्यार्थिकनयका आलम्बन असयतसम्यग्दृष्टिमे क्यो नही लिया जाता ?

समाधान—वहाँ द्रव्यार्थिकनयके आलम्बनके निमित्त नही पाये जाते।

शङ्का—तो फिर यहाँ द्रव्यार्थिकनयका आलम्बन किसलिये लिया है ?

समाधान—आहारकशरीर सम्बन्धी अपर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतकी पर्याप्तकोके साथ समानता दिखाना ही द्रव्यार्थिकनयके आलम्बनका कारण है।

शका—आहारक शरीर सम्बन्धी अपर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुआ प्रमतसयत किस कारणसे पर्याप्तकोके समान है ?

समाधान—जिस प्रकार उपपादजन्म, गर्भजन्म और सम्मूर्छन जन्मसे उत्पन्न हुए शरीरोको धारण करनेवालेको दु ख होता है, उस प्रकार आहारकशरीरको धारण करनेवाले प्रमत्तसयतोको जन्म लेनेका दु ख उठाना नही पडता। तथा पहलेको वातोको भूले विना ही आहारकशरीरका ग्रहण होता है, इसलिये प्रमत्तसयत अपर्याप्त अवस्थामे भी पर्याप्त है, ऐसा उपचार किया जाता है। निश्चयनयसे तो वह अपर्याप्त ही है। इसी प्रकार समुद्घात करनेवाले केवलियोके सम्बन्धमे भी जानना चाहिये।

अव मनुष्यके भेदोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

एवं मणुस्सपज्जत्ता ॥ ९१ ॥

इसी प्रकार पर्याप्तमनुष्य होते हैं ॥ ९१ ॥

शंका—पर्याप्तकोमे अपर्याप्तपना तो हो नही सकता; क्योकि इन दोनो अवस्थाओका परस्परमे विरोध है। अत 'इसी प्रकार पर्याप्त होते हैं' यह कथन कैसे घटित होता है ?

समाधान—शरीरकी अनिष्पत्तिकी अपेक्षा पर्याप्तकोमे भी अपर्याप्तपना हो सकता है।

शङ्का—जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नही हुई उसे पर्याप्तक कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—'भात पक रहा है' यहाँ जैसे चावलोको ही भात कहा जाता है वैसे ही जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेवाली है ऐसे जीवके अपर्याप्त अवस्थामे भी पर्याप्तपनेका व्यवहार करनेमे कोई विरोध नहीं आता। अथवा पर्याप्तनामकर्मका उदय होनेसे उसे पर्याप्त कहते हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोमे भी कथन कर लेना चाहिये।

अव मानुषियोमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तिजाओ ॥ ९२ ॥

मनुष्यिणी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होती हैं और अपर्याप्त भी होती हैं ॥ ९२॥

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-सजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ९३ ॥

मनुष्यिणी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासंयत और संयत गुणस्थानोमे नियमसे पर्याप्तक होती हैं ॥ ९३ ॥

शका—हुण्डावसर्पिणीकालमे सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रियोमे क्यो नही उत्पन्न होते ?

समाधान—नही उत्पन्न होते।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना, (क्योकि इसी सूत्रमे स्त्रियोको असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे नियमसे पर्याप्तक बतलाया है) ।

शंका—तो इसी सूत्रसे द्रव्य-स्त्रियोका मुक्ति जाना भी सिद्ध होता है ?

समाधान—नही सिद्ध होता, क्योकि वस्त्रसहित होनेसे द्रव्यस्त्रियोके पाचवाँ सयतासयत गुणस्थान होता है अतः उनके संयम नही होता ।

शंका—वस्त्रसहित होते हुए भी उनके भावसंयमके होनेमे तो कोई विरोध नही है ?

समाधान—उनके भावसंयम भी नही हैं, क्योकि वस्त्र भावअसयमका अविनाभावी है और स्त्रियाँ वस्त्र धारण करती हैं ।

शंका—तब उनमे चौदह गुणस्थान कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—मनुष्यिणीसे मतलब स्त्रीवेदसे विशिष्ट मनुष्य है । अत स्त्रीभावसे विशिष्ट मनुष्यगतिमे चौदह गुणस्थानोके होनेमे कोई विरोध नही है ।

शंका—भाववेद नौवे गुणस्थानसे आगे नही पाया जाता, इसलिये भावस्त्री विशिष्ट मनुष्य-गतिमे चौदह गुणस्थान नही हो सकते ?

समाधान—इस प्रकरणमे वेदकी प्रधानता नही है, गतिकी प्रधानता है और गति पहले नष्ट नही होती ।

शङ्का—यद्यपि मनुष्यगतिमे चौदह गुणस्थान होते हैं, किन्तु वेदविशिष्ट मनुष्यगतिमे चौदह गुणस्थानोका होना संभव नही है ?

समाधान—नौवें गुणस्थानमे वेदविशेषणके नष्ट हो जानेपर भी उपचारसे उस संज्ञाको धारण करनेवाली मनुष्यगतिमे चौदह गुणस्थानोका सद्भाव मान लेनेमे कोई विरोध नही है ।

शंका—मनुष्योंके चौथे भेद अपर्याप्त मनुष्योका कथन क्यो नही किया ।

समाधान—अपर्याप्त मनुष्योका कथन सुगम होनेसे नही किया ।

देवगतिमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ९४ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९४ ॥

शेष गुणस्थानोके सत्त्वमे पर्याप्त और अपर्याप्त दशाका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९५ ॥

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमे नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ९५ ॥

शंका—यह कैसे ?

समाधान—क्योकि तीसरे गुणस्थानके साथ मरण नही होता। तथा अपर्याप्त अवस्थामे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानकी उत्पत्ति भी नही होती।

देवगतिमे विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा-देवीओ सोधम्मीसाण-कप्पवासिय-देवीओ च मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता, सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ९६ ॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी देव, उन सबकी देवियाँ तथा सौधर्म और ऐशान कल्पवासिनी देवियाँ, ये सब मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९६ ॥

शंका—यह कैसे ?

समाधान—इन दोनो गुणस्थानवाले जीवोकी उक्त देवों और देवियोमे उत्पत्ति होती है इसलिये दोनो अवस्थाओमे भी उनका अस्तित्व सिद्ध है।

उक्त देवो और देवियोकी अपर्याप्त अवस्थामें नही होनेवाले गुणस्थानोका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता णियमा पज्जत्तियाओ ॥ ९७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे पूर्वोक्त देव नियमसे पर्याप्त होते हैं तथा पूर्वोक्त देवियाँ नियमसे पर्याप्त होती हैं ॥ ९७ ॥

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवकी उक्त देवो और देवियोमे भले ही उत्पत्ति न हो, क्योकि सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके साथ जीवका मरण नही होता। परन्तु यह बात नही बनती है कि मरनेवाला असयतसम्यग्दृष्टि उक्त देवो और देवियोमें उत्पन्न नही होता ?

समाधान—सम्यग्दृष्टिकी जघन्य देवोमे उत्पत्ति नही होती।

शंका—जब सम्यग्दृष्टि जीव मरकर जघन्य नारकियो और तिर्यञ्चोमे उत्पन्न हो सकते हैं तो उनसे उत्कृष्ट देवो और देवियोमे क्यो उत्पन्न नही होते ?

समाधान—जो आयुकर्मका बन्ध करते समय मिथ्यादृष्टि थे और बादमे जिन्होने सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है ऐसे जीवोकी नरकादि गतियोमे उत्पत्तिको रोकनेकी सामर्थ्य सम्यग्दर्शनमे नही है।

शंका—तो जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवोकी उत्पत्ति नरकादि गतिमे होती है उसी प्रकार देवोमे क्यो नहीं होती ?

समाधान—होती तो है।

शंका—तब तो भवनवासी आदिमे भी असयत सम्यग्दृष्टि जीवोकी उत्पत्ति प्राप्त होती है ?

समाधान—नही होती, क्योकि जिन्होने पहले आयुकर्मका बन्ध कर लिया है और पीछे

सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है ऐसे जीवोके सम्यग्दर्शनका उस गतिसम्बन्धी आयुसामान्यके साथ विरोध नही है किन्तु उस उस गति सम्बन्धी विशेष आयु उत्पत्ति होनेके साथ विरोध है। अत भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक जातिके देवोमे, नीचेके छै नरकोमे, स्त्रियोमे, नपुसकोमे, विकलत्रयमे, लब्ध्यपर्याप्तकोमे और कर्मभूमिके तिर्यञ्चोमे सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होता ॥

शेष देवोमे गुणस्थानोकी अवस्था बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिम-गेवज्जं ति विमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ९८ ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकके उपरिमभाग पर्यन्त विमानवासी देवोमे मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोमे जीव पर्याप्त भी होते है और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ९८ ॥

शंका—सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोके पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामे पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थानका अस्तित्व रहो, क्योकि इन गुणस्थानवालोकी उक्त देवोमे उत्पत्ति हो सकती है। किन्तु सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर ऊपर देविया उत्पन्न नही होती, क्योकि सौधर्म आदिकी तरह आगेके स्वर्गोमे देवियोकी उत्पत्ति नही बतलाई। ऐसी स्थितिमे वहाँ देवियोके न होनेसे देवोको स्त्रीसम्बन्धी सुख कैसे हो सकता है ?

समाधान—सानत्कुमार आदि कल्पोकी देवियाँ सौधर्म और ऐशान कल्प स्वर्गमे उत्पन्न होती है। अत भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा सौधर्म और ऐशान कल्पके देव मनुष्यो-के समान कायसे प्रवीचार (मैथुन सेवन) करते हैं। सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देव अपनी देवागनाओके स्पर्शमात्रसे ही तृप्त हो जाते हैं। यही बात देवियोके सम्बन्धमे भी है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव और कापिष्ठ स्वर्गके देव अपनी देवागनाओके शृगार, विलास, मनोज्ञ रूप वगैरहके देखने मात्रसे ही परम सुखी हो जाते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्पके देव अपनी देवाग-नाओके मधुर सगीत, कोमल हास्य, ललित शब्द और भूषणोकी ध्वनि सुननेमात्रसे ही परम प्रसन्न हो जाते हैं। आनत, प्राणत, आरण, और अच्युत कल्पके देव अपनी स्त्रीका मनमे संकल्प करने मात्रसे ही परम सुखको प्राप्त होते है। वेदनाके प्रतीकारका नाम प्रवीचार है। उस वेदनाके न होनेसे बाकीके सभी देव प्रवीचाररहित होनेसे सदा सुखी रहते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोका स्वरूप कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ॥ ९९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमे देव नियमसे पर्याप्तक होते है ॥ ९९ ॥

अब शेष देवोमे गुणस्थानोका स्वरूप कहते हैं—

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयत-जयंतावराजित-सव्वट्ठसिद्धि - विमाणवासियदेवा असजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ १०० ॥

नौ अनुदिशोमे तथा विजय, वैजयत, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पाँच अनुत्तर विमानोमे रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमे पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ १०० ॥

इसप्रकार योगमार्गणाके निरूपणके अवसरपर ही पर्याप्त और अपर्याप्तकालसे युक्त चारो गतियोमे समस्त गुणस्थानोकी सत्ता वतलाई गई है ।

शका—गतिके सिवाय शेष मार्गणाओमे यह विषय क्यो नही कहा ?

समाधान—इसी कथनसे शेष मार्गणाओमे यह विषय आजाता है, इसलिये नही कहा, क्योकि चारो गतियोंसे भिन्न मार्गणाएँ नही हैं ॥

अब वेद सहित गुणस्थानोका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेदाणुवादेण अत्थि इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुसयवेदा अवगदवेदा चेदि ॥ १०१ ॥

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद और अपगतवेद वाले जीव होते हैं ॥ १०१ ॥

शका—स्त्रीवेद किसे कहते हैं ?

समाधान—जो दोषोसे अपनेको और दूसरेको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं। और स्त्रीरूप वेदको स्त्रीवेद कहते हैं। अथवा जो पुरुषको इच्छा करती है उसे स्त्री कहते हैं जिसका अर्थ 'पुरुषको चाह करनेवाली' होता है। और जो इस स्त्रीरूपका वेदन—अनुभवन करता है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। अथवा वेदन करनेको वेद कहते हैं और स्त्रीरूप वेदको स्त्रीवेद कहते हैं। कहा भी है—

'छादेदि सय दोसेण यदो छादइ पर हि दोसेण ।
छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥

'जो दोषोसे अपनेको आच्छादित करती है और दूसरे पुरुषोको भी दोषोसे आच्छादित करती है, क्योकि उसका स्वभाव ही आच्छादन करना है इसलिये उसे स्त्री कहते हैं ॥ ७० ॥

शका—पुरुषवेद किसे कहते हैं ?

समाधान—जो उत्कृष्ट गुणोमे और उत्कृष्ट भोगोमे शयन करता है उसे पुरुष कहते हैं। अथवा, जिसके उदयसे जीव सोते हुए पुरुषके समान गुणोसे अनुगत होता है और भोगोको अप्राप्त होता है उसे पुरुष कहते हैं। अर्थात् स्त्रीकी अभिलाषा जिसके होती है उसे पुरुष कहते हैं। अथवा जो श्रेष्ठ कर्म करता है उसे पुरुष कहते हैं।

शका—जिसके स्त्रीकी अभिलाषा है वह श्रेष्ठ कर्म कैसे कर सकता है ?

समाधान—श्रेष्ठ कर्मको करनेको शक्तिसे युक्त जीवके ही स्त्रीकी अभिलाषा पाई जाती है अत उपचारसे ऐसे जीवको श्रेष्ठ कर्मका कर्ता कहा है। उसके वेदको पुरुषवेद कहते हैं। कहा भी है—

'पुरुगुण-भोगे सेदे करेदि लोयम्मि पुरुगुण कम्म ।
पुरु उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिदो पुरिसो ॥

जो उत्कृष्ट गुणोमे और उत्तम भोगोमे शयन करया है, लोकमे उत्कृष्ट गुण युक्त कार्योको करता है और जो पुरुओमे उत्तम है, इसलिये उसे पुरुप कहते हैं।

शंका—नपुंसकवेद किसे कहते है ?

समाधान—जो न स्त्री है और न पुरुष है उसे नपुसक कहते हैं। अर्थात् जिसके स्त्री और पुरुष दोनोकी अभिलाषा पाई जाती है वह नपुंसक है। कहा भी है—

णेवित्थी णेव पुमं णवुंसओ उभयलिंगवदिरित्तो।
इट्ठावग्गिसमाणग-वेयणगरुओ कलुसचित्तो ॥

'जो न स्त्री है और न पुरुष है, किन्तु स्त्री और पुरुष दोनोके लिंगोसे रहित है, और अवाकी आगके समान तीव्र वेदनासे युक्त है, तथा स्त्री और पुरुषसे मैथुन करनेकी अभिलाषासे उत्पन्न हुई वेदनाके कारण जिसका चित्त कलुषित है, उसे नपुसक कहते हैं।

नपुसकके वेदको नपुसक वेद कहते हैं।

शंका—अपगतवेद किसे कहते हैं ?

समाधान—जिनके तीनो प्रकारके वेदोसे उत्पन्न हुआ संताप दूर हो गया है उनको अपगत-वेद वाले जीव कहते हैं। कहा भी है—

'कारिस-तणिट्ठिवागग्गिसरिसपरिणामवेयणुम्मुक्का।
अवगयवेदा जीवा सगसंभवणतवरसोक्खा ॥

'जो कण्डेकी आग, तृणकी आग और अवेकी आगके समान परिणामोकी वेदनासे रहित हैं और अपनी आत्मामे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट अनन्त सुखके भोक्ता हैं उन्हे अवगतवेदी जीव कहते हैं।

अब वेदवाले जीवोका गुणस्थान आदिमे सत्त्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥१०२॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव असञ्ज्ञीमिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं॥ १०२॥

शंका—इस कथनसे तो दोनो वेदोका एक साथ एक जीवमे अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान—नही, क्यो कि दो विरुद्ध धर्मोका एक जीवमे सद्भाव माननेमे विरोध आता है।

शंका—तो फिर नौवे गुणस्थान तक दोनो वेदोकी सत्ता कैसे बनेगी ?

समाधान—एक साथ नाना जीवोमे अनेक वेद पाये जाते हैं, तथा एक जीवमे भी पर्यायकी अपेक्षा कालभेदसे अनेक वेद पाये जाते हैं। अत नौवें गुणस्थान तक उक्त दोनो वेदोकी सत्ता बन जाती है॥

अब नपुसकवेदका सत्त्व कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥ १०३ ॥

नपुसकवेद वाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते हैं॥ १०३॥

शङ्का—एकेन्द्रिय जीवोके द्रव्यवेद नही देखा जाता। अत द्रव्यवेदके न पाये जानेपर एकेन्द्रियोमे नपुसकवेदका सत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—एकेन्द्रियोमे द्रव्यवेद मत होओ, यहाँ द्रव्यवेदकी प्रधानता नही है। अथवा एकेन्द्रियोमे द्रव्यवेदकी उपलब्धि न होनेसे द्रव्यवेदका अभाव नही माना जा सकता, क्योकि सकल पदार्थोको जाननेवाले केवलज्ञानसे एकेन्द्रियोमे द्रव्यवेदका ग्रहण होता है।

शङ्का—स्त्री और पुरुषसे अनजान एकेन्द्रियोमे स्त्री और पुरुष विषयक अभिलाषा कैसे हो सकती है ?

समाधान—भूमिगृहके अन्दर रहकर ही बडा होनेके कारण जिसने कभी स्त्रीको नही जाना, ऐसे युवा पुरुषके भी स्त्री विषयक अभिलाषा देखी जाती है। अत· स्त्री और पुरुषका ज्ञान स्त्री और पुरुष विषयक अभिलाषाका कारण नही है, किन्तु वेदकर्मका उदय ही उसका कारण है॥

अब वेदरहित जीवोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमवगदवेदा चेदि ॥ १०४ ॥

नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे जीव वेद रहित होते हैं॥ १०४॥

शङ्का—तो क्या आगेके गुणस्थानोमे द्रव्यवेदका अभाव हो जाता है ?

समाधान—आगेके गुण स्थानोमे द्रव्यवेदका अभाव नही होता, किन्तु केवल द्रव्यवेदसे विकार उत्पन्न नही होता। यहा पर भाववेदका अधिकार है। अत नौवे गुणस्थानके सवेद भागसे आगे भाववेदका अभाव होनेसे जीवोको वेद रहित कहा है।

अब वेदका मार्गणाओमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया चदुसु ट्ठाणेसु सुद्धा णवुंसयवेदा ॥ १०५ ॥

नारकी चारो गुणस्थानोमे शुद्ध नपुंसकवेदी होते हैं॥ १०५॥

शङ्का—नारकियोमे बाकीके दो वेद क्यो नही होते ?

समाधान—जो जीव निरन्तर दु खो रहते हैं उनके स्त्रोवेद और पुरुषवेदका सत्व नहीं होता।

शङ्का—स्त्रीवेद और पुरुषवेदसे भी तो दु ख ही होता है ?

समाधान—नपुसकवेदका सन्ताप अवाकी अग्निके समान होता है और पुरुषवेदका सन्ताप तृणकी अग्निके समान तथा स्त्रीवेदका सन्ताप कण्डेकी आगके समान होता है। अत नपुसकवेदसे पुरुषवेद और स्त्रीवेद सुखरूप हैं।

अब तिर्यंचगतिमे वेदोका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा सुद्धा णवुंसगवेदा एइंदियप्पहुडि जाव चउरिंदिया त्ति ॥ १०६ ॥

तिर्यंच एकेन्द्रियसे लेकर चौइन्द्रियतक शुद्ध नपुसकवेदी होते हैं॥ १०६॥

शंका—चिटियोके अण्डे देखे जाते हैं, अत वे नपुसकवेदी नही हो सकती ?

समाधान—अण्डोकी उत्पत्ति गर्भमे ही होती है ऐसा कोई नियम नही है।

शङ्का—विग्रहगतिमे वेदका अभाव होता है या नही ?

समाधान—विग्रहगतिमे वेदका अभाव नही होता, क्योकि वहाँ अव्यक्त वेद पाया जाता है।।

अब शेष तिर्यंचोके वेद बतलानेके लिये सूत्र कहते है—

तिरिक्खा तिवेदा असण्णिपंचिंदिय-प्पहुडि जाव संजदासजदा त्ति ।। १०७।।

तिर्यंच असज्ञी पञ्चेन्द्रियसे लेकर सयतासयततक तीनो वेदवाले होते है।। १०७।।

शङ्का—तीनो वेदोकी प्रवृत्ति क्रमसे होती है या एकसाथ ?

समाधान—तीनो वेदोकी प्रवृत्ति क्रमसे ही होती है, एकसाथ नही होती, क्योकि वेद पर्याय है। जैसे एक कषाय अन्तर्मुहूर्ततक रहती है, वैसे वेद अन्तर्मुहूर्ततक नही रहते। किन्तु जन्म से लेकर मरणतक वेदका उदय रहता है।।

मनुष्यगतिमे विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा तिवेदा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ।। १०८ ।।

मनुष्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक तीनो वेदवाले होते है।। १०८।।

शका—सयमी पुरुषोके तीनो वेदोका अस्तित्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—अव्यक्त रूपसे वेदोका अस्तित्व वहाँ पाया जाता है, इसलिये सयमी पुरुषोके तीनो वेदोकी सत्ता कही है।।

अब तीनोसे रहित जीवोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेण परमवगदवेदा चेदि ।। १०९ ।।

नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे सभी जीव वेदरहित होते है।। १०९।।

अब देवगतिमे विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा चदुसु ट्ठाणेसु दुवेदा, इत्थिवेदा पुरिसवेदा ।। ११० ।।

देव चारो गुणस्थानोमे स्त्रीवेद और पुरुषवेद इस तरह दो वेदवाले होते हैं।। ११०।।

विशेषार्थ—सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पसे लेकर ऊपर पुरुषवेदी ही होते है। इसीतरह लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्च, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रियजीव नपुसक ही होते हैं। असख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य स्त्री और पुरुषवेदवाले ही होते हैं, नपुसक नही होते।।

वेदमार्गणाके द्वारा जीव पदार्थको कहकर अब कषायमार्गणाके द्वारा गुणस्थानोका निरूपण करते हैं—

कसायाणुवादेण अत्थि कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई चेदि ।। १११ ।।

कषायके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और कषायरहित जीव होते हैं।। १११।।

शंका—सूत्रमे क्रोधकषायी आदिके स्थानमे क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभ-कषाय और अकषाय कहना चाहिये, क्योकि कषायो और कषायवालोमे भेद होता है ?

समाधान—नही कहना चाहिये, क्योकि जीवसे भिन्न क्रोधादिकषाय नही पाई जाती ?

शका—यदि कषाय और कषायवान्‌जीवमे भेद नही है तो उन दोनोका भिन्नरूपसे कथन कैसे बन सकता है ?

समाधान—अनेकान्तमे अभिन्नोका भी भिन्न रूपसे कथन बन सकता है।

शका—कषायानुवादका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—जिसप्रकार उपदेश दिया गया है उसीप्रकार कथन करनेको अनुवाद कहते हैं। और कषायके अनुवादको कषायानुवाद कहते हैं। अथवा प्रसिद्ध अर्थके अनुकथनको अनुवाद कहते हैं।

शका—कथामार्ग प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अर्थके आश्रयसे प्रवृत्त होता है ऐसा न्याय है। इस न्यायके अनुसार अनुवाद अर्थात् केवल प्रसिद्ध अर्थका ही अनुकथन करना व्यर्थ है, क्योकि उससे अनजाने पदार्थोंका ज्ञान नही होता, किन्तु जाने हुए पदार्थोंका ही ज्ञान होता है।

समाधान—इस ग्रन्थमे प्रतिपादित कथन प्रवाह रूपसे चला आया होनेके कारण अपौरुषेय है। अत तीर्थङ्कर वगैरह उसके केवल व्याख्याता ही हैं, कर्ता नहीं है, यह बतलानेके लिये सूत्रमे अनुवाद पद रखा है। अत वह व्यर्थ नही है।

शका—क्रोधकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—रोष, आमर्ष वगैरहको कहते हैं।

शंका—मानकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—रोषसे अथवा विद्या, तप, जाति आदिके मदसे दूसरेको नमस्कार न करना मान-कषाय है।

शङ्का—मायाकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—छल अथवा वचनाको मायाकषाय कहते हैं ?

शङ्का—लोभकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—तृष्णा अथवा चाहको लोभकषाय कहते हैं।

कहा भी है—

सिल-पुढवि-भेद-धूली-जलराईसमाणओ हवे कोहो।
णारय-तिरिय-णरामरगईसु उप्पायओ कमसो॥
सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्त णियभेएणणुहरतओ माणो।
णारय तिरिय-णरामरगइविसयुप्पायओ कमसो॥
वेलुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तएण खोरप्पे।
सरिसी माया णारय-तिरिय-णरामरेसु जणइ जिअं॥
किमिराय-चक्क-तणुमल-हरिद्दराएण सरिसओ लोहो।
णारय-तिरिक्ख-माणुस-देवेसुप्पायओ कमसो॥

क्रोधकषाय चार प्रकारकी है—पत्थरकी रेखाके समान, पृथिवीकी रेखाके समान, धूलिकी रेखाके समान और जलकी रेखाके समान। यह चारो ही प्रकारका क्रोध जीवको क्रमसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमे उत्पन्न कराता है ॥ मान चार प्रकारका होता है—पत्थरके समान, हड्डीके समान, काठके समान और वेतके समान। यह चारो प्रकारका मान क्रमसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमे उत्पन्न कराता है ॥ माया चार प्रकारकी है—वासकी जड़के समान, मेढेके सीगके समान, गोमूत्रके समान, खुरपाके समान। यह चार प्रकारकी माया क्रमसे जीवको नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमे ले जाती है ॥ लोभकषाय चार प्रकारकी है—क्रिमिचके रगके समान, चकाके मलके समान, शरीरके मलके समान और हल्दीके रगके समान। यह चार प्रकारकी लोभकषाय भी क्रमसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिमे उत्पन्न कराती है ॥

शङ्का—अकषाय किसे कहते हैं ?

समाधान—सम्पूर्ण कषायोके अभावको अकषाय कहते है। कहा भी है—

अप्पपरोभयबाधण-बंधासजमणिमित्त कोहादि।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥

जिनके स्वयं अपनेको, दूसरेको और दोनोको बाधा देने, बन्ध करने तथा असयममे निमित-भूत क्रोध आदि कषाय नही है, उन बाह्य और आभ्यन्तर मलसे रहित जीवोको अकषाय कहते हैं ॥'

अब कषायमार्गणाका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

कोधकसाई माणकसाई मायाकसाई एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥११२॥

क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव एकेन्द्रियसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुण-स्थानतक होते है ॥ ११२ ॥

शका—अपूर्वकरण आदि गुणस्थानवाले सयमियोके कषायका अस्तित्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—वहाँपर अव्यक्त कषाय पाई जाती है ॥

अब लोभ कषायका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते है—

लोभकसाई एइंदियप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइय-सुद्धि-संजदा त्ति ॥ ११३ ॥

लोभ कषायवाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर सूक्ष्मसापरायशुद्धिसयत गुणस्थानतक होते हैं ॥ ११३ ॥

अब कषायरहित जीवोके गुणस्थानोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अकसाई चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि उवसतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसाय-वीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ॥ ११४ ॥

कषायरहित जीव उपशातकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोमे होते हैं ॥ ११४ ॥

शंका—उपशातकषायगुणस्थानको कषायरहित कैसे कहा, क्योकि वहां अनन्त द्रव्यकषाय-का सद्भाव है। इसलिये उसे कषायरहित नही कह सकते ?

समाधान—उपशातकषायगुणस्थानमे अनन्त द्रव्यकषायका सद्भाव होनेपर भी कषायकी उदय नही है। इसलिये उसे कषायरहित कहा है ।।

अब ज्ञानमार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करनेके लिये सूत्र कहते है—

णाणाणुवादेण अत्थि मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभगणाणी आभिणिवोहिय-णाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी चेदि ।। ११५ ।।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, आभिनिवोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव होते हैं ।। ११५ ।।

शङ्का—ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे ज्ञानके प्रतिपक्षी अज्ञानका ग्रहण कैसे सभव है ?

समाधान—मिथ्यात्व सहित ज्ञान ज्ञानका कार्य नही कर सकता। इसलिये उसे ही अज्ञान कहा है। जैसे पुत्रके योग्य कार्य न करनेवाले पुत्रको ही अपुत्र कहते हैं।

शङ्का—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—तत्त्वार्थमे रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा और चारित्रका धारण करना ज्ञानका कार्य है।

शका—ज्ञान किसे कहते हैं ?

जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अर्थात् साकार उपयोगका नाम ज्ञान है। अथवा, जिसके द्वारा यह आत्मा जानता है, जानता था अथवा जानेगा, ज्ञानावरण कर्मके एकदेश क्षयसे अथवा सम्पूर्ण ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए ऐसे आत्मपरिणामको ज्ञान कहते हैं।

शका—ज्ञानके कितने भेद है ?

समाधान—ज्ञानके दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

शका—परोक्षके कितने भेद हैं ?

समाधान—परोक्षके भी दो भेद हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

शंका—मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—पाचो इन्द्रियो और मनकी सहायतासे जो पदार्थका ग्रहण होता है उसे मति-ज्ञान कहते हैं।

शका—मतिज्ञानके कितने भेद हैं ?

समाधान—मतिज्ञानके चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

शका—अवग्रह किसे कहते हैं ?

समाधान—विषय और विषयीके सम्बन्ध होनेके अनन्तर समयमे जो प्रथम ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं। अवग्रह दो प्रकारका होता है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। अप्राप्त अर्थके ग्रहणको अर्थावग्रह कहते हैं और प्राप्त अर्थके ग्रहणको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं उनमे चक्षु और मनसे अर्थावग्रह ही होता है क्योकि ये दोनो प्राप्त अर्थका ग्रहण नही करते। और शेष चारो इन्द्रियोसे दोनो अवग्रह होते हैं।

शका—ईहा ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—अवग्रहसे जाने हुए पदार्थको विशेष रूपसे जाननेके लिये जो अभिलाषारूप ज्ञान होता है उसे ईहा ज्ञान कहते हैं ।

शंका—अवाय ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—ईहासे जाने गये पदार्थके निश्चयरूप ज्ञानको अवाय कहते हैं ।

शका—धारणा किसे कहते हैं ?

समाधान—कालान्तरमे भी विस्मरण न होने रूप सस्कारके उत्पन्न करनेवाले ज्ञानको धारणा कहते हैं ।

शंका—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—शब्द और धूमादि लिंगके द्वारा जो पदार्थान्तरका ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं । उनमे शब्दके निमित्तसे होनेवाला श्रुतज्ञान दो प्रकारका है—अग और अगवाह्य । अग-श्रुतके बारह भेद हैं और अगवाह्यके चौदह भेद हैं ।

शंका—प्रत्यक्षके कितने भेद हैं ?

समाधान—प्रत्यक्षके तीन भेद है—अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ।

शंका—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—सम्पूर्ण मूर्त पदार्थोको साक्षात् जाननेवाले ज्ञानको अवधिज्ञान कहते है ।

शका—मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—मनका आश्रय लेकर मनोगत पदार्थोंके साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानको मन-पर्यय ज्ञान कहते हैं ।

शङ्का—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोको साक्षात् जाननेवाले ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं

शंका—मति अज्ञान वगैरहका क्या स्वरूप है ?

समाधान—इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्व समवेत ज्ञानको मत्यज्ञान कहते हैं। मिथ्यात्व समवेत शाब्दज्ञानको श्रुताज्ञान कहते हैं । और मिथ्यात्व समवेत अवधिज्ञानको विभग ज्ञान कहते हैं । कहा भी है—

विस-जत-कूड-पजर-बंधादिसु विणुवदेसकरणेण ।
जा खलु पवत्तइ मदी मदि अण्णाणे त्ति तं वेंति ।।
आभीयमासुरक्खा भारहरामायणादि-उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया सुद अण्णाणे त्ति त वेंति ।।
विवरीयमोहिणाणं खइयुवसमियं च कम्मवीजं च ।
वेभंगो त्ति पउच्चइ समत्तणाणीहि समयम्हि ।।
अभिमुह-णियमिय-बोहणमाभिणिबोहियमणिदिइंदियज ।
बहु-ओग्गहाइणा खलु कयछत्तीस-तिसय-भेयं ।।

अत्थादो अत्थतर-उवलंभो त भणति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्व णियमेणिह सद्दज पमुहं ॥
अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणे त्ति वण्णिद समए।
भवगुणपच्चयविहिय तमोहिणाणे त्ति ण वेंति ॥
चिंतियमचिंतिय वा अद्ध चिंतियमणेयभेय च।
मणपज्जव ति उच्चइ ज जाणइ त खु णरलोए ॥
सपुण्ण तु समग्ग केवलमसवत्त सव्वभावविद।
लोगालोगवितिमिर केवलणाण मुणेयव्व ॥

बिना उपदेश किये विष, यत्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदिके विषयमे जो बुद्धि स्वत प्रवृत्त होती है उसे मत्यज्ञान कहते हैं ॥ चोरशास्त्र, हिंसाशास्त्र, भारत और रामायण वगैरहके तुच्छ और साधन करनेके अयोग्य उपदेशोको श्रुताज्ञान कहते हैं ॥ सर्वज्ञोने आगममे क्षयोपशमजन्य और मिथ्यात्व आदि कर्मोके कारण रूप विपरीत अवधि ज्ञानको विभग ज्ञान कहा है ॥ मन और इन्द्रियोकी सहायतासे उत्पन्न हुए, अभिमुख और नियमित पदार्थके ज्ञानको आभिनिवोधिकज्ञान कहते हैं। उसके बहु आदि बारह प्रकारके पदार्थों और अवग्रह आदिकी अपेक्षा तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ॥ मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके अवलम्बनसे उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान नियमसे मतिज्ञान पूर्वक होता है। इसके दो भेद हैं—शब्दजन्य अथवा अक्षरात्मक और लिंगजन्य अथवा अनक्षरात्मक। इनमेसे शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है ॥ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा जिस ज्ञानका विषय सीमित हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इसे आगममे सीमाज्ञान भी कहा है। इसके दो भेद हैं—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय ॥ चिन्तित (जिसका पहले चिन्तवन किया है), अचिन्तित (जिसका भविष्यमे चिन्तवन किया जायेगा) और अर्धचिन्तित, इत्यादि अनेक प्रकारके दूसरेके मनमे स्थित पदार्थको जो जानता है उसे मन पर्ययज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान मनुष्यलोकमे ही होता है ॥ ज्ञानके समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोके व्यक्त हो जानेके कारण जो सम्पूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मका सर्वथा नाश हो जानेके कारण अप्रतिहत (बेरोक) शक्तिसे युक्त होनेसे जो समग्र है, इन्द्रिय और मनकी सहायतासे रहित होनेके कारण जिसे 'केवल' कहा जाता है, प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मोके नष्ट हो जानेसे सम्पूर्ण पदार्थोंमे एक साथ प्रवृत्त होनेके कारण जो असपत्न है और लोक तथा अलोकको प्रकाशित करता है उसे केवलज्ञान जानना चाहिये।

अब मति अज्ञान और श्रुताज्ञानका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी एइंदियप्पहुडि जाव सासणसम्माइट्ठि त्ति ॥११६॥

मति अज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीव एकेन्द्रियसे लेकर सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ॥११६॥

शका—मिथ्यादृष्टिके दोनो अज्ञान भले ही हो, क्योकि उसके मिथ्यात्व कर्मका उदय होता है। किन्तु सासादनमे मिथ्यात्वका उदय नही होता अत वहाँ दोनो मिथ्याज्ञान नही होने चाहिये ?

समाधान—विपरीत अभिनिवेशको मिथ्यात्व कहते है और वह विपरीत अभिनिवेश

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी, इन दोनोके निमित्तसे होता है । तथा सासादनमे अनन्तानुबन्धीका उदय रहता है, इसलिये वहा दोनो अज्ञान होते हैं ।

शङ्का—एकेन्द्रियोके श्रोत्र इन्द्रिय नही होती । इसलिये उन्हे शब्दका ज्ञान नही हो सकता और शब्दका ज्ञान न होनेसे शब्दके अर्थका ज्ञान नही हो सकता । अत एकेन्द्रियोके श्रुतज्ञान कैसे हो सकता है ?

समाधान—ऐसा कोई एकान्त नही है कि शब्दके निमित्तसे होनेवाले अर्थके ज्ञानको ही श्रुतज्ञान कहते है । किन्तु धूम आदि चिन्होसे भी जो अर्थका ज्ञान होता है उसे भी श्रुतज्ञान कहते हैं ।

शंका—मनरहित जीवोके ऐसा श्रुतज्ञान भी कैसे हो सकता है ?

समाधान—मनके बिना भी वनस्पतिकायिक जीवोकी हितमे प्रवृत्ति और अहितसे निवृत्ति देखी जाती है । अत मनरहित जीवोके भी श्रुतज्ञान होता है ।।

अब विभग ज्ञानका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

विभगणाण सण्णिमिच्छाइट्ठीण वा सासणसम्माइट्ठीण वा ।।११७।।

विभग ज्ञान सज्ञीमिथ्यादृष्टि जीवोके और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोके होता है ।।११७।।

शका—विकलेन्द्रिय जीवोके विभग ज्ञान क्यो नही होता ?

समाधान—विकलेन्द्रियोके विभंग ज्ञानका कारण क्षयोपशम नही पाया जाता ।

शंका—वह क्षयोपशम विकलेन्द्रियोके क्यो नही होता ?

समाधान—अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम या तो भवप्रत्यय (जन्मनिमित्तक) होता है या गुणप्रत्यय (सम्यग्दर्शनादि गुणनिमित्तक) होता है । ये दोनो कारण विकलेन्द्रियोमे नही पाये जाते । इसलिये उनके विभग ज्ञान नही होता ।।

विभगज्ञानको भवप्रत्यय मान लेनेपर पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो अवस्थाओमे उसका सद्भाव प्राप्त हुआ, अत आगेका सूत्र कहते हैं—

पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ।।११८।।

विभगज्ञान पर्याप्तकोके ही होता है, अपर्याप्तकोके नही होता ।।११८।।

शङ्का—यदि देवो और नारकियोका विभगज्ञान भवप्रत्यय होता है तो अपर्याप्त अवस्थामे भी विभगज्ञान होना चाहिये, क्योकि विभगज्ञानका कारण भव अपर्याप्त अवस्थामे भी रहता है ?

समाधान—अपर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय विभगज्ञानका कारण नही है, किन्तु पर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय विभगज्ञानका कारण है इसलिये अपर्याप्त अवस्थामे विभगज्ञान नही होता ।।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे ज्ञानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि । आभिणि-

बोहियणाणं मदि-अण्णाणेण मिस्सय। सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सय। ओहिणाणं विभगणाणेण मिस्सय। तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा इदि ॥११९॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे आदिके तीनो ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान मत्यज्ञानसे मिश्रित होता है। श्रुतज्ञान श्रुताज्ञानसे मिश्रित होता है। अवधिज्ञान विभग ज्ञानसे मिश्रित होता है। इस तरह तीनो ही ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं ॥११९॥

शंका—अज्ञान तीन हैं अत सूत्रमे अज्ञानपदका एकवचनमे निर्देश क्यो किया है?

समाधान—अज्ञानका कारण मिथ्यात्व एक है इसलिये अज्ञानको भी एक मान लेनेमे कोई विरोध नही आता।

शका—यथार्थ श्रद्धासे अनुविद्ध जाननेको ज्ञान कहते हैं और अयथार्थ श्रद्धासे अनुविद्ध जाननेको अज्ञान कहते हैं। ऐसी स्थितिमे भिन्न-भिन्न जीवोमे रहनेवाले ज्ञान और अज्ञानका मिश्रण नही बन सकता?

समाधान—यद्यपि उक्त कथन ठीक है किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे उक्त कथनको नही लेना चाहिये, क्योकि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति मिथ्यात्व तो हो नही सकती, क्योकि सम्यग्मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति मिथ्यात्वकर्मसे अनन्त गुणी हीन होती है अत सम्यग्मिथ्यात्वकर्ममे विपरीत अभिनिवेशको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यका अभाव है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकर्म सम्यक्त्वप्रकृति रूप भी नही हो सकता, क्योकि सम्यक्त्वप्रकृतिसे सम्यक्मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति अनन्तगुणी है अत सम्यग्मिथ्यात्वकर्म यथार्थ श्रद्धाके साथ नही रह सकता। इसलिये सम्यक्मिथ्यात्वकर्म जात्यन्तर होनेसे जात्यन्तररूप परिणामोका ही उत्पादक है। अत उसके उदयसे उत्पन्न हुए परिणामोसे युक्त ज्ञान ज्ञान नही है, क्योकि उसके साथ यथार्थ श्रद्धा नही है, और न उसे अज्ञान ही कहा जा सकता है क्योकि उसके साथ अयथार्थ श्रद्धा नही है। इसलिये वह ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्व रूप परिणामोकी तरह जात्यन्तर ही है। अत एक होते हुए भी उसे मिश्र कहा जाता है।

ज्ञानोका गुणस्थानोमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आभिणिबोहियणाण सुदणाणं ओहिणाणमसजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ॥ १२० ॥

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान असयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १२० ॥

शङ्का—देव और नारक असयतसम्यग्दृष्टियोमे अवधिज्ञानका सद्भाव भले ही रहो, क्योकि उनके अवधिज्ञान भवनिमित्तक होता है। तथा देशविरत आदि ऊपरके गुणस्थानोमे भी अवधिज्ञान रहा आवे, क्योकि अवधिज्ञानको उत्पत्तिमे निमित्तभूत गुणोका वहाँ सद्भाव पाया जाता है। किन्तु तिर्यञ्च और मनुष्य असयत सम्यग्दृष्टियोमे अवधिज्ञानका सद्भाव नही हो सकता, क्योकि उनमे अवधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारण भव और गुण नही पाये जाते।

समाधान—उक्त कथन ठीक नही है क्योकि असयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यो और तिर्यञ्चोमे अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण सम्यक्त्व गुणका सद्भाव पाया जाता है।

शका—चूंकि सब सम्यग्दृष्टियोमे अवधिज्ञान नही पाया जाता। इससे मालूम पडता है कि सम्यग्दर्शन अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण नही है?

समाधान—तब तो सब संयमियोमे अवधि ज्ञान नही पाया जाता, इसलिये सयमको भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण नही माना जा सकता।

शका—विशिष्ट सयम ही अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण है इसलिये सब सयमियोके अवधिज्ञान नही होता ?

समाधान—तो विशिष्ट सम्यक्त्व ही अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण है। इसलिये सभी सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्योमे अवधिज्ञान नही होता, ऐसा मान लेनेमे क्या विरोध है ?

शंका—सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं—औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। इन तीनो ही सम्यग्दर्शनोमे अवधिज्ञान होना भी है और नही भी होता। इसलिये सम्यग्दर्शनविशेषको अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण नही माना जा सकता ?

समाधान—तो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापराय और यथाख्यात इन पाँच प्रकारके संयमो तथा देशविरतिके होते हुए भी अवधिज्ञान होता भी है और नही भी होता, इसलिये सयमविशेषको भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण नही माना जा सकता।

शङ्का—असख्यात लोकप्रमाण सयमरूप परिणामोमे-से कुछ विशिष्ट परिणाम ही सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमे कारण हैं। इसलिये पूर्वोक्त दोष नही आता ?

समाधान—तो असख्यात लोकप्रमाण सम्यग्दर्शनरूप परिणामोमेसे कुछ विशिष्ट सम्यक्त्वरूप परिणाम सहकारीकारणकी अपेक्षासे अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण होते हैं, यह निश्चित हो जाता है॥

अब मन पर्ययज्ञानके स्वामीका कथन करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

मणपज्जवणाणी पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ॥ १२१ ॥

मन पर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १२१॥

शंका—देशविरत आदि नीचेके गुणस्थानवर्ती जीवोके मन पर्ययज्ञान क्यो नही होता ?

समाधान—सयमासयम और असयमके साथ मन पर्ययज्ञानकी उत्पत्तिका विरोध है।

शंका—यदि मन पर्ययज्ञानकी उत्पत्तिमे केवल सयम ही कारण है तो समस्त सयमियोके मन पर्ययज्ञान क्यो नही होता ?

समाधान—यदि केवल एक सयम ही मन पर्ययज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण होता तो ऐसा होता। किन्तु उसकी उत्पत्तिमे अन्य कारण भी हैं इसलिये उनके न रहनेसे सब सयमियोके मन पर्ययज्ञान नही होता।

शंका—वे अन्य कारण कौनसे हैं ?

समाधान—विशिष्ट द्रव्य, विशिष्ट क्षेत्र और विशिष्ट काल वगैरह अन्य कारण हैं उनके न होनेसे सभी सयमियोके मन पर्ययज्ञान नही होता॥

अब केवलज्ञानके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

केवलणाणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥ १२२ ॥

केवलज्ञानी सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोमे होते हैं ॥ १२२ ॥

शका—अर्हन्त परमेष्ठीके केवलज्ञान नही है, क्योकि उनके नोइन्द्रियावरणकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ मन पाया जाता है ?

समाधान—उक्त कथन ठीक नही है, क्योकि अर्हन्तके सम्पूर्ण आवरणोका क्षय हो जाता है। अत उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम न होनेसे उस क्षयोपशमका कार्यरूप मन भी नही पाया जाता। उसी प्रकार उनके वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई शक्तिकी अपेक्षा भी मनका सद्भाव नही है, क्योकि जिनके वीर्यान्तरायकर्मका क्षय हो गया है उनके वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाली शक्तिका सद्भाव कैसे पाया जा सकता है।

शका—तो फिर अर्हन्तको सयोगी कैसे माना जाता है ?

समाधान—सत्य और अनुभय वचनकी उत्पत्तिमे निमित्तभूत आत्मप्रदेशोका परिस्पन्द वहा पाया जाता है इसलिये उसकी अपेक्षासे अर्हन्तके सयोगी होनेमे कोई विरोध नही आता।

शका—जब अर्हन्तके मन नही है तो मनका कार्य वचन भी नही होना चाहिये ?

समाधान—वचन मनका कार्य नही है किन्तु ज्ञानका कार्य है।

शंका—अक्रमिक ज्ञानसे क्रमिक वचनोकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—घटविषयक अक्रमिक ज्ञानके होते हुए भी कुम्भकार क्रमसे ही घटको उत्पन्न करता है। इसी तरह अक्रमिक ज्ञानसे क्रमिक वचनोकी उत्पत्ति हो सकती है।

शका—यदि सयोगकेवलीके मनोयोग नही होता तो सूत्रके साथ विरोध आयेगा क्योकि पहले बतलाया है कि सत्यमनोयोग और अ-सत्यमृषामनोयोग सयोग केवली पर्यन्त होते हैं ?

समाधान—सत्य और अ-सत्यमृषावचन मनके कार्य हैं। अत सयोगकेवलीमे दोनो वचनोका सद्भाव होनेसे उपचारसे मनोयोगका सद्भाव मान लिया गया है। अथवा जीवप्रदेशोके परिस्पन्दमे कारण नोकर्मसे उत्पन्न हुई शक्तिका सद्भाव होनेसे सयोगिकेवलीमे मनोयोगका सद्भाव मान लिया गया है।

अब सयम मार्गणाका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसजदा संजदासंजदा असजदा चेदि ॥ १२३ ॥

सयममार्गणाके अनुवादसे सामायिकशुद्धिसंयत, छेदोपस्थापनाशुद्धिसयत, परिहारशुद्धिसयत, सूक्ष्मसापरायशुद्धिसयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसयत ये पांच प्रकारके सयत, सयतासंयत और असयत जीव होते हैं ॥ १२३ ॥

शंका—सयत किसे कहते हैं ?

समाधान—'सम्' उपसर्गका अर्थ 'सम्यक्' होता है। अत सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके अनुसार जो 'यत' हैं अर्थात् अन्तरग और वहिरग आस्रवसे विरत हैं, उन्हे सयत कहते हैं।

शका—सामायिकशुद्धिसयम किसे कहते हैं ?

समाधान—'मै सब प्रकारके सावद्ययोगसे विरत हूँ' इस प्रकार समस्त सावद्ययोगके त्यागको सामायिकशुद्धिसंयम कहते हैं। इसमे चारित्रके सम्पूर्ण भेदोका सग्रह होता है। अतः जिसने सयमके सम्पूर्ण भेदोको अपने अन्तर्गत कर लिया है ऐसे एक यमको धारण करनेवाला जीव सामायिक-शुद्धिसयत होता है।

शंका—छेदोपस्थापनाशुद्धिसयम किसे कहते हैं ?

समाधान—उस एक व्रतका छेद करके अर्थात् उसके दो तीन आदि भेद करके उपस्थापन अर्थात् व्रतोके धारण करनेको छेदोपस्थापनाशुद्धिसयम कहते हैं। सामायिकसयम द्रव्यार्थिकनय रूप है क्योकि वह सम्पूर्ण व्रतोको सामान्यकी अपेक्षा एक मानकर एक यम रूपसे ग्रहण करता है। और छेदोपस्थापनाशुद्धिसयम पर्यायार्थिकनयरूप है, क्योकि वह उसी एक व्रतको पाँच अथवा बहुत भेद करके धारण करता है। द्रव्यार्थिकनयका उपदेश तीक्ष्णवुद्धि मनुष्योके लिये दिया है और पर्यायार्थिकनयका उपदेश मन्दवुद्धि प्राणियोके लिये दिया है। अत इन दोनो सयमोमे अनुष्ठानकी अपेक्षा कोई भेद नही है।

शङ्का—तब तो ये दोनो सयम वास्तवमे एक ही हैं ?

समाधान—हाँ, इसीसे सूत्रमे सामायिक और छेदोपस्थापना पदके साथ शुद्धिसयत पदका पृथक्-पृथक् ग्रहण नही किया है।

शका—परिहारशुद्धिसयत किन्हे कहते हैं ?

समाधान—परिहार प्रधान शुद्धिसयतोको परिहारशुद्धिसयत कहते हैं। तीस वर्ष तक अपनी इच्छानुसार भोगोको भोगकर, फिर सामायिक अथवा छेदोपस्थापना सयमको धारण कर, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार परिमित और अपरिमित प्रत्याख्यानका कथन करनेवाले प्रत्याख्यान नामक पूर्वको अच्छी तरह जानकर जिसका समस्त सशय दूर हो गया है और जिसने विशेष तपके द्वारा परिहारऋद्धिको प्राप्त कर लिया है, ऐसा सयमी मनुष्य तीर्थङ्करके पादमूलमे परिहारशुद्धिसयमको धारण करता है। इस प्रकार सयमको धारण करके जो स्थान, गमन, विहार और खान पान आदि सब व्यापारोमे प्राणियोकी हिंसाके परिहार (वचाव) मे दक्ष होता है उसे परिहारशुद्धिसयत कहते हैं।

शंका—सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसयत किन्हे कहते है ?

समाधान—साम्पराय कहते हैं कषायको। जिनकी कषाय सूक्ष्म हो गई है उन्हे सूक्ष्म-साम्पराय कहते हैं। तथा विशुद्धिको प्राप्त सयतोको शुद्धिसयत कहते हैं। जो सूक्ष्म कषायवाले होते हुए शुद्धिप्राप्त सयत होते हैं, उन्हे सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसयत कहते हैं। साराश यह है कि सामायिक और छेदोपस्थापना सयमको धारण करनेवाले साधु जब सूक्ष्मकषायवाले हो जाते हैं तो उन्हे सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसयत कहते हैं।

शंका—यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत किन्हे कहते है ?

समाधान—परमागममे विहार अर्थात् कषायोके अभावरूप अनुष्ठानका जैसा कथन किया है वैसा ही विहार जिनके पाया जाता है उन्हे यथाख्यातविहार कहते है। तथा जो यथाख्यात विहारवाले होते हुए शुद्धिप्राप्तसयत होते हैं उन्हे यथाख्यातविहारशुद्धिसयत कहते हैं। कहा भी है—

सगहियसयलसजममेय-जममणुत्तर दुरवगम्म।
जीवो समुव्वहतो सामाइयसंजदो होई॥
छेत्तूण य परियाय पोराण जो ठवेई अप्पाण।
पचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावओ जीवो॥
पचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्ज।
पचजमेयजमो वा परिहारो सजदो सो हु॥
अणुलोभं वेदतो जीवो उवसामगो व खवओ वा।
सो सुहुमसापराओ जहक्खादेणूणओ किं पि॥
उवसते खीणे वा असुहे कम्मम्हि मोहणीयम्हि।
छदुमत्थो व जिणो वा जहक्खादो सजदो सो हु॥
पच-ति-चउव्विहेहि अणु-गुण-सिक्खा-वएहि सजुत्ता।
वुच्चति देसविरया सम्माइट्ठी झरियकम्मा॥
दसण - वय - सामाइय-पोसह - सचित्त-राइभत्ते य।
बह्मारह्म - परिग्गह-अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदेदे॥
जीवा चोद्दसभेया इदियविसया तहट्ठवीस तु।
जे तेसु णेव विरदा असजदा ते मुणेयव्वा॥

'जिसमे सकल सयमोका सग्रह कर लिया गया है, ऐसे सर्वोत्कृष्ट और दुरधिगम्य एक यमको धारण करनेवाला जीव सामायिकसयत होता है॥ जो पुरानी पर्यायको छेदकर अपनेको पाँच यमरूप धर्ममे स्थित करता है वह जीव छेदोपस्थापक सयमी होता है॥ जो पाँच समिति और तीन गुप्तियोसे युक्त होता हुआ सदा ही सावद्य योगका परिहार करता है तथा पाँच यमरूप छेदोपस्थापना सयमको अथवा एक यमरूप सामायिक सयमको धारण करता है वह परिहारविशुद्धि संयत कहलाता है॥ उपशमश्रेणिवाला अथवा क्षपकश्रेणिवाला जो जीव सूक्ष्म लोभकषायका अनुभवन करता है उसे सूक्ष्म सापराय सयत कहते हैं। यह यथाख्यात सयतसे कुछ हीन होता है॥ अशुभ मोहनीय कर्मके उपशान्त अथवा क्षय हो जानेपर ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ तथा तेरहवे और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जिन यथाख्यातसयत होते हैं॥ पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोसे सयुक्त सम्यग्दृष्टि जीवोको देशविरत कहते हैं। उनके असख्यातगुणी कर्मनिर्जरा होती है॥ दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत, ये ग्यारह देशविरतके भेद हैं॥ चौदह जीव समासो और अट्ठाईस प्रकारके इन्द्रियोके विषयोमे जो विरत नही हैं उन्हे असयत जानना चाहिये।

अब सयतोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते है—

संजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥१२४॥

सयत जीव प्रमत्तसयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते है ॥१२४॥

शका—वुद्धिपूर्वक सावद्ययोगके त्यागको सयत कहना तो ठीक है, क्योकि यदि ऐसा न माना जायेगा तो काष्ठ आदिमे भी सयमका प्रसग आ जायेगा। किन्तु केवलीमे वुद्धिपूर्वक सावद्ययोगका त्याग नही होता। अत उनमे सयमका होना दुर्घट है?

समाधान—चार अघातिया कर्मोंका विनाश हो जानेसे तथा प्रतिसमय असख्यातगुणी श्रेणिनिर्जरा होनेसे और समस्त पापक्रियाके निरोधस्वरूप पारिणामिकगुणके प्रकट होनेसे केवलीमे उपचारसे सयम माना जाता है। अथवा प्रवृत्ति का अभाव होनेसे केवलीमे मुख्य सयम है। ऐसा माननेपर काष्ठसे व्यभिचार नही आता, क्योकि काष्ठमे प्रवृत्ति नही पाई जाती, अत उसकी निवृत्ति भी नही बनती ॥

अब सयमके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा पमत्तसजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ॥१२५॥

सामायिक और छेदोपस्थापनारूप शुद्धिको प्राप्त सयतजीव प्रमत्तसयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते है ॥१२५॥

परिहारसुद्धिसजदा दोसु ट्ठाणेसु पमत्तसंजदट्ठाणे अपमत्तसंजदट्ठाणे ॥१२६॥

परिहारशुद्धिसयत प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत इन दो गुणस्थानोमे होते है ॥१२६॥

शका—ऊपरके आठवे आदि गुणस्थानोमे यह सयम क्यो नही होता?

समाधान—जिनकी आत्माएँ ध्यानरूपी सागरमें निमग्न हैं, जो मौनी है और जिन्होने आने जानेरूप समस्त कायव्यापारको सकुचित कर लिया है, ऐसे जीवोके शुभाशुभ क्रियाओका परिहार नही बन सकता, क्योकि प्रवृत्ति करनेवाला ही परिहार कर सकता है, प्रवृत्ति नही करनेवाला नही। इसलिये ऊपरके गुणस्थानोमे परिहारशुद्धिसयम नही होता।

शका—परिहारशुद्धिसयम एकयमरूप है या पाचयमरूप। यदि एकयमरूप है तो उसका सामायिकमे अन्तर्भाव होना चाहिये। और यदि पाचयमरूप है तो छेदोपस्थापनमे अन्तर्भाव होना चाहिये। इन दोनोसे भिन्न तीसरे सयमकी सम्भावना नही है, अतः परिहारशुद्धिसयम नही वन सकता?

समाधान—परिहारऋद्धिरूप अतिशयकी उत्पत्तिकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापनासे परिहारशुद्धिसंयम कथचित् भिन्न है।

शङ्का—सामायिक और छेदोपस्थापनाका त्याग किये बिना ही जीव परिहारऋद्धिको प्राप्त करता है अत उन दोनोसे भिन्न तीसरा संयम नही है?

समाधान—पहले सामायिक और छेदोपस्थापना सयम परिहारऋद्धिसे रहित होते हैं, पीछे उससे सहित होते हैं। अत उन दोनोसे इसका भेद है।

शंका—परिहारऋद्धि ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोमे भी पाई जाती है, इसलिये वहाँ परिहारविशुद्धिसयमका सद्भाव माननेमे क्या हानि है?

समाधान—ऊपरके गुणस्थानोमे परिहारऋद्धिके होनेपर भी परिहार करने रूप उसका कार्य नही पाया जाता। अत ऊपरके गुणस्थानोमे परिहारविशुद्धिसयम नहीं माना गया।

अब तीसरे सयमके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसजदा एक्कम्मि चेव सुहुमसांपराइयसुद्धिसजदट्ठाणे ॥१२७॥

सूक्ष्मसापरायशुद्धिसंयत जीव एक सूक्ष्मसापरायशुद्धिसयत गुणस्थानमे ही होते हैं ॥१२७॥

शंका—सूक्ष्मसापरायसयम एकयमरूप है या पाँचयमरूप है? यदि एकयमरूप है तो पाँचयमरूप छेदोपस्थापनासयमसे मुक्ति अथवा उपशमश्रेणिपर आरोहण नही बन सकता, क्योकि सूक्ष्मसापरायगुणस्थानको प्राप्त किये बिना मुक्तिकी प्राप्ति और उपशमश्रेणिपर आरोहण नही बनता। यदि सूक्ष्मसापरायसयम पाँचयमरूप है तो एकयमरूप सामायिकसयमको धारण करनेवाले जीव मुक्ति नही प्राप्त कर सकते और न उपशमश्रेणिपर चढ सकते हैं क्योकि पाँचयमरूप सूक्ष्मसापरायके विना ये दोनो कार्य नही बनते। यदि सूक्ष्मसापरायसयम एकयम और पाँचयमरूप है तो उसके दो भेद हो जाते हैं?

समाधान—आदिके दो विकल्प हम नही मानते। तीसरे विकल्पमे जो दोष दिया है वह भी ठीक नही है, क्योकि पचयम और एकयमके भेदसे सयममे कोई भेद नही होता। अत एकयम और पचयमकी अपेक्षा सूक्ष्मसापरायसयमके दो भेद नहीं हो सकते।

शका—यदि एकयम और पचयमको अपेक्षा सयमके दो भेद नही होते तो सयमके पाँच भेद कैसे बन सकेंगे?

समाधान—सयमके चार ही भेद हैं, पाँचवा भेद नही है। अर्थात् सामायिक और छेदोपस्थापना सयममे विवक्षाभेदसे ही भेद है, वैसे ये दोनो एक ही हैं॥

अब चोथे सयमके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

जहाक्खादविहारसुद्धिसजदा चदुसु ट्ठाणेसु उवसतकषायवीयरायछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली अजोगीकेवली त्ति ॥१२८॥

यथाख्यातविहारशुद्धिसयत जीव उपशातकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगीकेवली और अयोगीकेवली इन चार गुणस्थानोमे होते हैं ॥१२८॥

देशविरतके गुणस्थानका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सजदासजदा एक्कम्मि चेय सजदासजदट्ठाणे ॥१२९॥

सयतासयत जीव एक सयतासयत गुणस्थानमे ही होते हैं ॥१२९॥

अब असयतोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

असजदा एइंदियप्पहुडि जाव असजदसम्माइट्ठि त्ति ॥१३०॥

असयत जीव एकेन्द्रियसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते है ॥१३०॥

शका—कितने ही मिथ्यादृष्टि जीव भी संयत देखे जाते है?

समाधान—सम्यग्दर्शनके विना सयमकी उत्पत्ति नही होती।

शका—सिद्ध जीवोके कौन-सा सयम होता है ?

समाधान—सिद्ध जीवोके एक भी संयम नही होता; क्योकि उनमे बुद्धिपूर्वक निवृत्तिका अभाव है। इसीलिये वे सयतासयत नही हैं तथा असयत भी नही है क्योकि उनकी सम्पूर्ण पाप-क्रियाये नष्ट हो चुकी है।

सयममार्गणाके द्वारा जोवपदार्थका कथनकरके अब दर्शनमार्गणाके द्वारा जोवके अस्तित्व-को कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

दसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदसणी अचक्खुदंसणी ओधिदसणी केवलदंसणी चेदि ॥१३१॥

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनवाले जीव होते है॥१३१॥

शंका—चक्षुदर्शन किसे कहते है ?

समाधान—चक्षुके द्वारा सामान्य पदार्थके ग्रहण करनेको चक्षुदर्शन कहते हैं।

शंका—विषय और विषयी अर्थात् पदार्थ और इन्द्रियके सम्बन्धके अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं। वह अवग्रह सामान्यविशेषात्मक बाह्य अर्थको ग्रहण करता है। अतः वह दर्शनरूप नही हो सकता, क्योकि जो सामान्यको ग्रहण करता है उसे दर्शन कहा है। इसलिये चक्षुदर्शन नही बनता ?

समाधान—दर्शन अन्तरग पदार्थको विषय करता है और वह अन्तरंग पदार्थ भी सामान्य-विशेषात्मक होता है।

शंका—तब तो अन्तरग उपयोगको भी दर्शन नही कहा जा सकता, क्योकि उसका विषय भी सामान्यविशेषात्मक माना है ?

समाधान—यहा सामान्यशब्दसे सामान्यविशेषात्मक आत्माका ग्रहण किया है।

शका—सामान्यशब्दसे सामान्यविशेषात्मक आत्माका ग्रहण कैसे किया ?

समाधान—चक्षुइन्द्रियसम्बन्धी क्षयोपशम रूपमे ही नियमित है, क्योकि उससे रूप-विशिष्ट अर्थका ही ग्रहण होता है। उसमे भी वह रूपसामान्यमे ही नियमित है, क्योकि उससे नीलादिकमेसे किसी एक रूपसे विशिष्ट वस्तुकी उपलब्धि नही होती। अत चक्षुइन्द्रियसम्बन्धी क्षयोपशम रूपी पदार्थोके प्रति समान है। और आत्माको छोडकर क्षयोपशम पाया नही जाता इसलिये क्षयोपशमकी अपेक्षा आत्मा भी समान है। उस समान आत्माके भावको सामान्य कहते है और वह दर्शनका विषय है।

शंका—चक्षुइन्द्रियसे जो प्रकाशित होता है उसे चक्षुदर्शन कहते है। किन्तु आत्मा चक्षुइन्द्रियसे प्रकाशित नही होता। चक्षुइन्द्रियसे तो रूपसामान्य और रूपविशेषसे युक्त पदार्थ ही प्रकाशित होता है। परन्तु वह दर्शन नही है, क्योकि पदार्थ उपयोगरूप नही हो सकता। शायद कहा जाये कि पदार्थका उपयोग दर्शन है, किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नही है, क्योकि वह उपयोग ज्ञानरूप है। अत चक्षुदर्शन नही बनता ?

समाधान—यदि चक्षुदर्शन न हो तो चक्षुदर्शनावरण कर्मका अस्तित्व नही बनता। इस लिये चक्षुदर्शन अन्तरग पदार्थको विषय करता है यही मानना उचित है। दूसरे, निद्रानिद्रा आदि कर्म ज्ञानके प्रतिबन्धक नही हैं, क्योकि ज्ञानावरणकर्मके भेदोमे उन्हे नही गिनाया है। वे अन्तरग और बहिरङ्ग पदार्थोंको विषय करनेवाले दोनो उपयोगोके भी प्रतिबन्धक नही है, क्योकि ऐसा माननेपर भी निद्रानिद्रा वगैरहका ज्ञानावरणमे ही अन्तर्भाव होना चाहिये था। निद्रानिद्रा आदि अन्तरग और बहिरग पदार्थोको विषय करनेवाले उपयोग सामान्यके भी प्रतिवन्धक नही है, क्योकि ऐसा माननेपर जागृत अवस्थामे छद्मस्थके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगकी युगपत् प्रवृत्तिका प्रसंग आयेगा। इसलिये यदि दर्शन न हो तो दर्शनावरणीय कर्मका अस्तित्व नही बन सकता। अत अतरग पदार्थको विषय करनेवाले उपयोगका प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्म हैं ऐसा मानना चाहिये।

शङ्का—आत्माको विषय करनेवाले उपयोगको दर्शन मान लेनेपर आत्मामें कोई विशेषता न होनेसे चारो दर्शनोमे भी कोई भेद नही रहेगा ?

समाधान—जो स्वरूपसवेदन जिस ज्ञानका उत्पादक है वह उसका दर्शन कहा जाता है। अत दर्शनके चार भेद होनेका कोई नियम नही है। चक्षु इन्द्रियके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए ज्ञानके विषयभूत जितने पदार्थ होते हैं उतने ही आत्मस्थ क्षयोपशम उस उस नाम वाले होते हैं। उनके निमित्तसे आत्मा भी उतने ही प्रकारका होता है। अत इस प्रकारकी शक्तियोसे युक्त आत्माके सवेदनको दर्शन कहते हैं। यह सब कथन काल्पनिक नही है क्योकि परोपदेशके बिना अनेक शक्तियोसे युक्त आत्माकी वास्तविक उपलब्धि होती है। इसी प्रकार शेष दर्शनोका भी कथन करना चाहिये। कहा भी है—

चक्खूण ज पयासदि दिस्सदि तच्चक्खु-दसण वेंति।
सेसिंदियप्पयासो णादव्वो सो अचक्खु त्ति॥
परमाणुआदियाइ अंतिम खंध ति मुत्तिदव्वाइ।
त ओधिदसणं पुण ज पस्सइ ताइ पच्चक्खं॥
बहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्हि खेत्तम्हि।
लोगालोगअतिमिरा जो केवलदसणुज्जोवो॥

जो चक्षु इन्द्रियके द्वारा प्रकाशित होता है अथवा दिखाई देता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। तथा शेष इन्द्रिय और मनसे जो प्रकाश होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं॥ परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त मूर्त पदार्थोंको जो प्रत्यक्ष देखता है उसे अवधि दर्शन कहते हैं॥ परिमित क्षेत्रको प्रकाशित करनेवाले अनेक प्रकारके बहुतसे प्रकाश हैं। परन्तु जो केवलदर्शनरूपी प्रकाश है वह लोक और अलोकको भी प्रकाशित करता है।

अब चक्षुदर्शनके गुणस्थानोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते है—

चक्खुदसणी चउरिंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति॥१३२॥

चक्षुदर्शन वाले जीव चौइन्द्रियसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं॥ १३२॥

अब अचक्षुदर्शनके स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

अचक्खुदंसणी एइंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥१३३॥

अचक्षुदर्शन वाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३३ ॥

शंका—ज्ञानको ही दो स्वभाव वाला क्यो नही मान लिया जाता ?

समाधान—ज्ञान अपनेसे भिन्न वस्तुको जानता है और दर्शन अपनेसे अभिन्न वस्तुको जानता है। इसलिये इन दोनोमे एकपना नही हो सकता।

शंका—ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति क्यो नही होती ?

समाधान—आवरणकर्मके नष्ट हो जानेपर केवलीके ज्ञान और दर्शन दोनो एक साथ होते हैं।

शंका—केवलीकी तरह छद्मस्थ अवस्थामे भी दोनोकी एक साथ प्रवृत्ति क्यो नही होती ?

समाधान—आवरणकर्मके उदयमे दोनोकी युगपत् प्रवृत्ति करनेकी शक्ति रुक जाती है इसलिये छद्मस्थ जीवोके ज्ञान और दर्शनकी युगपद् प्रवृत्ति नही होती।

शंका—स्वसवेदनसे रहित आत्मा तो कभी भी उपलब्ध नही होता ?

समाधान—जिस समय बहिरग पदार्थोंका उपयोग रहता है उस समय अन्तरंग पदार्थका उपयोग नही पाया जाता।

शङ्का—श्रुतदर्शन क्यो नही कहा ?

समाधान—श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है अत उसे दर्शनपूर्वक माननेमे विरोध आता है। दूसरे, यदि दर्शन बहिरग पदार्थको सामान्य रूपसे विषय करने वाला होता तो श्रुतज्ञान सम्बन्धी दर्शन भी होता, किन्तु ऐसा नही है। अत श्रुतज्ञान दर्शनपूर्वक नही होता ॥

अब अवधिदर्शनके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

ओधिदसणी असजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायछदुमत्था त्ति ॥१३४॥

अवधिदर्शनवाले जीव असयत सम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १३४ ॥

शङ्का—विभग (कुअवधि) दर्शनका अलग निर्देश क्यो नही किया।

समाधान—उसका अन्तर्भाव अवधिदर्शनमे हो जाता है।

शङ्का—तो मनःपर्ययदर्शनको अलगसे कहना चाहिये ?

समाधान—मन पर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है इसलिये मन पर्यय दर्शन नही होता।

अब केवलदर्शनका स्वामी बतलानेके लिये सूत्र कहते है—

केवलदसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धो चेदि ॥१३५॥

केवलदर्शनवाले जीव सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोमे होते हैं ॥ १३५ ॥

शङ्का—केवलज्ञान त्रिकालवर्ती अनन्त बाह्य पदार्थोंको जानता है और दर्शन स्वरूप मात्रको जानता है। अत ये दोनो समान कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्योकी पर्यायोको जाननेसे तत्प्रमाण है। इसलिये ज्ञान और दर्शनमे समानता है।

शङ्का—जीवमे रहनेवाली स्वकीय पर्यायोकी अपेक्षा ज्ञानसे दर्शन बडा है? तब ज्ञानकी दर्शनके साथ समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान—ज्ञान दर्शनात्मक है और दर्शन ज्ञानात्मक है इसलिये दोनो समान हैं। कहा भी है—

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेय लोआलोअ तम्हा णाण तु सव्वगय ॥
एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वावि।
तीदाणागयभूदा तावदिय त हवइ दव्वं ॥

आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। तथा समस्त लोक और अलोक ज्ञेय है। अत ज्ञान सर्वगत है॥ एक द्रव्यमे जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थपर्याय तथा व्यजन-पर्याय होती हैं उतना ही वह द्रव्य होता है॥

अब लेश्याके द्वारा जीव पदार्थका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि ॥ १३६ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले तथा अलेश्यावाले जीव हैं॥ १३६ ॥

शंका—लेश्या किसे कहते हैं ?

समाधान—जो कर्मस्कन्धोसे आत्माको लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं।

शंका—पहले कहा है कि कषायसे अनुरजित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं ?

समाधान—वह अर्थ यहाँ नही ग्रहण करना चाहिये, क्योकि उसके अनुसार सयोगकेवलीके अलेश्यावाले होनेकी आपत्ति आती है।

शका—सयोगकेवलीको लेश्यारहित माननेमे हानि क्या है ?

समाधान—ऐसा माननेपर 'सयोगकेवली शुक्ललेश्यावाले होते हैं' इस वचनका व्याघात होता है।

शङ्का—लेश्या योगको कहते हैं अथवा कषायको कहते हैं अथवा योग और कषाय दोनोको कहते हैं ? प्रथम दो विकल्प तो ठीक नही हैं क्योकि योग अथवा कषायको लेश्या माननेसे उसका अन्तर्भाव योग अथवा कषाय मार्गणामे हो जायेगा। तीसरा विकल्प भी ठीक नही हैं क्योकि योग और कषाय दोनोको लेश्या माननेपर भी लेश्याका उक्त दोनो मार्गणाओमे अथवा किसी एक मार्गणामे अन्तर्भाव हो जाता है। अत लेश्याकी स्वतत्र सत्ता सिद्ध नही होती ?

समाधान—पहले और दूसरे विकल्पमे जो दोष दिये है वे ठीक नही है क्योकि हम लेश्या-को केवल योग अथवा केवल कषायरूप नही मानते। इसी तरह तीसरे विकल्पमे दिया हुआ दोप भी ठीक नही है, क्योकि योग और कपाय इन दोनोका अन्तर्भाव केवल योग अथवा केवल कपायमे नही किया जा सकता। तथा लेश्या दो रूप भी नही है क्योकि कर्मलेपरूप एक कार्यको करनेकी अपेक्षा एकपनेको प्राप्त हुए योग और कपायको लेश्या कहा है। और एकपनेको प्राप्त हुए योग और कषायरूप लेश्याका अन्तर्भाव योग अथवा कषायमे नही किया जा सकता क्योकि दो धर्मोके मेलसे जात्यन्तररूप अवस्थाको प्राप्त हुए एक धर्मका उन दो धर्मोमेसे केवल किसी एक धर्मके साथ एकता अथवा समानता माननेमे विरोध आता है।

शङ्का—लेश्याका कार्य योग और कपायके कार्यसे भिन्न नही है इसलिये लेश्याको योग और कपायसे भिन्न नही माना जा सकता?

समाधान—योग और कषायके लेश्यारूप होनेपर ससारकी वृद्धिरूप उसका कार्य होता है वह कार्य न केवल योगका है और न केवल कपायका है। अत लेश्या उन दोनोसे भिन्न है। कषाय-का उदय छै प्रकारका होता है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम। इन छै कषायोदयोके क्रमसे छै लेश्याएँ होती है—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पीत लेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या। इन लेश्याओका लक्षण इस प्रकार कहा है—

चडो ण मुयदि वैर भडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वस लक्खणमेद तु किण्हस्स॥
मदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य॥
णिद्दा-वचण-वहुलो धणधण्णे होइ तिव्वसण्णो य।
लक्खणमेद भणिय समासदो णीललेस्सस्स॥
रूसदि णिददि अण्णे दूसदि वहुसो य सोयभय-वहुलो।
असुयदि परिभवदि पर पससदि य अप्पय वहुसो॥
ण य पत्तियइ पर सो अप्पाणमिव पर पि मण्णतो।
तूसदि अभित्थुवतो ण य जाणइ हाणि-वड्ढीओ॥
मरण पत्थेइ रणे देदि सुवहुअ हि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ अकज्जकज्ज लक्खणमेद तु काउस्स॥
जाणइ कज्जमकज्ज सेयमसेय च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेद तु तेउस्स॥
चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमइ वहुअ हि।
साहु-गुरु-पूजणिरदो लक्खमेद तु पम्मस्स॥
ण उ कुणइ पक्खवाय ण वि य णिदाण समो य सव्वेसु।
णत्थि य रायद्दोसो णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स॥

तीव्र क्रोधी हो, वैरको न छोडे, लडना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो और किसीके वशमे न आता हो, ये सव कृष्ण लेश्यावालेके लक्षण है॥ जो काम करनेमे मन्द

शङ्का—केवलज्ञान त्रिकालवर्ती अनन्त बाह्य पदार्थोंको जानता है और दर्शन स्वरूप मात्रको जानता है। अत ये दोनो समान कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्योंकी पर्यायोको जाननेसे तत्प्रमाण है। इसलिये ज्ञान और दर्शनमे समानता है।

शङ्का—जीवमे रहनेवाली स्वकीय पर्यायोकी अपेक्षा ज्ञानसे दर्शन बडा है ? तब ज्ञानकी दर्शनके साथ समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान—ज्ञान दर्शनात्मक है और दर्शन ज्ञानात्मक है इसलिये दोनो समान हैं। कहा भी है—

> आदा णाणपमाणं णाण णेयप्पमाणमुद्दिट्ठ।
> णेय लोआलोअ तम्हा णाण तु सव्वगय ॥
> एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वावि।
> तीदाणागयभूदा तावदिय त हवइ दव्व ॥

आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। तथा समस्त लोक और अलोक ज्ञेय है। अत ज्ञान सर्वगत है ॥ एक द्रव्यमे जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थपर्याय तथा व्यजन-पर्याय होती हैं उतना ही वह द्रव्य होता है ॥

अब लेश्याके द्वारा जीव पदार्थका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि ॥ १३६ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले तथा अलेश्यावाले जीव हैं ॥ १३६ ॥

शंका—लेश्या किसे कहते हैं ?

समाधान—जो कर्मस्कन्धोमे आत्माको लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं।

शका—पहले कहा है कि कषायसे अनुरजित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं ?

समाधान—वह अर्थ यहाँ नही ग्रहण करना चाहिये, क्योकि उसके अनुसार सयोगकेवलीके अलेश्यावाले होनेकी आपत्ति आती है।

शका—सयोगकेवलीको लेश्यारहित माननेमे हानि क्या है ?

समाधान—ऐसा माननेपर 'सयोगकेवली शुक्ललेश्यावाले होते हैं' इस वचनका व्याघात होता है।

शङ्का—लेश्या योगको कहते हैं अथवा कषायको कहते हैं अथवा योग और कषाय दोनोको कहते है ? प्रथम दो विकल्प तो ठीक नही हैं क्योकि योग अथवा कषायको लेश्या माननेसे उसका अन्तर्भाव योग अथवा कषाय मार्गणामे हो जायेगा। तीसरा विकल्प भी ठीक नही है क्योकि योग और कषाय दोनोको लेश्या माननेपर भी लेश्याका उक्त दोनो मार्गणाओमे अथवा किसी एक मार्गणामे अन्तर्भाव हो जाता है। अत लेश्याकी स्वतत्र सत्ता सिद्ध नही होती ?

समाधान—पहले और दूसरे विकल्पमे जो दोष दिये हैं वे ठीक नही हैं क्योकि हम लेश्या-को केवल योग अथवा केवल कपायरूप नही मानते। इसी तरह तीसरे विकल्पमे दिया हुआ दोष भी ठीक नही है, क्योकि योग और कपाय इन दोनोका अन्तर्भाव केवल योग अथवा केवल कपायमे नही किया जा सकता। तथा लेश्या दो रूप भी नही है क्योकि कर्मलेपरूप एक कार्यको करनेकी अपेक्षा एकपनेको प्राप्त हुए योग और कषायको लेश्या कहा है। और एकपनेको प्राप्त हुए योग और कपायरूप लेश्याका अन्तर्भाव योग अथवा कपायमे नही किया जा सकता क्योकि दो धर्मोके मेलसे जात्यन्तररूप अवस्थाको प्राप्त हुए एक धर्मका उन दो धर्मोमेसे केवल किसी एक धर्मके साथ एकता अथवा समानता माननेमे विरोध आता है।

शङ्का—लेश्याका कार्य योग और कषायके कार्यसे भिन्न नही है इसलिये लेश्याको योग और कपायसे भिन्न नही माना जा सकता?

समाधान—योग और कपायके लेश्यारूप होनेपर ससारकी वृद्धिरूप उसका कार्य होता है वह कार्य न केवल योगका है और न केवल कपायका है। अत लेश्या उन दोनोसे भिन्न है। कषाय-का उदय छे प्रकारका होता है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम। इन छै कपायोदयोके क्रमसे छै लेश्याएँ होती हैं—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पीत लेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या। इन लेश्याओका लक्षण इस प्रकार कहा है—

चडो ण मुयदि वैर भडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वस लक्खणमेद तु किण्हस्स॥
मदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य॥
णिद्दा-वचण-बहुलो धणधण्णे होइ तिव्वसण्णो य।
लक्खणमेद भणिय समासदो णीललेस्सस्स॥
रूसदि णिददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोयभय-बहुलो।
असुयदि परिभवदि पर पससदि य अप्पय बहुसो॥
ण य पत्तियइ पर सो अप्पाणमिव पर पि मण्णतो।
तूसदि अभित्थुवतो ण य जाणइ हाणि-वड्ढीओ॥
मरण पत्थेइ रणे देदि सुबहुअ हि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ अकज्जकज्ज लक्खणमेद तु काउस्स॥
जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेय च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेद तु तेउस्स॥
चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमइ बहुअ हि।
साहु-गुरु-पूजणिरदो लक्खमेद तु पम्मस्स॥
ण उ कुणइ पक्खवाय ण वि य णिदाण समो य सव्वेसु।
णत्थि य रायद्दोसो णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स॥

तीव्र क्रोधी हो, वैरको न छोडे, लडना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो और किसीके वशमे न आता हो, ये सब कृष्ण लेश्यावालेके लक्षण हैं॥ जो काम करनेमे मन्द

हो, विवेकसे रहित हो, अज्ञानी हो, विषयोमे लम्पट हो, मानी हो, मायाचारी हो, आलसी हो और भीरु हो ।। अति सोनेवाला हो, दूसरोको ठगनेमे चतुर हो, धन और धान्यके विषयमे तीव्र लालसा हो, ये सब सक्षेपसे नील लेश्यावालेके लक्षण कहे हैं ।। जो दूसरोपर क्रोध करता है, दूसरो की निन्दा करता है, दूसरोको दोष लगाता है, शोक और भयसे व्याप्त रहता है, दूसरोकी निन्दा और तिरस्कार करता है और अपनी बहुत प्रशसा करता है, दूसरोका विश्वास नही करता, अपने समान ही दूसरेको भी मानता है, स्तुति करनेवालेपर प्रसन्न होता है, फिर तो हानि लाभको भी परवाह नही करता, युद्धमे मरनेके लिये तैयार रहता है, स्तुति करनेसे खूब धन दे डालता है और कार्य-अकार्यको नही गिनता, ये सब कापोत लेश्याके लक्षण हैं ।। जो कार्य-अकार्यको और सेव्य असेव्यको जानता है, सबको समान रूपसे देखता है, दया और दानमे तत्पर रहता है, और कोमल परिणामी होता है, ये सब तेज लेश्यावालेके लक्षण हैं।। जो त्यागी है, भद्र परिणामी है, निरन्तर कार्य करनेमे तत्पर रहता है, अनेक अपराधोको क्षमा कर देता है, साधुओ और गुरुजनोकी पूजामे रत रहता है ये सब पद्म लेश्या वालेके लक्षण है ।। जो पक्षपात नही करता, निदान नही बाधता, सबके साथ समान व्यवहार करता है, इष्ट और अनिष्ट विषयोमे राग-द्वेष नही करता तथा पुत्र मित्रादिमे स्नेह रहित है, ये सब शुक्ल लेश्या वालेके लक्षण हैं ।। १००-१०८ ।।

शका—अलेश्य किन्हे कहते हैं ?

समाधान—जो छहो लेश्याओसे रहित हैं उन्हे अलेश्य—लेश्यारहित जीव कहते है । कहा भी हैं—

> **किण्हादिलेस्सरहिदा ससारविणिग्गया अणंतसुहा ।**
> **सिद्धिपुरं सपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ॥**

जो कृष्णादि लेश्याओसे रहित है, पञ्च परिवर्तन रूप ससारसे पार हो गये है, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुखको प्राप्त हैं और सिद्धिपुरीको प्राप्त हो गये हैं, उन्हे लेश्यारहित जानना चाहिये ।।१०९।।

अब लेश्याओके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया एइंदियप्पहुडि जाव असजदसम्माइट्ठि त्ति ।।१३७।।

कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्यावाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं ।।१३७।।

शंका—तीनो अशुभ लेश्याएँ चौथे गुणस्थानतक ही क्यो होती हैं ?

समाधान—तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र कषायके उदयका सद्भाव चौथे गुणस्थान तक ही पाया जाता है इसलिये तीनो अशुभ लेश्याएँ वही तक होती हैं ।।

अब पीत और पद्म लेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ।।१३८।।

पीत लेश्या और पद्म लेश्यावाले जीव सज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक होते हैं ॥

शंका—ये दोनो लेश्याएं सातवें गुणस्थान तक क्यो होती हैं ?

समाधान—इन लेश्यावाले जीवोके तीव्रतम आदि कषायोका उदय नही होता ।

अब शुक्ल लेश्याके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते है—

सुक्कलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥१३९॥

शुक्ललेश्यावाले जीव सज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं॥ १३९॥

शङ्का—जिनकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके शुक्ललेश्या कैसे हो सकती है ?

समाधान—जिन जीवोकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके भी कर्मलेपका कारण योग पाया जाता है, इस अपेक्षासे उनके शुक्ललेश्याका सद्भाव माननेमे कोई विरोध नही आता ।

अब लेश्यारहित जीवोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते है—

तेण परमलेस्सिया ॥१४०॥

तेरहवें गुणस्थानसे आगे सभी जीव लेश्यारहित होते हैं ॥ १४० ॥

शंका—तेरहवें गुणस्थानसे आगे सभी जीव लेश्यारहित क्यो होते हैं ?

समाधान—क्योकि वहाँ बन्धके कारणभूत योग और कपायका अभाव है ॥

लेश्यामार्गणाके द्वारा जीवपदार्थको कहकर भव्य और अभव्य मार्गणाके द्वारा जीवोके अस्तित्वका कथन करने लिये सूत्र कहते हैं—

भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ॥ १४१ ॥

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव होते हैं॥ १४१ ॥

शंका—भव्यसिद्ध किन्हे कहते है ?

समाधान—जो आगे सिद्धिको प्राप्त होगे उन्हे भव्यसिद्ध जीव कहते हैं ।

शङ्का—इस तरहसे तो सब भव्यजीवोके सिद्धिको प्राप्त होजानेपर भव्यजीवोकी सन्ततिका उच्छेद हो जायेगा ?

समाधान—भव्यजीव अनन्त होते हैं अतः उनका अन्त नही होता, क्योकि जो राशि सान्त होती है, वह अनन्त नही कही जा सकती ।

शंका—जिस राशिमेसे सदा व्यय होता रहता है, परन्तु उसमे आय नही होती, वह राशि अनन्त कैसे हो सकती है ?

समाधान—यदि व्ययसहित और आयसे रहित राशिको भी अनन्त न माना जायगा तो एकको भी अनन्त माना जा सकेगा । अत व्यय होते हुए भी जिसका क्षय नही होता वही अनन्त है ।

शका—अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल अनन्त होता है फिर भी उसका क्षय देखा जाता है।

समाधान—भव्यराशि और अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल भिन्न-भिन्न कारणोसे अनन्त हैं, किन्तु उन दोनोमे समानता नही है। इसलिये अर्धपुद्गलपरावर्तनरूप काल वास्तवमे अनन्त नही है। इसका खुलासा इसप्रकार है—अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल क्षयसहित होते हुए भी इसलिये अनन्त है कि छद्मस्थ जीवोके द्वारा उसका अन्त नही पाया जाता। किन्तु केवलज्ञान वास्तविक अनन्त है, क्योकि वह अनन्तको जानता है। और जीवराशि निर्मूल नाश न होनेसे अनन्त है। यदि जिसमेसे व्यय होता है उसका सर्वथा क्षय माना जायेगा तो कालका भी सर्वथा क्षय हो जायेगा क्योकि वह भी व्ययसहित है। और कालका सर्वथा क्षय होनेपर दूसरे द्रव्योकी भी स्वलक्षणरूप पर्यायोका अभाव होनेसे समस्त वस्तुओका अभाव हो जायेगा। अत भव्यराशि व्ययसहित होनेपर भी अनन्त है, उसका कभी अन्त नही होता।

शका—जो भव्यजीव कभी मुक्त नही होगे उन्हे भव्य कैसे कहा जा सकता है?

समाधान—मुक्ति प्राप्त करनेकी योग्यताकी अपेक्षा उन्हे भव्य कहा जाता है। जितने भी जीव मुक्ति पानेके योग्य होते हैं वे सब नियमसे कलकरहित होते हैं ऐसा कोई नियम नही है, ऐसा नियम माननेपर स्वर्णपाषाणसे व्यभिचार आता है। अत जैसे जो स्वर्णपाषाण कभी स्वर्णपनेको प्राप्त नही होगा उसे अन्धपाषाण नही कहा जा सकता, क्योकि उसमे स्वर्णपाषाणरूप शक्ति है। वैसे ही जो भव्यजीव कभी मुक्ति प्राप्त नही करेंगे वे योग्यताको अपेक्षा भव्य ही हैं।

जीवराशिका प्रमाण बतलाते हुए कहा है—

> **एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वपमाणदो दिट्ठा।**
> **सिद्धेहि अणतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥**

द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धराशिसे और समस्त अतीतकालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदिया-शरीरमे देखे गये हैं।

शंका—अभव्य किन्हे कहते हैं?

समाधान—जिनमे मुक्ति प्राप्त करनेकी योग्यता नही है उन जीवोको अभव्य कहते हैं। कहा भी है—

> **भविया सिद्धी जेसि जीवाण ते भवति भवसिद्धा।**
> **तव्विवरीवाभव्वा ससारादो ण सिज्झति ॥**

जिन जीवोकी सिद्धि होनेवाली हो अथवा जिनमे वैसी योग्यता हो उन्हे भव्यसिद्ध कहते हैं। और उनसे विपरीत अभव्य होते हैं, जो ससारसे निकलकर कभी भी मुक्ति प्राप्त नही करते।

अब भव्यजीवोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

भवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ १४२ ॥

भव्यसिद्धजीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४२ ॥

अभव्य जीवोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

अभवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति ॥ १४३ ॥

अभव्यसिद्धजीव एकेन्द्रियसे लेकर सज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥ १४३ ॥

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोका अस्तित्व बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी, मिच्छाइट्ठी चेदि ॥१४४॥

सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवादसे सामान्यसे सम्यग्दृष्टी और विशेषसे क्षायिक-सम्यग्दृष्टी, वेदक सम्यग्दृष्टी, उपशमसम्यग्दृष्टी, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं ॥ १४४ ॥

शका—सम्यक्त्वमार्गणामे मिथ्यादृष्टि आदिको क्यो गिनाया ?

समाधान—जैसे आम्रवनके भीतर खडे हुए नीमके वृक्षोकी आम्रवनमे गणना कर ली जाती है वैसे ही मिथ्यात्व आदिकी सम्यक्त्वमे गणना की जाती है। कहा भी है—

छप्पंच णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाण।
आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥
खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेऊ ॥
वयणेहि वि हेऊहि वि इदिय-भय-आणएहि रूवेहि।
वीहच्छ-जुगुच्छाहि ण सो तेलोक्केण चालेज्ज ॥
दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चल-मलिनमगाढ तं वेदयसम्मत्तमिह मुणसु ॥
दसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक-तोय-समं ॥

जिनवर भगवानके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, और नौ पदार्थोंका जिनवर भगवानकी आज्ञा मानकर अथवा समझबूझकर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ॥ दर्शनमोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जानेपर जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है। वह क्षायिक सम्यक्त्व नित्य होता है तथा कर्मोंके क्षपणका कारण है ॥ श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचनो और हेतुओसे, इन्द्रियोको भय उत्पन्न करनेवाले रूपोसे या घृणित पदार्थोंके देखनेसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, अधिक क्या, तीनो लोकोसे भी क्षायिक सम्यग्दर्शन चलायमान नही होता ॥ सम्यक्त्वमोहनीय कर्मके उदयसे पदार्थोंका जो चल, मलिन और अगाढरूप श्रद्धान होता है उसे वेदक सम्यक्त्व जानो ॥ दर्शनमोहनीय कर्मके उपशममे कीचडके नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलके समान पदार्थोंका जो निर्मल श्रद्धान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन है ॥

सामान्य सम्यग्दर्शन तथा क्षयिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्माइट्ठी खइय-सम्माइट्ठी असंजद-सम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ॥ १४५ ॥

सामान्यसे सम्यग्दृष्टि और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव असयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं ॥ १४५ ॥

उपशम सम्यग्दृष्टि जीव असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतराग छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ।।१४७।।

अब सासादनसम्यक्त्व आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले गुणस्थानोका कथन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेय सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे ।।१४८।।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे ही होते हैं ।।१४८।।

सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे ।।१४९।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यगमिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे ही होते है ।।१४९।।

मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति ।।१५०।।

मिथ्यादृष्टी जीव एकेन्द्रियसे लेकर सज्ञी मिथ्यादृष्टि तक होते है ।।१५०।।

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओमे निरूपण करनेके लिए सूत्र कहते है—

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असजदसम्माइट्ठि त्ति ।।१५१।।

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवाले होते हैं ।।१५१।।

शंका—गतिमार्गणाका कथन करते समय यह बतला आये हैं कि इस गतिमे इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नही होते। अत इस सूत्रको कहना अनावश्यक है। तथा सम्यग्दर्शनका कथन करते समय गुणस्थानोके कथनका अवसर भी नही है ?

समाधान—जो शिष्य पूर्वोक्त कथनको भूल गया हो उसके लिये उस अर्थका पुन स्मरण कराकर उन उन गतियोमे सम्यग्दर्शनके भेदोका कथन करनेके लिये इस सूत्रका कथन किया है ।।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ।।१५२।।

इसी प्रकार सातो पृथिवियोमे प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ।।१५२।।

अब सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसम सम्माइट्ठी चेदि ।।१५३।।

नारकी जीव असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि होते हैं ।।१५३।।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ।।१५४।।

इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमे नारकी जीव होते है ।।१५४।।

शंका—सामान्य सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है ?

समाधान—तीनो ही सम्यग्दर्शनोमे जो साधारण धर्म पाया जाता है वही सामान्य सम्यग्दर्शनसे विवक्षित है ।

शंका—क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शन तो परस्परमे भिन्न हैं, उनमे सदृशता कैसी ?

समाधान—यथार्थ श्रद्धानकी अपेक्षा उन तीनोमे समानता पाई जाती है ।

शङ्का—क्षय, क्षयोपशम और उपशमसे विशिष्ट यथार्थ श्रद्धानोमे समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान—क्षय, क्षयोपशम और उपशम विशेषणोमे भेद होनेपर भी यथार्थ श्रद्धानरूप विशेष्यमे भेद नही पडता ।

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोको बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

वेदगसम्माइट्ठी असजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ॥१४६॥

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थानतक होते हैं ॥ १४६ ॥

शङ्का—ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोमे वेदकसम्यग्दर्शन क्यो नही होता ?

समाधान—क्योकि अगाढ आदि मलसे सहित श्रद्धानके साथ क्षपक और उपशम श्रेणिपर नही चढा जा सकता ।

शंका—वेदकसम्यक्त्वसे औपशमिक सम्यक्त्व कैसे बडा है ?

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुई शिथिलता वगैरह औपशमिक सम्यग्दर्शनमे नही पाई जाती, इसलिये वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिकसम्यग्दर्शन बडा है ।

शका—इसे वेदकसम्यग्दर्शन क्यो कहते हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वमोहनीयकर्मके उदयका वेदन करने वाले जीवको वेदक कहते हैं उसके जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

शंका—जिनके दर्शनमोहनीयकर्मका उदय वर्तमान है उनके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ?

समाधान—दर्शनमोहनीयकर्मकी सम्यक्त्वमोहनीयनामक देशघाति प्रकृतिकाउदय होते हुए भी जीवके स्वभाव रूप श्रद्धानका एकदेश रहनेमे कोई विरोध नही है ।

शका—दर्शनमोहनीयकी देशघातिप्रकृतिको सम्यक्त्वप्रकृति क्यो कहा जाता है ?

समाधान—सम्यक्त्वप्रकृति सम्यग्दर्शनकी सहचारी है इसलिये उसे सम्यक्त्वप्रकृति कहते हैं ।

अब औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थान कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव उवसतकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥१४७॥

उपशम सम्यग्दृष्टि जीव असयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतराग छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥१४७॥

अब सासादनसम्यक्त्व आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले गुणस्थानोका कथन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं—

सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेय सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे ॥१४८॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे ही होते हैं ॥१४८॥

सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे ॥१४९॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे ही होते हैं ॥१४९॥

मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति ॥१५०॥

मिथ्यादृष्टी जीव एकेन्द्रियसे लेकर सज्ञी मिथ्यादृष्टि तक होते हैं ॥१५०॥

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओमे निरूपण करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

णेरइया अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति ॥१५१॥

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवाले होते हैं ॥१५१॥

शंका—गतिमार्गणाका कथन करते समय यह बतला आये हैं कि इस गतिमे इतने गुणस्थान होते हैं और इतने नही होते। अत इस सूत्रको कहना अनावश्यक है। तथा सम्यग्दर्शनका कथन करते समय गुणस्थानोके कथनका अवसर भी नही है ?

समाधान—जो शिष्य पूर्वोक्त कथनको भूल गया हो उसके लिये उस अर्थका पुन स्मरण कराकर उन उन गतियोमे सम्यग्दर्शनके भेदोका कथन करनेके लिये इस सूत्रका कथन किया है ॥

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥१५२॥

इसी प्रकार सातो पृथिवियोमे प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ॥१५२॥

अब सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

णेरइया असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसम सम्माइट्ठी चेदि ॥१५३॥

नारकी जीव असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१५३॥

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥१५४॥

इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमे नारकी जीव होते हैं ॥१५४॥

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥१५५॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक नारकी जीव असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि नही होते, शेष दो सम्यग्दर्शनोसे युक्त होते हैं ॥१५५॥

शका—सात प्रकृतियोके क्षय हो जानेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव दूसरी आदि पृथिवियोमे क्यो उत्पन्न नही होते ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव दूसरी आदि पृथिवियोमे उत्पन्न नही होते ।

शका—दूसरी आदि पृथिवियोके नारकी सात प्रकृतियोका क्षय करके क्षायिकसम्यक्त्वको क्यो नही प्राप्त करते ?

समाधान—वहा जिनदेवका अभाव है और सात प्रकृतियोमेसे मिथ्यात्वके क्षयका आरम्भ जिनदेवके पादमूलमे ही होता है ।

अब तिर्यञ्च गतिमे कथन करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजदासंजदा त्ति ॥१५६॥

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यक्मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि और सयता-सयत गुणस्थानवाले होते हैं ॥१५६॥

शंका—शरीरसे सन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण जिन्होने आहारका त्यागकर दिया है ऐसे तिर्यञ्चोके सयम क्यो नही होता ?

समाधान—तिर्यञ्चोके अन्तरगमे सकलनिवृत्ति नही है ।

शंका—उनके अन्तरगमे सकलनिवृत्तिका अभाव क्यो है ?

समाधान—तिर्यञ्च जातिमे सयम नही होता, यह नियम है ।

एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु ॥१५७॥

इसी प्रकार सब द्वीप और सब समुद्रोमे रहनेवाले तिर्यञ्चोके समझना चाहिये ॥१५७॥

शका—मानुषोत्तर पर्वतसे आगे स्वयभूरमणद्वीपमे स्थित स्वयप्रभ पर्वतके इस ओर तक असख्यात द्वीपो और समुद्रोमे भोगभूमिके समान स्थिति होनेसे वहां देशव्रती तिर्यञ्च नही पाये जाते । इसलिये इस सूत्रका कथन घटित नही होता ।

समाधान—पूर्व वैरके सम्बन्धसे देवो अथवा दानवोंके द्वारा कर्मभूमिसे उठाकर डाले गये कर्मभूमिया तिर्यञ्चोका सब द्वीपो और समुद्रोमे सद्भाव पाया जाता है अत सब द्वीपो और समुद्रोमे तिर्यञ्चोके पांच गुणस्थान बतलाये हैं ॥

अब तिर्यञ्चोमे सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१५८॥

तिर्यञ्च असयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशम-सम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १५८ ॥

तिरिक्खा संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि ॥१५९॥

तिर्यञ्च सयतासयतगुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी नही होते, शेष दो सम्यग्दर्शनोसे युक्त होते हैं ॥ १५९ ॥

शंका—तिर्यञ्चोमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव संयतासयत क्यो नही होते ?

समाधान—यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव मरकर तिर्यञ्चोमे उत्पन्न होते है तो भोगभूमिया तिर्यञ्चोमे ही उत्पन्न होते हैं। और भोगभूमिमे उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रत नही होते, क्योकि वहाँ अणुव्रतके होनेमे आगमसे विरोध है ॥

एवं पचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता ॥ १६० ॥

इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च होते है ॥ १६० ॥

पचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥ १६१ ॥

योनिमती पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे असयतसम्यग्दृष्टी और सयतासंयत गुणस्थानमे क्षायिक-सम्यग्दर्शनवाले तिर्यञ्च नही होते, शेष दो सम्यग्दर्शनवाले होते हैं ॥ १६१ ॥

शंका—ऐसा क्यो होता है ?

समाधान—योनिमती पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव मरकर उत्पन्न नही होते और जो वहाँ उत्पन्न होते हैं उनके दर्शनमोहनीयका क्षय नही होता। इसलिये वहाँ क्षायिक-सम्यग्दर्शन नही पाया जाता ॥

अब मनुष्योमे कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुस्सा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असजदसम्माइट्ठी संजदासजदा संजदा त्ति ॥१६२॥

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टी, सम्यक्मिथ्यादृष्टी, असयतसम्यग्दृष्टी, सयतासयत और सयत होते हैं ॥ १६२ ॥

एवमड्ढाइज्जदीवसमुद्देसु ॥१६३॥

इसी प्रकार ढाई द्वीप और दो समुद्रोमे जानना चाहिये ॥ १६३ ॥

शङ्का—वैरके सम्बन्धसे उठाकर डाले गये संयत और सयतासयत मनुष्योका सब द्वीप-समुद्रोमे सद्भाव होना चाहिये।

समाधान—नही, क्योकि मानुषोत्तर पर्वतसे परे देवोके प्रयत्नसे भी मनुष्योका गमन नही हो सकता ॥

अब मनुष्योमे सम्यग्दर्शनका विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मणुसा असंजदसम्माइट्ठि-सजदासजद-संजदट्ठाणे अत्थि खइयसम्म-इट्ठी वेदय-सम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१६४॥

मनुष्य असयतसम्यग्दृष्टी, सयतासयत और सयतगुणस्थानोमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी वेदक-सम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हे ॥ १६४ ॥

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ॥ १६५ ॥

इसीप्रकार पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिणियोमे जानना चाहिये ॥ १६५ ॥

अब देवोमे विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असजदसम्माइट्ठि त्ति ॥ १६६ ॥

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टो, सम्यक्मिथ्यादृष्टी और असयतसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥ १६६ ॥

एवं जाव उवरिम-उवरिमगेवेज्जविमाणवासिय देवा त्ति ॥ १६७ ॥

इसीप्रकार उपरिम ग्रैवेयकके उपरिम पटलतकके देव जानना चाहिये ॥ १६७ ॥

देवा असजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसम-सम्माइट्ठि त्ति ॥ १६८ ॥

देव असयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १६८ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा देवीओ च सोधम्मीसाणकप्पवासिय-देवीओ च असजदसम्माइट्ठिट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥१६९॥

भवनवासी, वानव्यन्तर, और ज्योतिषी देव, उनकी देवियाँ तथा सौधर्म और ईशान कल्प-वासी देवियाँ असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि नही होते। शेषके दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं अथवा होती है ॥ १६९ ॥

शङ्का—क्षायिकसम्यग्दृष्टि उक्त स्थानोमे क्यो नही होते ?

समाधान—देवोमे दर्शनमोहनीयका क्षपण नही होता। दूसरे जिन जीवोने दर्शनमोह-नीयका क्षय कर दिया है उनकी भवनवासी आदि अधम देवोमे तथा सब देवियोमे उत्पत्ति नही होती।

शंका—शेष दो सम्यग्दर्शन उक्त स्थानोमे कैसे होते हैं ?

समाधान—उक्त स्थानोमे उत्पन्न हुए जीवोके वादको सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है इसलिये शेष दो सम्यग्दर्शनोका वहाँ सद्भाव पाया जाता है।

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा असंजद-सम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१७०॥

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकके उपरिम भाग तकके देव असंयत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १७० ॥

शंका—ऐसा कैसे होता है ?

समाधान—उक्त देवोमे तीनो ही प्रकारके सम्यग्दर्शनोंके साथ जीवोकी उत्पत्ति देखी जाती है तथा वहाँ उत्पन्न होनेके पश्चात् जीव वेदक और औपशमिक सम्यग्दर्शनको उत्पन्न कर सकता है इसलिये उक्त देवोमे तीनो सम्यग्दर्शनोका सद्भाव उचित ही है।

अव शेष देवोमे सम्यग्दर्शनके भेद वतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयत-जयंतावराजिद - सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥१७१॥

नौ अनुदिशोमे तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तरोमे रहनेवाले देव असयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टी, वेदकसम्यग्दृष्टी और उपशमसम्यग्दृष्टी होते हैं ॥ १७१ ॥

शंका—उक्त देवोमे औपशमिक सम्यग्दर्शनका सद्भाव कैसे पाया जा सकता है, क्योकि उनमे क्षायिक और क्षायोशमिक सम्मग्दृष्टी ही उत्पन्न होते हैं और क्षायिक तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पूर्वक औपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नही होती। तथा जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं वे वहाँ उत्पन्न नही होते, क्योकि ऐसे उपशमसम्यग्दृष्टियोका उपशम सम्यक्त्वके साथ मरण नही होता ?

समाधान—उपशमश्रेणी पर चढे हुए और चढकर उतरे हुए उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोकी अनुदिश और अनुत्तरोमे उत्पत्ति होती है, इसलिये वहां उपशम सम्यक्त्वके सद्भावमे कोई विरोध नही है।

शंका—अन्य उपशमसम्यग्दृष्टियोकी तरह उपशमश्रेणीपर चढे हुए उपशमसम्यग्दृष्टी जीव भी नही मरते, क्योकि वे उपशमसम्यग्दर्शनसे युक्त होते हैं।

समाधान—साधारण उपशमसम्यग्दृष्टियो और उपशमश्रेणीपर चढे हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोमे वहुत अन्तर है। प्रथम उपशमसम्यक्त्व मिथ्यात्वपूर्वक होता है जवकि दूसरा उपशम सम्यक्त्व सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होता है। प्रथम उपशमसम्यक्त्वमे चारित्रमोहनीयका उपशम नही

होता। किन्तु दूसरे उपशमसम्यक्त्वमे चारित्रमोहनीयका उपशम होता है। अत· प्रथमका धर्म दूसरे पर लागू नही किया जा सकता।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा जीवपदार्थको कहकर अब सञ्ज्ञी मार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥१७२॥

सञ्ज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असञ्ज्ञी जीव होते हैं ॥ १७२ ॥

अब सञ्ज्ञियोके गुणस्थान कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सण्णी मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति ॥१७३॥

सञ्ज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं ॥ १७३ ॥

शंका—मन सहित होनेसे सयोग केवली सञ्ज्ञी क्यो नही हैं ?

समाधान—उनके आवरणकर्म नष्ट हो गये हैं इसलिये वे मनकी सहायतासे बाह्य पदार्थोको नही जानते। अत उन्हे सञ्ज्ञी नही कहा जा सकता।

शंका—तो केवलीको असञ्ज्ञी कहना चाहिये ?

समाधान—जिन्होने समस्त पदार्थोका साक्षात्कार कर लिया है उन्हे असञ्ज्ञी नही माना जा सकता।

शङ्का—केवली असञ्ज्ञी होते हैं, क्योकि वे विकलेन्द्रियोकी तरह मनकी सहायताके विना ही बाह्य पदार्थोको जानते हैं ?

समाधान—यदि मनकी अपेक्षा न लेकर ज्ञानकी उत्पत्ति होना मात्र ही असञ्ज्ञीपनेमे कारण होता तो केवलीको असञ्ज्ञी कहा जा सकता था। किन्तु ऐसा नही है। अत केवली न सञ्ज्ञी हैं और न असंज्ञी हैं।

अब असञ्ज्ञी जीवोके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

असण्णी एइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति ॥१७४॥

असञ्ज्ञी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं ॥ १७४ ॥

अब आहारमार्गणाके द्वारा जीवोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥१७५॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ॥ १७५ ॥

अब आहार मार्गणामे गुणस्थानोका कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आहारा एइंदियप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ॥१७६॥

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होते है ॥ १७६ ॥

शका—यहाँ आहारसे कौन-सा आहार ग्रहण किया है ?

समाधान—यहाँ आहारशब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसिक आहार और कर्माहारको छोडकर नोकर्म आहारका ग्रहण किया है ।

अब अनाहारक जीवोके गुणस्थान कहनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥१७७॥

विग्रहगतिमे स्थित मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टी तथा समुद्घातगत सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध अनाहारक होते हैं ॥ १७७ ॥

शंका—उक्त जीव अनाहारक क्यो होते हैं ?

समाधान—ये जीव शरीरके योग्य पुद्गलोको ग्रहण नही करते, इसलिये अनाहारक होते हैं ।

●

षट्खण्डागमके शेष भागोंमें आगत
कुछ स्वाध्यायोपयोगी चर्चाएँ

णमो जिणाणं ।

अप्रकृतका निवारण करते हुए प्रकृत अर्थका निरूपण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है। वह इस प्रकार है—नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे जिनके चार प्रकार हैं। 'जिन' शब्द नामजिन है। स्थापनाजिन सद्भाव स्थापना, और असद्भाव स्थापनाके भेदसे दो प्रकार है। जिन भगवानके आकाररूपसे स्थित द्रव्य सद्भावस्थापनाजिन है। जिनाकारसे रहित जिस द्रव्यमे जिन भगवानकी स्थापना की जाय वह असद्भावस्थापनाजिन है। द्रव्यजिन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। जिनप्राभृतका जानकार किन्तु उसमे अनुपयुक्त जीव आगमद्रव्यजिन है। नोआगमद्रव्यजिन ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है।

शङ्का—अचेतन भूत, भावि और वर्तमान शरीरोको 'जिन' संज्ञा कैसे सभव है ?

समाधान—जिनाधाररूप पर्यायसे अतीत, अनागत और वर्तमान शरीरोको द्रव्यजिन मानने-मे कोई विरोध नही है ?

भविष्यकालमे जिनपर्यायसे परिणमन करनेवाला भाविद्रव्यजिन है।

शंका—भविष्यकालमे जिनप्राभृतको जाननेवाले व भूतकालमे जानकर विस्मरणको प्राप्त हुए जीवको नोआगमभावीजिन क्यो नही स्वीकार करते ?

समाधान—नही, क्योकि आगमसस्कार पर्यायका आधार होनेसे अतीत, अनागत व वर्तमान आगमद्रव्यके नोआगमद्रव्यपना होनेमे विरोध है।

आगम और नोआगमके भेदसे भावजिन दो प्रकार है। जिन प्राभृतका जानकार तथा उसमे उपयुक्त जीव आगमभावजिन है। नोआगम सहित उपयुक्त और तत्परिणतके भेदसे दो प्रकार है। जिन स्वरूपको ग्रहण करनेवाले ज्ञानसे परिणत जीव उपयुक्त भावजिन है। जिनपर्यायसे परिणत जीव तत्परिणत भावजिन है।

शंका—इन जिनोमेसे यहाँ किसको नमस्कार किया है ?

समाधान—तत्परिणतभावजिन और स्थापनाजिनको यहाँ नमस्कार किया है।

शंका—अनन्तज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और क्षायिक सम्यक्त्वादिगुणोसे परिणत जिनको भले ही नमस्कार किया जाये, क्योकि उनमे देवत्व पाया जाता है किन्तु जिनगुणसे रहित स्थापना-को नमस्कार करना ठीक नही है क्योकि उसमे विघ्न उत्पन्न करनेवाले कर्मोंको विनाश करनेकी शक्ति नही है ?

समाधान—जिनदेव अपनी वन्दना करनेवाले जीवोके ही पापनाशक नही हैं क्योकि ऐसी अवस्थामे उनमे वीतरागताके अभावका प्रसंग आता है। न वे सभी जीवोके पापनाशक हैं क्योकि ऐसा होनेपर जिननमस्कारको विफलताका प्रसग आता है। पारिशेषसे जिनपरिणत भाव और

जिनगुणपरिणामको पापनाशक मानना चाहिये क्योकि उसके बिना कर्मोंका क्षय नही होता। वह जिनगुणपरिणाम भावजिनेन्द्रके समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और सम्यक्त्वादि गुणोके अध्यारोपसे युक्त स्थापनासे भी उत्पन्न होता है, इसी कारण जिनेन्द्रनमस्कारके समान स्थापना-जिननमस्कार भी पापनाशक है।

शका—नामजिन, द्रव्यजिन और नोआगमउपयुक्तभावजिनको नमस्कार क्यो नही करते ?

समाधान—क्योकि उनमे जिनत्वका और स्थापनाजिनत्वका अभाव है।

शङ्का—यदि ऐसा है तो तीन कालोसे विशेषित मुनि व जिनका शरीर एव ऊर्जयन्त, चम्पापुर, पावापुर आदिको नमस्कार करना निष्फल होगा ?

समाधान—ऐसी शका नही करना चाहिये, क्योकि उनके सद्भावस्थापना या असद्भाव-स्थापनाके अन्तर्गत होनेसे नमस्कारकी निष्फलताका विरोध है। सद्भावस्थापनानमस्कार और असद्भावस्थापनानमस्कारके फलवान् होनेपर स्थापनाजिनपनेको प्राप्त सबोको किया गया नमस्कार फलवान होता है। उक्त सूत्रके द्वारा पाचो गुरुओ व उनकी स्थापनाओको भी नमस्कार किया गया है। वह इस प्रकार है—सकलजिन और देशजिनके भेदसे जिन दो प्रकार हैं। जो घातियाकर्मोंका क्षय कर चुके वे सकलजिन हैं—अरहन्त और सिद्ध। शेष आचार्य, उपाध्याय और साधु तीव्रकषाय, इन्द्रिय एव मोहको जीत लेनेके कारण देशजिन हैं।

शंका—सकलजिनका नमस्कार पापनाशक भले ही हो, क्योकि उनमे सब गुण पाये जाते हैं। किन्तु देशजिनोको किया गया नमस्कार पापनाशक नही हो सकता, क्योकि उनमे वे सब गुण नही पाये जाते ?

समाधान—नही, क्योकि सकलजिनोके समान देशजिनोमे भी तीन रत्न पाये जाते हैं। और तीन रत्नोके सिवाय सकलजिनमे देवत्वके कारणभूत अन्य कोई गुण नही है। इसलिये सकलजिनोंके समान देशजिनोका नमस्कार भी कर्मोंका क्षयकारक है।

शका—सकलजिनो और देशजिनोमे स्थित तीन रत्नोमे समानता नही हो सकती क्योकि सम्पूर्ण और असम्पूर्ण कैसे समान हो सकते है ? अत सम्पूर्ण रत्नत्रयका काम असम्पूर्ण रत्नत्रय नही कर सकते ?

समाधान—असमानोका कार्य असमान ही हो ऐसा कोई नियम नही है। सम्पूर्ण अग्निके द्वारा किया जानेवाला दाहकार्य उसका अवयव भी कर सकता है। इसके सिवाय देशजिनोमे स्थित तीन रत्नोका सकल जिनोमे स्थित रत्नत्रयसे कोई भेद नही है क्योकि बाह्य और अभ्यन्तर समस्त अर्थोसे प्रतिबद्धपनेकी अपेक्षा उनमे समानता पाई जाती है। आविर्भाव और अनाविर्भाव से किया गया भेद उनकी स्वरूपतासे समानताका विनाशक नही है क्योकि प्रकट हुए सूर्यमण्डल और अप्रकट सूर्यमण्डलमे सूर्यमण्डलपनेकी अपेक्षा समानता पाई जाती है।

[धवला, पु ९, २-१२]

णमो चोद्दसपुव्वियाणं ॥

समस्त श्रुतज्ञानके धारक चौदह पूर्वी कहे जाते हैं। उन चौदहपूर्वी जिनोको नमस्कार हो॥

शंका—चौदह पूर्वका ही नाम निदश करके किसलिये नमस्कार किया है ?

समाधान—क्योंकि विद्यानुवादकी समाप्तिके समान चौदह पूर्वकी समाप्तिमे भी जिन वचनपर विश्वास देखा जाता है। चौदह पूर्वोंको समाप्त करके रात्रिमे कायोत्सर्गसे स्थित साधुकी प्रभात समयमे भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव पूजा करते हैं।

शंका—जिनवचन होनेसे सभी अग और पूर्व समान हैं अत उन सभीका नाम लेकर नमस्कार क्यो नही किया ?

समाधान—इस दृष्टिसे समानता होनेपर भी विद्यानुवाद और लोकविन्दुसारका महत्व है क्योकि इनको लेकर ही देवपूजा पाई जाती है। तथा चौदह पूर्वका धारक मिथ्यात्वको प्राप्त नही होता और उस भवमे असयमको भी प्राप्त नही होता।

शङ्का—ज्ञानसे विशिष्ट जिनोको पहले नमस्कार क्यो किया ?

समाधान—चारित्रकी अपेक्षा ज्ञानकी प्रधानता बतलानेके लिये ज्ञान विशिष्ट जिनोको पहले नमस्कार किया है।

शङ्का—चारित्रसे ज्ञानकी प्रधानता क्यो है ?

समाधान—ज्ञानके बिना चारित्र नही होता, अतः ज्ञान प्रधान है।

[धवला, पु ९, सूत्र १४–१५]

क्रियाकर्म

तमादाहीण पदाहिण तिक्खुत्तं तियोणद चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरिया-कम्मं णाम ॥ २८ ॥

आत्माधीन होना आदिके भेदसे क्रियाकर्म छह प्रकार है। प्रथम, क्रियाकर्म करते समय आत्माधीन होना चाहिये, क्योकि पराधीन भावसे क्रियाकर्म करनेवालेके कर्मक्षय नही होता। बल्कि जिनदेवकी आसादना होनेसे कर्मबन्ध होता है। वन्दना करते समय गुरु, जिन और जिन-गृहकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदिका तीनवार करना 'तिक्खुत्त' है। अथवा एक ही दिनमे जिन, गुरु और ऋषियोकी वन्दना तीन बार की जाती है इसलिये इसे तिक्खुत्तं कहा है। 'ओणद' का अर्थ भूमिमे बैठना है। यह तीन बार किया जाता है। यथा—शुद्ध मन हो, पैर धोकर जिनेन्द्रके दर्शनसे उत्पन्न हुए हर्षसे पुलकित वदन होकर जिनदेवके आगे बैठना यह प्रथम बैठना है। तथा उठकर जिनेन्द्र आदिके सामने विज्ञप्तिकर बैठना यह दूसरा बैठना है। फिर उठकर सामायिक दण्डकके द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषायके साथ शरीरका उत्सर्गकरके जिनेन्द्र देवके अनन्त गुणोका ध्यान करके, चौंबीस तीर्थंकरोकी वन्दना करके फिर जिन, जिनालय और गुरुकी स्तुति करके भूमिमे बैठना यह तीसरा बैठना है। इस प्रकार एक एक क्रियाकर्म करते हुए समय तीन अवनति होती है। सब क्रिया कर्म चतु शिर होता है। यथा—सामायिकके आदिमे जो जिनेन्द्रदेवको सिर नवाना वह एक सिर है। उसीके अन्तसे सिर नवाना यह दूसरा सिर है। थोस्सामि दण्डकके आदिमे जो सिर नवाना है वह तीसरा सिर है। तथा उसीके अन्तमे जो नमस्कार करना यह चौथा सिर है।

इस प्रकार एक क्रियाकर्म चतु सिर होता है। इसके सिवाय भी नमस्कार करनेका कोई निषेध नही है। अथवा सभी क्रिया कर्म चतु:शिर अर्थात् चतु: प्रधान होता है क्योकि अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्मको प्रधान करके सब क्रिया कर्मोकी प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और 'थोस्सामि' दण्डक के आदि और अन्तमे मन, वचन, कायकी विशुद्धिके परावर्तनके बार बारह होते हैं। इसलिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्तसे युक्त कहा है। यह सब क्रिया कर्म है। (धवला, पु १३, पृ० ८८-९०)

सम्यग्दर्शन

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि ॥ ३ ॥

इन ही सब कर्मोकी जब अन्त कोडाकोडी स्थितिको बाधता है तब यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है॥ ३ ॥

इस सूत्रके द्वारा क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि ये चारो लब्धिया कही गई हैं। पूर्व संचित कर्मोके मलपटलके अनुभाग स्पर्द्धक जिस समय विशुद्धिके द्वारा प्रति समय अनन्तगुणहीन होते हुए उदीरणाको प्राप्त होते है उस समय क्षयोपशमलब्धि होती है। प्रतिसमय अनन्त गुणित हीन क्रमसे उदीरित अनुभाग स्पर्धकोसे उत्पन्न हुआ, साता आदि शुभकर्मो के बन्धका निमित्तभूत और असाता आदि अशुभकर्मोका विरोधी जो जीवका परिणाम है उसे विशुद्धि कहते हैं उसकी प्राप्तिका नाम विशुद्धिलब्धि है। छहो द्रव्य और नौ पदार्थोके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे परिणत आचार्य आदिकी लब्धिको और उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण और विचारणाकी शक्तिके समागमको देशनालब्धि कहते है। सब कर्मोकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागको घातकर अन्त कोडाकोडी स्थितिमे और द्वि स्थानीय अनुभागमे स्थित करनेको प्रायोग्य लब्धि कहते हैं, क्योकि इनके होनेपर करणलब्धिके योग्य भाव पाये जाते हैं।

शका—सूत्रमे तो केवल काल लब्धिकी ही प्ररूपणाकी गई है उसमे इन शेष लब्धियोका होना कैसे सम्भव है ?

समाधान—नही, क्योकि प्रति समय अनन्त गुनहीन अनुभागकी उदीरणाका अनन्त गुणित क्रम द्वारा वर्धमान विशुद्धिका और आचार्यके उपदेशकी प्राप्तिका काललब्धिमे होना सम्भव है।

ये चारो लब्धिया भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवोमे होती है।

सो पुण पचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो ॥ ४ ॥

वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय, सज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है ॥४॥

सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अथवा चौन्द्रिय नही होता उनमे सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके परिणाम नही होते। पञ्चेन्द्रियोमे भी वह असज्ञी नही होता, क्योकि असंज्ञी जीवोमे मनके बिना विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नही होती। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नही प्राप्त करते क्योकि इन जीवोके भी उस रूप परिणमन करनेकी शक्ति नही है। उपशमश्रेणीपर चढनेवाले वेदक

सम्यग्यदृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं किन्तु उस सम्यक्त्वका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व नही है। उपशमश्रेणीवाला उपशमसम्यक्त्व सम्यक्त्वपूर्वक ही होता है अत प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिये। वह देव, मनुष्य, तिर्यञ्च या नारकी भी हो सकता है। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी या नपुसकवेदी हो, किन्तु हीयमान कषायवाला होना चाहिये, असयमी हो, साकार उपयोगसे युक्त हो क्योकि अनाकार उपयोगकी बाह्य अर्थमे प्रवृत्ति नही होती। अशुभ लेश्या हो तो हीयमान होना चाहिये। आयुकर्मको छोडकर शेष सात कर्मोंकी अन्त कोडाकोडी प्रमाण स्थिति सत्त्ववाला हो।

सूत्रमे सर्वविशुद्ध कहा है। अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके अध प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारकी विशुद्धिया होती है। उपरितन समयवर्ती परिणाम अधस्तन समयवर्ती परिणामोसे समान भी होते हैं इसलिये अध-प्रवृत्त नाम सार्थक है। करण नाम परिणामका है। अपूर्व जो करण होते हैं उन्हे अपूर्वकरण कहते हैं अर्थात् अपूर्वकरण कालके विभिन्न समयवर्ती परिणामोमे समानता नही होती, जैसा कि अध प्रवृत्तमे होती है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसमे एक समयमे एक ही परिणाम होता है अत यहा एक समयमे अनेक परिणाम न होनेसे जघन्य उत्कृष्ट रूप भेद नही है। एक समयमे वर्तमान जीवोके परिणामोकी अपेक्षा निवृत्ति या भिन्नता न होनेसे इसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जाधे अतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि सखेज्जेहि सागरोवम-सहस्सेहि ऊणिय ताधे पठमसम्मत्तमुप्पादेदि ॥५॥

जिस समय इन सब ही कर्मोंकी सख्यात हजार सागरोपमसे हीन अत कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थितिको स्थापित करता है उस समय यह जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ॥ ५ ॥

पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्टेदि ॥६॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्तकाल तक हटाता है ॥ ६ ॥

यह सूत्र अन्तरकरणका कथन करता है। अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीव अनिवृत्तिकरणके कालमे सख्यात भाग जाकर मिथ्यात्व कर्मका अन्तर करता है। अन्तरके लिये उकेरे गये प्रदेशाग्रको उस समय वन्धनेवाले मिथ्यात्व कर्ममे-उसकी आवाधाकाल हीन द्वितीय स्थितिमे और प्रथम स्थितिमे स्थापित करता है किन्तु अन्तर काल स्थितियोमे नही। अन्तरकरणसे नीचेकी स्थितिको प्रथम स्थिति और ऊपरकी स्थितिको द्वितीय स्थिति कहते हैं। इस प्रकार अन्तर-करण किया जाता है उसके समाप्त होनेके समयसे वह जीव उपशामक कहलाता है।

शङ्का—यदि ऐसा है तो उसमे पूर्व अर्थात् अध करणादिके प्रारम्भसे लेकर अन्तरकरण होने तक उसे उपशामक नही कहा जायेगा ?

समाधान—अन्तरकरण होनेसे पूर्व भी वह जीव उपशामक ही है।

ओहट्टेदूण मिच्छत्त तिण्णि भागं करेदि सम्मत्त मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं ॥७॥

अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकर्मके तीन भाग करता हैं—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व ॥ ७ ॥

इस सूत्रके द्वारा मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको गलाकर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर उपरिम कालमे जो कार्य होता है उसका कथन किया है। 'अन्तरकरण करके' इस पदके द्वारा पहलेसे ही स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा घातको प्राप्त मिथ्यात्वकर्मको अनुभागद्वारा पुन घात कर उसके तीन भाग करता है यह कहा है। इसका कारण यह है मिथ्यात्वकर्मके अनुभागसे सम्यक्मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है और सम्यक् मिथ्यात्व कर्मके अनुभागसे सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है। ऐसा कषायप्राभृतिके चूर्णि सूत्रोमे कहा है। तथा उपशमसम्यक्त्व सम्बन्धी कालके भीतर अनन्तानुबन्धी कषायकी विसयोजनारूप क्रियाके विना मिथ्यात्वकर्मका स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डक घात नही होता, क्योकि ऐसा उपदेश नही है। इसलिये अन्तरकरण करके ऐसा कहनेपर काण्डक घातके विना मिथ्यात्वकर्मके अनुभागको घातकर और उसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृतिके अनुभागरूप आकारसे परिणमाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमे ही मिथ्यात्वरूप एक कर्मके तीन कर्मांश करता है।

दसणमोहणीय कम्म उवसामेदि ॥८॥

मिथ्यात्वके तीन भाग करनेके पश्चात् दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है ॥ ८ ॥

उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि ? चदुसु वि गदीसु उवसामेदि । चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदियविगलिंदिएसु । पचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गब्भोवक्कतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु । पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि असखेज्जवस्साउगेसु वि ॥ ९ ॥

दर्शनमोहनीयकर्मको उपशमाता हुआ जीव कहाँ उपशमाता है ? चारो ही गतियोमे उपशमाता है। चारो ही गतियोमे उपशमाता हुआ पञ्चेन्द्रियोमे उपशमाता है, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियोमे नही। पञ्चेन्द्रियोमे उपशमाता हुआ सज्ञियोमे उपशमाता है, असज्ञियोमे नही। सज्ञियोमे उपशमाता हुआ गर्भजोमे उपशमाता है, सम्मूर्छिमोमे नही। गर्भोपक्रान्तिकोमे उपशमाता हुआ पर्याप्तकोमे उपशमाता है अपर्याप्तकोमे नही। पर्याप्तकोमे उपशमाता हुआ सख्यातवर्षकी आयुवाले जीवोमे भी उपशमाता है और असख्यातवर्षकी आयुवाले जीवोमे भी उपशमाता है ॥ ९ ॥

दसणमोहणीय कम्मं खेवदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि, अड्डाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि ॥ ११ ॥

दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण करनेके लिये आरम्भ करता हुआ यह जीव कहाँ आरम्भ करता है ? अढाई द्वीप समुद्रोमे स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोमे जहाँ जिस कालमे जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं वहां उस कालमे आरम्भ करता है ॥ ११ ॥

शंका—'पन्द्रह कर्मभूमियोमे' ऐसा सामान्य पद कहनेपर कर्मभूमियोमे स्थित देव, मनुष्य, तिर्यञ्च इन सभीका ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—नही प्राप्त होता, क्योकि कर्मभूमिमे उत्पन्न हुए मनुष्योको कर्मभूमि सज्ञा है ।

शंका—तो भी तिर्यञ्चोका ग्रहण प्राप्त होता है क्योकि उनकी भी कर्मभूमिमें उत्पत्ति होती है।

समाधान—नही, क्योकि जिनकी वहीपर उत्पत्ति होती है, अन्यत्र उत्पत्ति सभव नही है उन ही मनुष्योके लिये 'पन्द्रह कर्मभूमि' व्यपदेश किया गया है न कि तिर्यञ्चोके लिये क्योकि तिर्यञ्च तो स्वयप्रभपर्वतके पर भागमे भी उत्पन्न होते हैं ।

शंका—मनुष्योमें उत्पन्न हुए जोव समुद्रोमे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कैसे करते हैं ?

समाधान—विद्या आदिके वश समुद्रोमे आये हुए जीवोके दर्शनमोहका क्षपण होना सम्भव है।

दुषमा (दुषम दुषमा) सुषमासुषमा, सुषमा, और सुषमादुषमाकालमे उत्पन्न हुए मनुष्योके दर्शनमोहके क्षपणका निषेध करनेके लिये 'जहाँ जिन होते हैं' ऐसा वचन कहा है । जिस कालमे जिन होते हैं उसकालमे ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है ।

देशजिनोका निषेध करनेके लिये सूत्रमे 'केवली' पदका ग्रहण किया है । जहाँ केवलीजिन होते हैं उसीकालमे दर्शनमोहकी क्षपणा होती है, अन्यत्र नही । तीर्थंकरनामकर्मके उदयसे रहित सामान्यकेवलियोंके निषेधके लिये सूत्रमे तीर्थंकर पदका ग्रहण किया है । अर्थात् तीर्थंकरके ही पादमूलमे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ होता है अन्यत्र नही। अथवा 'जिन' कहनेसे चतुर्दश-पूर्वधारियोका ग्रहण करना चाहिये, और 'केवली' ऐसा कहनेसे तीर्थंकरनामकर्मके उदयसे रहित केवलज्ञानियोका ग्रहण करना चाहिये । और 'तीर्थंकर' कहनेसे तीर्थंकरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न अतिशयसहित तीर्थंकरकेवलियोका ग्रहण करना चाहिये । इन तीनोके पादमूलमे कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहके क्षपणका प्रारम्भ करता है ।

यहाँ 'जिन' शब्दको दुबारा ग्रहण करके 'जिन दर्शनमोहनीयके क्षपणका प्रारम्भ करते हैं' ऐसा कहना चाहिये । अन्यथा तीसरी पृथिवीसे निकले हुए कृष्ण आदिके तीर्थंकरपना नही बन सकता । ऐसा किन्ही आचार्योंका व्याख्यान है । इस व्याख्यानके अभिप्रायसे दुषमा, अतिदुषमा, सुषमासुषमा, और सुषमाकालोमे उत्पन्न हुए जीवोके ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नही होती, शेष दोनो कालोमे उत्पन्न हुए जीवोके दर्शनमोहनीयकी क्षपणा होती है । इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर (इस अवसर्पिणीके) तीसरे कालमे उत्पन्न हुए वर्धन कुमार आदिके दर्शनमोहकी क्षपणा देखी जाती है । यहाँ यही व्याख्यान प्रधानरूपसे ग्रहण करना चाहिये ॥

णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि ॥१२॥

दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापक तो चारो ही गतियोमे उसका निष्ठापन करता है ॥ १२ ॥

कृतकृत्य वेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर ऊपरके समयमे दर्शनमोहको क्षपणा करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है । दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाला जीव कृतकृत्य वेदक होनेके पश्चात् आयुबन्धके वश चारो भी गतियोमे उत्पन्न होकर दर्शनमोहकी क्षपणाको पूर्ण करता है । [षट्० धव०, पु० ६, पृ० २०३ आदि]

सम्यक्त्वके बाह्य कारण

नारकी मिथ्यादृष्टि तीन कारणोसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं—जातिस्मरण, धर्मश्रवण और वेदनाभिभव।

शका—सभी नारकियोको जातिस्मरण होता है क्योकि विभग ज्ञानसे सभी अपने पूर्वभवको जान लेते हैं अत सभीको सम्यक्त्व होना चाहिये ?

समाधान—सामान्य भवस्मरण सम्यक्त्वका कारण नही है किन्तु धर्मबुद्धिसे पूर्वभवमे किये गये कार्योंकी विफलताके दर्शनसे हो ऐसा सभव है। जिन नारकियोके तीव्र मिथ्यात्वका उदय है उनको पूर्वभवका स्मरण होनेपर भी उक्त प्रकारका उपयोग नही होता।

शङ्का—वेदनाभिभव भी सभी नारकी करते हैं यदि वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमे कारण है तो सभीको सम्यक्त्व होना चाहिये ?

समाधान—जिन जीवोके ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना मिथ्यात्व या असयमके कारण हुई उन्ही जीवोकी वेदना सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमे कारण होती है।

नीचेकी चार पृथिवीयोके नारकी जातिस्मरण और वेदनाभिभवसे ही सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं।

तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनविम्वदर्शनसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं। मिथ्यादृष्टि मनुष्य भी इन्ही तीन कारणोसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं।

शङ्का—जिन महिमाको देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ?

समाधान—जिनमहिमदर्शनका अन्तर्भाव जिनविम्वदर्शनमे हो जाता है। अथवा, मिथ्यादृष्टि मनुष्योमे आकाशमे गमन करनेकी शक्ति न होनेसे उनके लिये देवोके द्वारा किये जानेवाले नन्दीश्वर द्वीपवर्ती जिनेन्द्र प्रतिमाओके महोत्सवको देखना सभव नही है। किन्तु मेरुपर्वतपर किये जानेवाले महोत्सवोको विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं इसलिये उपर्युक्त अर्थ नही करना चाहिये ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। अत पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है। उर्जयन्त पर्वत, चम्पापुर व पावापुर आदिके दर्शनका भी जिन विम्बदर्शनमे ग्रहण कर लेना चाहिये क्योकि उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्वोके दर्शन तथा जिनभगवानके मोक्षगमनके कथनके बिना प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण नही हो सकता।

तत्त्वार्थसूत्रमे नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्वका कथन किया है उसका भी पूर्वोक्त कारणोंसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्वमे ही ग्रहण कर लेना चाहिये क्योकि जातिस्मरण और जिन बिम्बदर्शनके बिना नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व नही होता॥

मिथ्यादृष्टि देव चार कारणोसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं—जातिस्मरण, धर्मस्मरण, जिनमहिमदर्शन और देवर्द्धिदर्शन। जिनबिम्बदर्शनका अन्तर्भाव जिन महिमदर्शनमे हो जाता है।

शंका—स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और तपकल्याणकरूप जिनमहिमाएँ जिनविम्बके बिना ही होती हैं, अत जिनमहिमादर्शन जिनबिम्बदर्शनका अविनाभावी नही है ?

समाधान—उक्त महिमाओमे भी भावि जिनबिम्बकादर्शन है। अथवा, इन महिमाओमे

उत्पन्न होनेवाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शननिमित्तक नही है किन्तु जिनगुणश्रवण निमित्तक है।

शंका—देवर्द्धिदर्शनका अन्तर्भाव जाति स्मरणमे क्यो नही होता ?

समाधान—नही होता, क्योकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियोको देखकर जब यह विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ जिनभगवान द्वारा उपदिष्ट धर्मके अनुष्ठानसे उत्पन्न हुई हैं तब प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है। किन्तु जब सौधर्म ईन्द्र आदिकी ऋद्धियोको देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि वे ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शनसे युक्त सयमके फलसे प्राप्त हुई हैं किन्तु मै सम्यक्त्वसे रहित द्रव्यसयमके फलसे नीच देवोमे उत्पन्न हुआ हूँ तब प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण देवर्द्धिदर्शन निमित्तक होता है। इससे ये दोनो कारण एक नही हो सकते तथा जातिस्मरण उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर होता है किन्तु देवर्द्धिदर्शन उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् होता है। अत दोनोमे एकत्व नही है।

इस प्रकार भवनवासी देवोसे लगाकर शतार-सहस्रार पर्यन्त देव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं। आनतादिचार कल्पोके देव तीन कारणोसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते है-जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनमहिमादर्शन।

शंका—यहा देवर्द्धिदर्शनको क्यो नही कहा ?

समाधान—आनतादि कल्पोमे महर्धिसे युक्त ऊपरके देवोका आगमन नही होता। और उन्ही कल्पोमे स्थित देवोको महर्द्धिका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वको उत्पत्तिमे निमित्त नही होता क्योकि उसी ऋद्धिको बार बार देखनेमे विस्मय नही होता। अथवा उक्त कल्पोमे शुक्ललेश्याका सद्भाव होनेसे महर्द्धिके दर्शनसे कोई सक्लेशभाव नही होता।

नौ ग्रैवेयक विमानवासी देव मिथ्यादृष्टि दो कारणोसे सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं—जाति-स्मरणसे और धर्मश्रवणसे। इनमे महर्द्धिदर्शन नही है क्योकि यहाँ ऊपरके देवोका आगमन नही है तथा जिनमहिमदर्शन भी नही है क्योकि ग्रैवेयकवासी देव नन्दीश्वर आदि महोत्सव देखने नही जाते।

शंका—ग्रैवेयकवासी देव अपने विमानोमे रहते हुए ही अवधिज्ञानसे जिनमहिमाको देखते हैं ?

समाधान—वीतराग होनेसे उन्हे जिनमहिमा देखकर विस्मय नही होता।

शङ्का—इनमे धर्मश्रवण कैसे संभव है ?

समाधान—इनमे परस्परमे सलाप होता है, उससे अहमिन्द्रत्वमे कोई बाधा नही आती।

अनुदिशोसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सभी देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते है।

[धवला पु ६, पृ ४२० आदि]

शङ्का—अनुदिश आदि विमानोमे मिथ्यादृष्टि आदि जीवोका अभाव होते हुए उपशम सम्यग्दृष्टियोका होना कैसे सभव है ? क्योकि कारणके अभावमे कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नही है क्योकि उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीपर चढते और उतरते हुए मरणकर देवोमे उत्पन्न होनेवाले सयतोके उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है।

सम्यग्दृष्टि जीवोंकी गति आगति

असयतसम्यग्दृष्टि सख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्च जीव मरकर एकमात्र देवगतिमे जाते हैं क्योकि देवायुको छोडकर अन्य आयुओका वन्ध उनके नही होता। तथा वे सौधर्म-ऐशानसे लेकर आरण-अच्युतकल्प तक ही जन्म लेते हैं।

शका—सख्यातवर्षायुष्क असयतसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च मरकर आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर क्यो नही जाते ?

समाधान—नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चोके सयमका अभाव होता है और सयमके विना आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर जन्म नही होता। जो मिथ्यादृष्टि आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर उत्पन्न होते हैं उनके भी भावसयमरहित द्रव्य सयम होता है।

सख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिमे ही जाते है।

शंका—यहाँ 'सख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य चारो गतियोको जाते हैं' ऐसा कहना चाहिये, क्योकि सम्यग्दृष्टी मनुष्योका चारो गतियोमे गमन पाया जाता है। वह इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टी मनुष्य देवगतिमे तो जाते ही हैं यह कथन तो सूत्रमे ही किया है। और सम्यग्दृष्टी मनुष्य नरकगतिको भी जाते हैं क्योकि सूत्रमे ही कहा है कि नारकी सम्यक्त्वके साथ नरकमे जाकर नियमसे सम्यक्त्व सहित वहाँसे निकलते हैं। तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टी तो नरकमे जाते नही हैं। क्योकि उनमे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका अभाव होनेसे क्षायिक सम्यक्त्वका अभाव है। और न वेदक सम्यग्दृष्टी तिर्यञ्च नरकमे जाते हैं क्योकि उनके मरणकालमे नरकायुकर्मकी सत्ता नही होती। देव और नारकी सम्यग्दृष्टी मरकर नरकमे जाते नही हैं इसलिये पारिशेष न्यायसे सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही नरकगतिको जाते हैं यह वात सिद्ध हुई। सम्यग्दृष्टी मनुष्य मरकर तिर्यञ्चगतिमे भी जाते हैं क्योकि तिर्यञ्चगतिमे सम्यक्त्व सहित जानेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्वसहित ही वहाँसे निकलते हैं ऐसा जिनभगवानका उपदेश है। तिर्यञ्चोमे देव, नारकी और तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टी जीव तो उत्पन्न होते नही क्योकि ऐसा भगवानका उपदेश नही पाया जाता। इसलिये तिर्यञ्चोमे सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही उत्पन्न होते है। इसी प्रकार मनुष्योमे मनुष्य सम्यग्दृष्टी जीवोकी उत्पत्ति साध लेनी चाहिये ?

समाधान—इस शकाका परिहार यह है कि जिन मिथ्यादृष्टियोने देवायुको छोड अन्य आयु बाँधकर पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है उनका यहाँ ग्रहण नही किया है इसीलिये ऐसा कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं।

शका—देवगतिको छोड अन्य गतियोकी आयु बाँधकर जिन मनुष्योने पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है उनका यहाँ ग्रहण क्यो नही किया ?

समाधान—नही, क्योकि पुनः मिथ्यात्वमे जाकर अपनी वाँधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होने वाले उन जीवोके सम्यक्त्वका अभाव पाया जाता है।

शंका—सम्यक्त्वको ग्रहण करके और दर्शनमोहनीयका क्षपण करके नरकादिकमे उत्पन्न होने वाले भी सम्यग्दृष्टि होते हैं, उनका यहाँ क्यो नही ग्रहण किया ?

समाधान—सम्यक्त्वका माहात्म्य दिखलाने और पूर्वमे बाँधे हुए आयुकर्मका माहात्म्य दिखलानेके लिये उक्त जीवोका यहाँ ग्रहण नही किया है।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव वहाँसे च्युत होकर एक मनुष्यगतिमे ही आते हैं।

शंका—सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्य होनेवाले वासुदेव क्यो नही होते ?

समाधान—नही, क्योकि वासुदेव होनेमे उससे पूर्व मिथ्यात्वके अविनाभावी निदानका होना आवश्यक है।

शंका—उनके नियमसे अवधिज्ञान कैसे होता है ?

समाधान—सर्वार्थसिद्धिवालोके अननुगामी, हीयमान और प्रतिपाति अवधिज्ञान नही होता अत मनुष्योमे उत्पन्न होनेपर भी अवधिज्ञान जन्मसे होता है।

[धवला, पु० ६, पृ० ४७४-५०१]

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें मरण

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालके भीतर जीव उपशमश्रेणिसे गिरकर असयमको भी प्राप्त हो सकता है, सयमासयमको भी प्राप्त हो सकता है और छह आवली काल शेष रहनेपर सासादन-को भी प्राप्त हो सकता है। परन्तु सासादनको प्राप्त होकर यदि मरता है तो नरकगति, तिर्यञ्च-गति अथवा मनुष्यगतिको प्राप्त करनेमे समर्थ नही होता, नियमसे देवगतिको ही प्राप्त होता है। यह कषायप्राभृतचूर्णिसूत्रका अभिप्राय है। किन्तु भगवान भूतबलिके उपदेशानुसार उपशमश्रेणि-से उतरता हुआ जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त नही करता। तथा नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु इन तीन आयुमेसे पूर्वमे बाँधी गई एक भी आयुसे कषायोको उपशमानेमे समर्थ नही होता। इसी कारणसे नरक, तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमे नही जाता।

[धवला, पु ६, पृ० ३३१]

सासादनसम्यक्त्व

सासणसम्माइट्ठी णाम कध भवदि ? ॥७६॥ पारिणामिएण भावेण ॥ ७७ ॥

जीव सासादनसम्यग्दृष्टी कैसे होता है? पारिणामिकभावसे जीव सासादनसम्यग्दृष्टी होता है।

यह सासादन परिणाम क्षायिक नही होता, क्योकि दर्शनमोहनीयके क्षयसे उसकी उत्पत्ति नही होती। सासादन परिणाम क्षायोपशमिक भी नही होता, क्योकि दर्शनमोहनीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उसकी उत्पत्ति नही होती। सासादन परिणाम औपशमिक भी नही है क्योकि दर्शनमोहनीयके उपशमसे उसकी उत्पत्ति नही होती। सासादन परिणाम औदयिक भी नही है क्योकि दर्शनमोहनीयके उदयसे उसकी उत्पत्ति नही होती। अतएव पारिशेष न्यायसे पारिणामिक भावसे ही सासादन परिणाम होता है।

शङ्का—अनन्तानुबन्धीकषायोंके उदयसे सासादन गुणस्थान पाया जाता है अत उसे औदयिक भाव क्यो नही कहते ?

समाधान—नही, क्योकि दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशमके विना उत्पन्न होनेसे सासादनगुणस्थानका कारण चारित्रमोहनीयकर्म ही हो सकता है और चारित्रमोहनीयको दर्शनमोहनीय माननेमे विरोध है।

शंका—अनन्तानुबन्धी तो दर्शन और चारित्र उभयमोहनीय है ?

समाधान—भले ही अनन्तानुबन्धी उभयमोहनीय हो किन्तु यहाँ वैसी विवक्षा नही है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क चारित्रमोहनीय ही है इसी विवक्षासे सासादनगुणस्थानको पारिणामिक कहा है। [धवला, पु० ७, पृ० १०९-११०]

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नही होती, क्योकि दूसरोंसे नही उत्पन्न होनेवाले परिणामका अस्तित्व नही है। और यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जाती है तो वह पारिणामिक नही रह सकता है क्योकि निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—जो कर्मोके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमके बिना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ परिणाम है वह पारिणामिक कहा जाता है। निष्कारणभावको पारिणामिक नही कहते, क्योकि कारणके विना उत्पन्न होनेवाला परिणाम नही है।

शंका—सत्त्व, प्रमेयत्व आदि भाव कारणके विना भी होते हैं ?

समाधान—नही, क्योकि विशेषसत्त्व आदिके स्वरूपसे नही परिणत होनेवाले सत्त्वादि सामान्य नही पाये जाते।

शङ्का—सासादन सम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनोके विरोधी अनन्तानुबन्धीचतुष्कके बिना उदयके नही होता इसलिये उसे औदयिक क्यो नही मानते ?

समाधान—यह कहना सत्य है परन्तु उस प्रकारकी विवक्षा नही है, क्योकि आदिके चार गुणस्थान सम्बन्धी भावोकी प्ररूपणामे दर्शनमोहनीय कर्मके सिवाय शेष कर्मोके उदयकी विवक्षाका अभाव है। इसलिये विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे अथवा क्षयोपशमसे न होनेसे सासादनसम्यक्त्व निष्कारण है और इसीलिये वह पारिणामिक है।

शंका—इस न्यायसे तो सभी भाव पारिणामिक ठहरेंगे ?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोके पारिणामिक होनेका प्रसग आता है तो आवे, उसमे कोई दोष नही है।

शंका—यदि ऐसा है तो अन्य भावोमे पारिणामिकपनेका व्यवहार क्यो नही किया जाता ?

समाधान—नही, क्योकि सासादनसम्यक्त्वको छोडकर विवक्षित कर्मसे नही उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नही पाया जाता। [धवला, पु ५, पृ १९६-१९७]

शङ्का—यदि एकेन्द्रियोमे सासादनसम्यग्दृष्टी जीव उत्पन्न होते हैं तो एकेन्द्रियोमे दो गुणस्थान होना चाहिये ? यदि कहा जाय कि एकेन्द्रियोमे दो गुणस्थान होते हैं तो होने दो, सो भी नही बन सकता, क्योकि द्रव्यानुयोगद्वारमे एकेन्द्रिय सासादनगुणस्थानवर्ती जीवोका प्रमाण नही बतलाया ?

समाधान—चूँकि एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टी जीव अपनी आयुके अन्तिम समयमे सासादनपरिणामसहित होकर उससे ऊपरके समयमे मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं इसलिये एकेन्द्रियोमे दो गुणस्थान नही होते। [धवला पु ६, पृ ४७१]

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टी जीव एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होते हैं तो उनमे दो गुणस्थान प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसा नही है क्योकि सत्प्ररूपणाअनुयोगद्वारमे एकेन्द्रियोमे एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बतलाया है तथा द्रव्यानुयोगद्वारमे भी उनमे एक ही गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण कहा है ?

समाधान—कौन कहता है कि सासादनसम्यग्दृष्टी जीव एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होते हैं किन्तु वे उस गुणस्थानमे मारणान्तिक समुद्घात करते है ऐसा हमारा निश्चय है न कि वे उस गुणस्थानमे उत्पन्न होते है क्योकि उनमे आयुष्यके छिन्न होनेके समय सासादन गुणस्थान नही पाया जाता।

शंका—जहाँ पर सासादनसम्यग्दृष्टियोका उत्पाद नही है वहाँ पर भी यदि सासादन सम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिक समुद्घात करते है तो सातवी पृथिवीके नारकियोको सासादनगुणस्थानके साथ पचेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे मारणान्तिक समुद्घात करना चाहिये, क्योकि सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा दोनोमे कोई भेद नही है ?

समाधान—यह दोष नही है क्योकि देव और नारकी दोनोकी भिन्न जाति है। सातवी पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पञ्चेन्द्रियोमे ही उपजनेके स्वभावाले हैं और देव पञ्चेन्द्रियोमे तथा एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होने रूप स्वभाववाले है इसीलिये दोनो समानजातीय नही हैं। अत सातवी पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोके समान मारणान्तिक समुद्घात नही करते।

शका—सासादनसम्यग्दृष्टि देव जब एकेन्द्रियोमे मारणान्तिक समुद्घात करते ही हैं तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोमे क्यो नही मारणान्तिक समुद्घात करते ?

समाधान—नही, क्योकि उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है और लोकनालीके भीतर मारणान्तिकसमुद्घातको करते हुए भी भवनवासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, नीचे नही, इसका कारण है सासादन गुणस्थानकी प्रधानता।

[धवला, पु० ४, पृ० १६३]

शंका—तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे मारणान्तिकसमुद्घात क्यो नही करते ?

प्रतिशका—यदि ऐसी शका करते हैं तो बताइये कि तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियोमे क्यो नही उत्पन्न होते ?

समाधान—वे नारकियोमे स्वभावसे ही उत्पन्न नही होते हैं।

प्रतिसमाधान—यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे भी वे स्वभावसे ही मारणान्तिक समुद्घात नही करते ऐसा क्यो नही स्वीकार कर लेते ?

शका—यदि सासादन सम्यग्दृष्टी जीव मेरुतलसे नीचे मारणान्तिक समुद्घात नही करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भवनवासी देवोमे उनकी उत्पत्ति भी प्राप्त नही होती।

समाधान—यह कोई दोष नही है क्योकि मेरुतलसे नीचे सासादन सम्यग्दृष्टियोका मारणान्तिक समुद्घात नही होता, यह सामान्य कथन है। किन्तु विशेषरूपसे कथन करनेपर वे नारकियोमे और मेरुतलसे अघोभागवर्ती एकेन्द्रियोमे मारणान्तिक समुद्घात नही करते हैं, यही परमार्थ है।
[पु ४, पृ २०४]

सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थान

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥४॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौन-सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शङ्का—प्रतिबन्धी कर्मका उदय रहनेपर भी जो जीवके गुणका अश पाया जाता है वह क्षायोपशमिक कहलाता है क्योकि गुणोको सम्पूर्ण रूपसे घातनेकी शक्तिके अभावको क्षय कहते हैं। क्षयरूप जो उपशम वह क्षयोपशम कहलाता है। उस क्षयोपशमके होनेपर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायोपशमिक है। किन्तु सम्यक्मिथ्यात्व कर्मका उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी शेष नही रहती। अन्यथा सम्यक्मिथ्यात्वका सर्वघातीपना नही बनता। इसलिये सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक है यह घटित नही होता ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार करते हैं। सम्यक्मिथ्यात्वके उदय होते हुए श्रद्धानाश्रद्धानात्मक मिश्रित जीवभाव उत्पन्न होता है। उसमे जो श्रद्धानाश है वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यक्मिथ्यात्वका उदय नष्ट नही करता इसलिये सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक है।

शंका—अश्रद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागको ही सम्यक्मिथ्यात्व सज्ञा नही है। इसलिये सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक नही है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होनेपर सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भले ही न हो, किन्तु अवयवीके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह क्षायोपशमिक है। सम्यक्मिथ्यात्वद्रव्यकर्म भी सर्वघाती ही होवे, क्योकि जात्यन्तरभूत सम्यक्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वपनेका अभाव है। किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धानभाग नहीं होता, क्योकि श्रद्धान और अश्रद्धानके एक होनेका विरोध है। और श्रद्धानभाग कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ नही है क्योकि उसमे विपरीतताका अभाव है तथा उसमे सम्यक्मिथ्यात्व सज्ञाका भी अभाव नही है क्योकि समुदायोमे प्रवृत्त हुए शब्दोको उनके एक देशमे भी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि सम्यक्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक है।

मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयक्षयसे उन्हीके सदवस्था रूप उपशमसे, सम्यक्प्रकृतिके देशघाति स्पर्घकोके उदयक्षयसे, उन्हीके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यक्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्घकोंके उदयसे सम्यक्मिथ्यात्वभाव होता है। इस प्रकार कुछ आचार्य सम्यक्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकपनेका कथन करते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता क्योकि

इस प्रकारसे तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकपनेका प्रसग प्राप्त होगा, क्योकि सम्यक्मिथ्यात्व-के सर्वघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे, उन्हीके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धको-के उदयक्षयसे, उन्हीके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयरूप उपशमसे तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयसे मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति पाई जाती है। [धवला, पु ५, पृ १९८-९९]

शंका—अप्रमत्तसयत जीव सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थानमे क्यो नही जाता ?

समाधान—नही, क्योकि यदि अप्रमत्तसयत जीवके सक्लेशकी वृद्धि हो तो प्रमत्तसयत गुण-स्थानको और विशुद्धिकी वृद्धि हो तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोडकर दूसरे गुणस्थानोमे नही जाता। यदि अप्रमत्तसयतका मरण भी हो तो असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको छोडकर दूसरे गुण-स्थानोमे नही जाता।

शङ्का—सम्यक्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा करके पीछे संयमको अथवा सयमासंयम-को क्यो नही प्राप्त होता ?

समाधान—नही, क्योकि उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान अथवा अस-यतसम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको छोडकर दूसरे गुणस्थानोमे गमन नही होता।

[धवला, पु ४, पृ ३६३]

उपशमकगुणस्थानोंमें भाव

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानवर्ती उपशामकोमे कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

शंका—समस्त कषाय और नोकषायोका उपशम करनेसे उपशान्तकषायवीतराग-छद्मस्थ जीवके औपशमिक भाव रहो, किन्तु अपूर्वकरणादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोके औपशमिक भाव नही माना जा सकता, क्योकि उन गुणस्थानोमे समस्त मोहनीयके उपशमका अभाव है ?

समाधान—नही, क्योकि कुछ कषायोका उपशमन किये जानेसे अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थानोमे उपशम भावका अस्तित्व माननेमे कोई विरोध नही है।

शका—किन्तु अपूर्वकरणमे तो किसी भी कषायका उपशम नही होता, वहाँ कैसे औपशमिक भाव माना जा सकता है ?

समाधान—नही, क्योकि अपूर्वकरण परिणामोके द्वारा प्रतिसमय असख्यात गुणश्रेणिरूपसे कर्मोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभाग काण्डकोको घात करके क्रमसे कषायोकी स्थिति और अनुभागको असख्यात और अनन्तगुणा हीन करनेवाले तथा उपशमन क्रियाका प्रारम्भ करनेवाले अपूर्वकरणसयतके औपशमिक भाव माननेमे कोई विरोध नही है।

शंका—कर्मोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक है। किन्तु अपूर्वकरणमे कर्मों-के उपशमनका अभाव है अत वहाँ औपशमिक भाव नही मानना चाहिये।

समाधान—नही, क्योकि उपशमनशक्तिसे युक्त अपूर्वकरण संयतके औपशमिक भाव मानने-

मे कोई विरोध नही है। इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके उपशमनके लिये उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है। अथवा, भविष्यमे होनेवाले उपशम भावमे भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्वकरणके औपशमिकभाव बन जाता है। जैसे सब प्रकारके असयममे प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थङ्करके तीर्थङ्कर व्यपदेश बन जाता है।

क्षपकगुणस्थानोंमें भाव

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥९॥

चारो क्षपक, सयोगकेवली, अयोगकेवली इनमे कौनसा भाव है? क्षायिक भाव है॥ ९॥

शंका—घातिकर्मोंका क्षय करनेवाले सयोगकेवली और अयोगकेवलीके तो क्षायिक भाव मानना उचित है। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थके भी क्षायिकभाव हो सकता है क्योकि उसके मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है। किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष क्षपकोके क्षायिकभाव मानना युक्तिसंगत नही है क्योकि उनमे किसी भी कर्मका क्षय नही पाया जाता?

समाधान—नही, क्योकि मोहनीयकर्मके एकदेशके क्षपण करने वाले बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोके भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है।

शंका—किसी भी कर्मका क्षय न करनेवाले अपूर्वकरण सयतके क्षायिकभाव कैसे माना जा सकता है?

समाधान—नही, क्योकि उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

यहांपर भी कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है तथा कर्मोंके क्षयके लिये उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है ऐसी दो प्रकारकी शब्दव्युत्पत्ति लेनी चाहिये। अथवा उपचारसे अपूर्वकरण सयतके क्षायिक भाव मानना चाहिये।

शका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारका आश्रय करनेपर अतिप्रसगदोष क्यो नही आता?

समाधान—नही, क्योकि प्रत्यासत्तिसे अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसगसे अतिप्रसगदोषका प्रतिषेध हो जाता है॥ [धवला, पु ५, पृ २०४–२०६]

प्रकृतिअनुयोगद्वार

णाणावरणीयकम्मपयडी एवं दंसणावरणीय-वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मपयडी चेदि ॥ १९ ॥

ज्ञानावरणीयकर्मप्रकृति, इसी प्रकार दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मप्रकृति ॥ १९ ॥

जो ज्ञानको आवृत करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है। बाह्य अर्थका परिच्छेद करनेवाली जीवकी शक्ति ज्ञान है। वह जीवका यावद् द्रव्यभावी गुण है क्योकि उसके बिना जीवके अभावका प्रसग आता है।

शंका—ज्ञानावरणके स्थानपर ज्ञानविनाशक नाम क्यो नही कहा ?

समाधान—नही, क्योकि जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नही होता। यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश माना जाय तो जीवका भी विनाश हो जायगा, क्योकि लक्षणसे रहित लक्ष्य नही पाया जाता।

शंका—ज्ञानका विनाश नही मानने पर सभी जीवोके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है।

समाधान—प्राप्त होता है तो होने दो, उसमे कोई विरोध नही है। अथवा 'अक्षरका अनन्तवाँ भाग नित्य उद्घाटित रहता है' इस सूत्रके अनुकूल होनेसे सब जीवोके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध होता है।

शंका—यदि सभी जीवोके ज्ञान है तो सर्व अवयवोके साथ ज्ञानका उपलम्भ होना चाहिये ?

समाधान—यह कहना उचित नही है क्योकि आवरण किये गये ज्ञानके भागोका उपलम्भ माननेमे विरोध आता है।

शंका—आवरणयुक्त जीवमे आवरण किये गये ज्ञानके भाग है या नही ? यदि है तो उन्हे आवरित नही कहा जा सकता। यदि नही हैं तो उनका आवरण नही माना जा सकता ?

समाधान—द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर आवरण किये गये ज्ञानके अंश सावरण जीवमे भी होते हैं क्योकि जीवद्रव्यसे भिन्न ज्ञानका अभाव है।

शका—ज्ञानके आवरण किये गये और आवरण नही किये गये अशोमे एकता कैसे हो सकती है ?

समाधान—नही, क्योकि राहु और मेघोके द्वारा सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलमे आवरित और अनावरित भागोमे एकता पाई जाती है।

शङ्का—ज्ञानको आव्रियमाण कैसे कहा ?

समाधान—अपने विरोधी द्रव्यके समीप्यमे जो मूलसे नष्ट नही होता उसे आव्रियमाण कहते हैं और दूसरे विरोधी द्रव्यको आवारक कहते है। विरोधी कर्मद्रव्यका सन्निधान होने पर ज्ञानका निर्मूल विनाश नही होना, क्योकि वैसा मानने पर जीवद्रव्यके विनाशका प्रसग आता है।

शङ्का—ज्ञानरहित पुद्गल और आकाश द्रव्योके समान ज्ञानरहित जीवका अस्तित्व क्यो नही होता ?

समाधान—नही, क्योकि विशेषगुणोके बिना जीवद्रव्यको अजीवद्रव्योसे पृथक् नही माना जा सकता। इसलिये जीवको उपयोगलक्षण वाला माना है।

शका—उपयोगवान् जीव है और उपयोगसे रहित अजीव है ऐसा क्यो नही स्वीकार करते ?

समाधान—नही, क्योकि उपयोगको जीवसे भिन्न मानने पर उपयोगके बिना आकाश और जीवमे कोई अन्तर न रहनेसे आकाशकी तरह जीवके साथ उपयोगका सम्बन्ध नही बन सकता फिर भी यदि सम्बन्ध माना जाता है तो जीवके समान आकाश आदिके साथ भी उपयोगका सम्बन्ध हो जायगा।

शंका—यदि जीव और उपयोगका सम्बन्ध न होता तो 'उपयोगवान्' उसे नही कहते ?

समाधान—नही, क्योकि नित्ययोगमे भी मतुप् प्रत्यय होता है। वह उपयोग दो प्रकारका है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। साकार उपयोग का नाम ज्ञान है और अनाकार उपयोग का नाम दर्शन है।

शका—साकार उपयोगके द्वारा सब पदार्थ विषय किये जाते है अत विषयका अभाव होनेसे अनाकार उपयोग नही बनता।

समाधान—यह दोष नही है क्योकि अन्तरङ्गको विषय करने वाले उपयोगको अनाकार उपयोग स्वीकार किया है। अन्तरङ्ग उपयोग विषयाकार नही होता। कर्तृ-कर्मभावका नाम आकार है। दर्शन मे कर्त्तासे भिन्न कर्म नही पाया जाता। ज्ञानका विषय बाह्य पदार्थ है अत उसमे कर्तृ-कर्मभाव होनेसे साकारता है।

जीवमे आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पांच ज्ञान हैं और पांच ही ज्ञानावरणीयकी प्रकृतिया हैं।

उनमे अभिमुख नियमित अर्थका ज्ञान होना आभिनिबोधिक ज्ञान है। इन्द्रिय और नो इद्रिय -के द्वारा ग्रहण करने योग्य अर्थ का नाम अभिमुख है। मतिज्ञानके द्वारा ग्रहण किये गये अर्थके निमितसे जो अन्य अर्थोका ज्ञानहोता है वह श्रुत ज्ञान है। शब्दके निमित्तसे उत्पन्न हुआ शब्दार्थ-का ज्ञान भी श्रुतज्ञान है।

शंका—शब्दको श्रुतनाम कैसे मिल सकता है ?

समाधान—कारणमे कार्यके उपचारसे।

शङ्का—एकेन्द्रिय जीव श्रोत्र और मनसे रहित होते हैं। उनके श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—उनमे मनके बिना भी जातिविशेषके कारण लिंगी विषयक ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमे कोई विरोध नही है।

शंका—महाविषय वाले अवधिज्ञानसे अल्पविषय वाला मन पर्ययज्ञान उनके बाद क्यो कहा ?

समाधान—यह सही हे कि अवधिज्ञानकी अपेक्षा मन पर्ययज्ञान अल्प है। किन्तु मन - पर्ययज्ञान सयमके निमित्तसे होता है इस कारणसे अवधिज्ञानसे मन पर्यय ज्ञान महान् है।

शका—जीव क्या पांच ज्ञान स्वभाव वाला है या केवलज्ञान स्वभाव है। पांच ज्ञान स्व-भाव वाला तो हो नही सकता, क्यो कि जीवद्रव्यमे पांच ज्ञानोका एक साथ अस्तित्व नही माना है। केवलज्ञान स्वभाव भी नही हो सकता, क्योकि ऐसा मानने पर शेष आवरणीय ज्ञानोका अभाव होनेसे शेष आवरण कर्मो का अभाव प्राप्त होता है।

समाधान—जीव केवलज्ञान स्वभावही है। फिर भी ऐसा मानने पर आवरणीय शेष ज्ञानो-का अभाव होने से उनके आवारक कर्मो का अभाव नही होता, क्योकि केवलज्ञानावरणीयके द्वारा आवृत हुए भी केवलज्ञानके कुछअवयवोकी जो रूपी द्रव्योको प्रत्यक्ष ग्रहण करनेमे समर्थ हैं सभा-वना देखी जाती है। वे जीवसे निकलती हुई ज्ञान किरणें प्रत्यक्ष औरपरोक्षके भेदसे दो प्रकार हैं। उनमेसे प्रत्यक्षभाग दो प्रकारका है—एक संयमप्रत्यय, दूसरा सम्यक्त्व और सयम प्रत्यय तथा

भवप्रत्यय। उनमे संयमप्रत्यय मन पर्यय ज्ञान है और दूसरा अवधिज्ञान है। जो परोक्षभाग है वह भी दो प्रकार है—इन्द्रियनिबन्धन और इन्द्रियजन्यज्ञाननिबन्धन। इन्द्रियजन्यभाग मतिज्ञान है दूसरा श्रुतज्ञान है। इनचार ज्ञानोके आवारक कर्म मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय अवधिज्ञानावरणीय और मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्म कहे जाते है। इस लिए जीवके केवलज्ञान स्वभाव होने पर भी ज्ञानावरणीयके पाँच भेद सिद्ध होते हैं।

शका—केवलज्ञानावरणीय कर्म क्या सर्वघाती है या देशघाती? सर्वघाती तो हो नही सकता, क्योकि केवलज्ञानका सम्पूर्ण अभाव मान लेने पर जीवके अभावका प्रसग आता है। केवलज्ञानावरणीय कर्म देशघाती भी नही हो सकता, क्योकि ऐसा मानने पर केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय कर्म सर्वघाती हैं, इस सूत्रके साथ विरोध आता है?

समाधान—केवलज्ञानावरण सर्वघाती ही है क्योंकि वह केवलज्ञानका विशेष आवरण करता है फिर भी जीवका अभाव नही होता, क्योकि केवलज्ञानके आवृत्त होने पर भी चार ज्ञानो का अस्तित्व पाया जाता है।

शङ्का—जीवमे केवल एक ज्ञान है। उसे जब पूर्णतया आवृत्त कहते हो तो चार ज्ञानोका सद्भाव कैसे सम्भव है?

समाधान—नही, क्योकि जिस प्रकार राखसे ढकी हुई अग्निसे वाष्पकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार सर्वघाती आवरणके द्वारा केवलज्ञानके आवृत्त होने पर भी उससे चार ज्ञानोकी उत्पत्ति माननेमे कोई विरोध नही आता।

शंका—ये चारो ही ज्ञान केवलज्ञानके अवयव नही है क्योकि ये विकल हैं, परोक्ष है, क्षयसहित हैं, और वृद्धि-हानियुक्त है अत उन्हे सकलप्रत्यक्ष, तथा क्षय और वृद्धि-हानिसे रहित केवलज्ञान का अवयव माननेमे विरोध आता है। अत. चारो ज्ञानोको केवलज्ञानका अवयव कहना ठीक नही है?

समाधान—नही, क्योकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा उन्हे केवलज्ञानका अवयव माननेमे कोई विरोध नही आता।

शंका—सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तकका जो जघन्य ज्ञान होता है उसका नाम लब्ध्यक्षर है, इसे अक्षर क्यो कहते हैं?

समाधान—क्योकि यह नाश हुए विना एकरूपसे रहता है अथवा केवलज्ञान अक्षर है क्योकि उसमे हानि-वृद्धि नही होती। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सूक्ष्मनिगोदियाका ज्ञान भी वही है इसलिये भी उस ज्ञानको अक्षर कहते हैं। इसका प्रमाण केवलज्ञानका अनन्तवा भाग है। यह ज्ञान निरावरण है। इस ज्ञानमे सब जीव राशिसे अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेद हैं।

गोत्रकर्म

गादस्स कमस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव ॥ १३५ ॥

गोत्रकर्म की दो प्रकृतिया हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

शका—उच्चगोत्रका व्यापार कहाँ होता है? राज्यादिरूप सम्पदाकी प्राप्तिमे तो उसका

व्यापार होता नही है, क्योकि उनकी उत्पत्ति सातवेदनीय कर्मके निमित्तसे होती है। पांच महाव्रतोंके ग्रहण करनेकी योग्यता भी उच्चगोत्रके द्वारा नही की जाती है क्योकि ऐसा मानने पर जो सब देव और अभव्य जीव पाच महाव्रतोको ग्रहण नही कर सकते उनमे उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है। सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिमे उसका व्यापार होता है यह मानना भी ठीक नही है क्योकि उसकी उत्पत्ति ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे सहकृत सम्यग्दर्शनसे होती है। तथा ऐसा मानने पर नारकियो और तिर्यञ्चोके भी उच्चगोत्रका उदय मानना पडेगा; क्योकि उनके सम्यग्ज्ञान होता है। आदेयता, यश और सौभाग्यकी प्राप्तिमे इसका व्यापार होता है यह कहना भी ठीक नही है क्योकि इनकी उत्पत्तिनाम कर्मके निमित्तसे होती है। इक्ष्वाकुकुल आदिकी उत्पत्तिमे भी इसका व्यापार नही होता, क्योकि वे काल्पनिक हैं, अत. परमार्थसे उनका अस्तित्व नही है। इसके अतिरिक्त वैश्य और ब्राह्मण साधुओमे उच्चगोत्रका उदय देखा जाता है। सम्पन्न जनोसे जीवोकी उत्पत्तिमे इसका व्यापार होता है यह कहना भी ठीक नही है क्योकि इस तरह तो म्लेच्छराजसे उत्पन्न हुए बालक के भी उच्चगोत्रका उदय प्राप्त होता है। अणुव्रतियोसे उत्पत्तिमे उसका व्यापार होता है यह कहना भी ठीक नही है क्योकि ऐसा मानने पर औपपादिक देवोमे उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है तथा नाभिपुत्र नोचगोत्री ठहरते हैं। इसलिए उच्चगोत्र निष्फल है और इसीलिये उसमें कर्मपना घटित नही होता। उसका अभाव होनेपर नीचगोत्र भी नही रहता, क्योकि दोनो एक दूसरेके अविनाभावी हैं, अत गोत्रकर्म नही ही है ?

समाधान—नही, क्योकि जिनवचनके असत्य होनेमे विरोध आता है। यह विरोध भी वहाँ उसके कारणोके नही होने से जाना जाता है। दूसरे, केवलज्ञानके द्वारा विषय किये गये सभी अर्थों मे छद्मस्थोका ज्ञान प्रवृत्त नही होता। इसलिय यदि छद्मस्थोको कोई अर्थ उपलब्ध नही होते हैं तो इससे जिनवचनको अप्रमाण नही कहा जा सकता। तथा गोत्रकर्म निष्फल है यह बात भी नही हैं क्योकि जिनका दीक्षा योग्य साधु आचार है, साधु आचार वालोंके साथ जिन्होने सम्बन्ध स्थापित किया है तथा जो 'आर्य' इस प्रकारके ज्ञान और वचन व्यवहारके निमित्त हैं उन पुरुषोकी परम्पराको उच्चगोत्र कहा है। तथा उनमे उत्पत्तिका कारणभूत कर्म भी उच्चगोत्र है। इसमे पूर्वोक्ति दोष सम्भव नही है।

[धवल पु १३, प्रकृति अनुयोगद्वार]

संयम जीवका स्वभाव नहीं

असजदो णाम कध भवदि ॥ ५४ ॥ सजमघादीण कम्माणमुदएण ॥ ५५ ॥

जीव असयत कैसे होता है ? सयमके घाती कर्मोंके उदयसे जीव असयत होता है ॥ ५४-५५॥

शङ्का—एक अप्रत्याख्यानावरणका उदय ही असयमका हेतु है क्योकि वही सयमासयमके प्रतिषेध द्वारा सर्वसयमका घाती होता है। ऐसी स्थितिमे 'संयमघाती कर्मोंके उदयसे असयत होता है, यह कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दूसरे भी चारित्रावरणीय कर्मोंके उदयके बिना केवल अप्रत्या-ख्यानावरणमे देशसयमको घात करनेका सामर्थ्य नही होता।

शंका—सयम तो जीवका स्वभाव है इसलिये वह अन्यके द्वारा नष्ट नही किया जा सकता, क्योकि उसका विनाश होनेपर जीवद्रव्यके विनाशका प्रसग आयेगा ?

समाधान—नही आयेगा, क्योकि जिस प्रकार उपयोग जीवका लक्षण माना गया है उस प्रकार सयम जीवका लक्षण नही होता।

शंका—लक्षण किसे कहते है ?

समाधान—जिसके अभावमे द्रव्यका भी अभाव हो जाता है वही उस द्रव्यका लक्षण है। जैसे, पुद्गलला लक्षण रूपादि और जीवका लक्षण उपयोग।

इसलिये सयमके अभावमे जीवका अभाव नही होता।

[धवला, पु० ७, पृ० ९५-९६]

दर्शनोपयोग

दसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ? ॥ ५६ ॥

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, व अवधिदर्शनी कैसे होता है ॥ ५७ ॥

शंका—दर्शन है ही नही, क्योकि उसका कोई विषय नही है। बाह्य पदार्थोंके सामान्य ग्रहणको दर्शन तो नही माना जा सकता, क्योकि वैसा माननेपर केवलज्ञानके अभावका प्रसग आता है। इसका कारण यह है कि जब केवलज्ञानके द्वारा त्रिकाल गोचर अनन्त अर्थ और व्यजन पर्याय स्वरूप समस्त द्रव्योको जान लिया जाता है तब केवलदर्शनके लिये कोई विषय ही नही रहता। ऐसा तो हो नही सकता कि केवलज्ञानके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थको ही केवलदर्शन ग्रहण करता है, क्योकि जो वस्तु ग्रहण की जा चुकी है उसे ही पुन ग्रहण करनेका कोई फल नही होता। यह भी नही हो सकता कि समस्त विशेष मात्रका ही ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान हो जिससे समस्त पदार्थोंका सामान्य धर्म केवलदर्शनका विषय हो जाय, क्योकि ऐसा माननेपर तो ससारावस्थामे जब आवरणके वशसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृत्ति क्रमसे होती है तब द्रव्यके ज्ञान होनेके अभावका का ही प्रसंग आजाएगा। इसका कारण यह है कि ज्ञान द्रव्यका परिच्छेदक नही रहा क्योकि उसका व्यापार सामान्य रहित विशेपोमे ही परिमित हो गया। तथा न दर्शन ही द्रव्यका परिच्छेदक रहा, क्योकि उसका व्यापार विशेष रहित सामान्यमे सीमित हो गया। इस प्रकार न केवल ससारावस्था मे ही द्रव्यके ग्रहण नही होगा किन्तु केवली अवस्थामे भी द्रव्यका ग्रहण नही होगा, क्योकि एकात रूपी दुरन्तपथमे स्थित सामान्य व विशेषमे प्रवृत्त हुए केवलदर्शन और केवलज्ञानका द्रव्यमात्रमे व्यापार माननेमे विरोध आता है। एकान्त सामान्य और विशेष तो होते नही जिससे कि वे केवलदर्शन और केवलज्ञानके विषय हो सकें। और जो नही है उसको भी प्रमेयरूपसे मानना इष्ट हो तो गधेके सीग भी प्रमेय हो जायेंगे क्योकि अभावकी अपेक्षा दोनोमे कोई अन्तर नही है। तथा प्रमेयके अभावमे प्रमाण भी नही रहता क्योकि प्रमाण प्रमेयमूलक होता है इसलिये दर्शनकी कोई अलग सत्ता नही है यह सिद्ध हुआ ?

समाधान—उक्त शकाका परिहार करते है—दर्शन हैं क्योकि सूत्रमे आठ कर्मोका निर्देश किया गया है। आवरणीयके अभावमे आवारक हो नही सकता, क्योकि अन्यत्र वैसा नही पाया जाता है। यह भी नही कह सकते कि दर्शनावरणका निर्देश केवल उपचारसे किया गया है; क्योकि मुख्यके अभावमे केवल उपचारकी उपपत्ति बन नही सकती। आवरणीय है ही नही सो भी बात नही, क्योकि चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी क्षायोपशमिक लब्धिसे तथा केवलदर्शन क्षायिक लब्धिसे होनेवाले आवरणीयके अस्तित्वका कथन करनेवाले जिन वचन देखे जाते हैं।

शका—आगमप्रमाणसे भले ही दर्शनका अस्तित्व हो किन्तु युक्तिसे तो दर्शनका अस्तित्व सिद्ध नही होता ?

समाधान—नही, क्योकि युक्तियोसे आगममे बाधा नही आती।

शका—आगमसे भी तो युक्तिमे बाधा नही आना चाहिये ?

समाधान—सचमुच ही आगमसे युक्तिमे बाधा नही आती, किन्तु प्रस्तुत युक्तिमे बाधा अवश्य आती है क्योकि यह उत्तम युक्ति नही है। वह इस प्रकार है ज्ञानद्वारा केवल विशेषका ही ग्रहण नही होता, क्योकि सामान्यविशेषात्मक होनेसे ही द्रव्यका जात्यन्तर स्वरूप पाया जाता है। और दोनो नयोके विषयोको न ग्रहण करनेवाले ज्ञानमे साकारता नही बन सकती क्योकि वैसा मानने मे विरोध आता है। ऐसी स्थितिमे दर्शनका अभाव नहीं हो सकता, क्योकि वाह्य पदार्थोको छोड-कर दर्शनका व्यापार अन्तरग वस्तुमे होता है। ऐसा भी नही कह सकते कि केवलज्ञान ही दो शक्तियोसे युक्त होनेके कारण वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनोका परिच्छेदक है क्योकि ज्ञान स्वय एक पर्याय है और पर्याय की पर्याय नही होती। यदि पर्यायमे भी और पर्याय मानी जाय तो अवस्थान का कोई कारण न होनेसे अनवस्था दोष आता है। इसीलिए अन्तरग उपयोगसे वहिरग उपयोग भिन्न ही होना चाहिए, अन्यथा सर्वज्ञता नही बनती। अतएव आत्माको अन्तरग उपयोग और बहिरग उपयोग नामवाली दो शक्तियोंसे युक्त मानना चाहिये।

ज सामण्णं गहणं भावाण णेव कट्टु आयार।
अविसेसदूण अत्थे दसणमिदि भण्णदे समए॥

वस्तुओका आकार न करके व पदार्थोमे विशेषता न करके जो सामान्यका ग्रहण होता है उसे आगममे दर्शन कहा है।

इस सूत्रसे प्रस्तुत व्याख्यान विरुद्ध भी नही पडता है क्योकि उक्त सूत्रमे सामान्यशब्दका प्रयोग आत्माके लिए किया है। जीवका सामान्यपना असिद्ध भी नही है क्योकि नियमके विना ज्ञान-के विषयभूत किये गये त्रिकाल गोचर अनन्त अर्थ और व्यञ्जन पर्यायोसे सचित वहिरग और अन्तरग पदार्थोका जीवमे सामान्यत्व माननेमे कोई विरोध नही है।

शङ्का—इस प्रकार सामान्यसे दर्शनकी सिद्धि और केवलदर्शनकी सिद्धि भले हो जाये किंतु शेष दर्शनोकी सिद्धि नही हो सकती, क्योकि आगममे दर्शनकी प्ररुपणा बाह्यार्थविषयकरूपसे की गई है। यथा—

चक्खूण ज पयासदि दिस्सदि तं चक्खुदसण वेंति।
दिट्ठस्स य जं सरणं णायव्वं तं अचक्खु त्ति॥

परमाणु आदिआइं अंतिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं ॥

जो चक्षु इन्द्रियोंसे प्रकाशित होता या दीखता है उसे चक्षुदर्शन समझा जाता है। और जो (अन्य इन्द्रियोंसे प्रकाशित होता है) उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये। परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कन्ध तक जो मूर्तिकद्रव्य हैं उन्हे जो प्रत्यक्ष देखता है वह अवधिदर्शन है ?

समाधान—नही, इन गाथाओका परमार्थ आपने नही समझा। जो चक्षुओसे प्रकाशित होता है अर्थात् दीखता है वह चक्षुदर्शन है इसका अभिप्राय यह है कि चक्षुइन्द्रियज्ञानसे जो पहले ही सामान्य स्वशक्तिका अनुभव होता है जो चक्षुज्ञानकी उत्पत्तिमे निमित्तरूप है वह चक्षुदर्शन है।

शंका—उस चक्षुइन्द्रियसे प्रतिबद्ध अन्तरंग शक्तिमे चक्षुइन्द्रियकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—नही, यथार्थमे तो चक्षुइन्द्रियकी अन्तरंगमे ही प्रवृत्ति होती है किन्तु बालजनोको ज्ञान करानेके लिए अन्तरंगमे बहिरग पदार्थोके उपचारसे 'चक्षुओसे जो दीखता' है वही चक्षुदर्शन है ऐसा कथन किया है।

शका—गाथाका तोडमरोडकर अर्थ न कर सीधा अर्थ क्यो नही करते ?

समाधान—नही, क्योकि वैसा करनेमे पूर्वोक्त समस्त दोषोका प्रसग आता है।

गाथाके उत्तरार्धका अर्थ इस प्रकार है—जो देखा गया है अर्थात् शेष इन्द्रियोके द्वारा जाना गया है उससे जो सरण अर्थात् ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये। चक्षुइन्द्रियोको छोड शेष इन्द्रियज्ञानोकी उत्पत्तिसे पूर्व ही अपने विषयमे प्रतिबद्ध स्वशक्तिका सामान्यसे संवेदन या अनुभव होता है जो अचक्षुज्ञानकी उत्पत्तिमे निमित्तभूत है वह अचक्षुदर्शन है ऐसा उक्तकथनका अभिप्राय है। द्वितीय गाथाका अभिप्राय इस प्रकार है—'परमाणुसे लगाकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हे जिसके द्वारा साक्षात् देखता या जानता है वह अवधिदर्शन है ऐसा जानना चाहिये, परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त जो पुद्गल द्रव्य स्थित हैं उनके प्रत्यक्षज्ञानसे पूर्व ही जो अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका निमित्तभूत स्वशक्ति विषयक उपयोग होता है वही अवधिदर्शन है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा ज्ञान और दर्शनमे कोई भेद नही रहता।

[धवला, पु० ७, पृ, ९६ आदि]

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥१६१॥

केवलदर्शनी जीव केवलज्ञानियोके समान हैं ॥१६१॥

चूँकि केवलज्ञानसे रहित केवलदर्शन नही पाया जाता है इसलिये दोनो राशियोका प्रमाण समान है।

शका—श्रुतज्ञान और मन पर्यय ज्ञानका दर्शन क्यो नही होता ?

समाधान—श्रुतज्ञानका दर्शन तो इसलिये नही होता क्योकि वह मतिज्ञानपूर्वक होता है। इसी तरह मनःपर्ययज्ञानका भी दर्शन नही है क्योकि वह भी मतिज्ञानपूर्वक होता है।

शका—यदि दर्शनका स्वरूप स्वरूपसंवेदन है तो इन दोनोका भी दर्शन होना चाहिये ?

समाधान—नही, क्योकि उत्तर ज्ञानकी उत्पत्तिके निमित्तभूत प्रयत्नविशिष्ट स्वसवेदनको दर्शन माना है। परन्तु केवलीमे यह क्रम नही पाया जाता है क्योकि उनमे अक्रमसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृत्ति होती है। किन्तु छद्मस्थोमे इन दोनोकी अक्रमसे प्रवृत्ति नही होती, क्योकि आगम के इस वचनसे कि छद्मस्थोके दोनो उपयोग एक साथ नही होते हैं उसका प्रतिषेध है और ज्ञानके पश्चात् दर्शन होता नही है क्योकि आगममे कहा है—दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है किन्तु ज्ञानपूर्वक दर्शन नही होता।

[धवला, पु० ३, पृ ४५६-५७]

भव्यत्व-अभव्यत्वचर्चा

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥१८॥

भव्यमार्गणानुसार भव्यजीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥१८॥

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥१९॥

भव्यपना अनादि सान्त होता है ॥१९॥

क्योकि अनादिरूपसे समागत भव्यभावका अयोगकेवलीके अन्तिम समयमे विनाश पाया जाता है।

शंका—अभव्यके समान भी भव्य जीव होता है तब फिर भव्यभावको अनादि अनन्त क्यो नही कहा ?

समाधान—नही, क्योकि भव्यपनेमे अविनाश शक्तिका अभाव है।

शका—यहाँ शक्तिका ही अधिकार है, व्यक्तिका नही, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्रमे भव्यत्वको अनादि सान्त कहा है इसीसे जाना जाता है कि यहाँ शक्तिका अधिकार है।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८५ ॥

भव्य जीव सादिसान्त भी होता है ॥ १८५ ॥

शका—अभव्य तो भव्य हो नही हो सकता क्योकि भव्यत्वभाव और अभव्यत्वभावमे परस्पर अत्यन्ताभाव है अत दोनो भाव एक जीवमे क्रमसे भी नही रह सकते। और न सिद्ध ही भव्य होता है क्योकि समस्त आस्रवोके नष्ट हो जानेपर पुनः उनको उत्पत्ति माननेमे विरोध आता है। अत भव्यत्वभाव सादि नही है ?

समाधान—यह दोष नही है क्योकि पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नही किया तबतक जीवका भव्यत्व अनादि अनन्त है। क्योकि तबतक उसका ससार अनादि अनन्त है। किन्तु सम्यक्त्वको ग्रहण कर लेनेपर अन्य ही भव्यभाव उत्पन्न हो जाता है क्योकि सम्यक्त्व उत्पन्न हो जानेपर फिर केवल अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र काल तक ससारमे स्थिति रहती है। इसी प्रकार एक समय कम अर्धपुद्गल परिवर्तनकालवाले, दो समय कम अर्धपुद्गल परिवर्तन ससारवाले, आदि जीवोके पृथक् पृथक् भव्यभाव कहना चाहिये। इससे भव्योका सादि-सान्तपना सिद्ध हो जाता है ॥

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८६ ॥

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १८७ ॥

जीव अभव्यसिद्धिक कितने काल तक होते है ?

अनादि अनन्त काल तक ॥ १८६-१८७ ॥

शङ्का—अभव्यभाव व्यञ्जनपर्याय है। इस लिए उसका विनाश अवश्य होना चाहिए, नही तो अभव्यत्वके द्रव्य होनेका प्रसंग आयगा ?

समाधान—अभव्यभाव भले ही व्यञ्जन पर्याय हो, किन्तु सभी व्यजन पर्यायका नाश अवश्य होना चाहिए ऐसा कोई नियम नही है, क्योकि ऐसा नियम मानने पर एकान्तवादका प्रसग आयेगा। ऐसा भी नियम नही है कि जो नष्ट न हो वह द्रव्य है क्योकि जिसमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं उसे द्रव्य माना गया है। [धवला, पु ७, पृ १७६-७८]

धर्मध्यान और शुक्लध्यान

शङ्का—यदि समस्त समयसद्भाव धर्म्यध्यानका ही विषय है तो शुक्लध्यानका कोई विषय शेप नही रहता ?

समाधान—यह दोष नही है क्योंकि विषयकी अपेक्षा दोनो ध्यानोमे कोई भेद नही है।

शंका—यदि ऐसा है तो दोनो ही ध्यानोमे एकपना प्राप्त होता है ? क्योकि दशमशक, सिह, भेडिया, व्याघ्र, श्वापद, और भालू द्वारा भक्षण किया गया भी, वसूला द्वारा छीला गया भी, करोतो द्वारा फाडा गया भी, दावानलके शिखामुख द्वारा ग्रसा गया भी, शीतवात और आतप द्वारा बाधा दिया गया हुआ भी, और सैकडो करोडो अप्सराओके द्वारा लालित किया गया भी जीव जिस अवस्थामे ध्येयसे चलित नही होता वह जीवकी अवस्था ध्यान है। यह स्थिर भाव भी दोनो ध्यानोमे समान है अन्यथा ध्यानभावकी उत्पत्ति नही हो सकती ?

समाधान—इसका परिहार कहते हैं—यह सत्य है कि इन दोनोके स्वरूपोकी अपेक्षा दोनो ही ध्यानोमे कोई भेद नही है। किन्तु धर्मध्यान एक वस्तुमे अल्पकालतक रहता है, क्योकि कषाय-परिणाम गर्भगृहके भीतर स्थित दीपकके समान चिरकालतक स्थिर नही रहता।

शङ्का—धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोके ही होता है यह कैसे जाना ?

समाधान—जिनदेवका उपदेश है कि असयत सम्यग्दृष्टि, संयतासयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त-क्षपक सयत और उपशामक अपूर्वकरण, क्षपक और उपशामक अनिवृत्तिकरण तथा क्षपक और उपशामक सूक्ष्मसाम्परायसयतोके धर्म्यध्यान होता है। इससे जाना कि धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोके होता है।

परन्तु शुक्लध्यानके एक पदार्थमे स्थित रहनेका काल धर्म्यध्यानके अवस्थान कालसे संख्यात गुणा है क्योकि वीतरागपरिणाम मणिकी शिखाके समान बहुत कालतक भी चलायमान नही होता।

शङ्का—उपशान्तकषाय गुणस्थानमे पृथक्त्ववितर्कविचार ध्यानका अवस्थान अन्तर्मुहूर्त काल ही पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नही है क्योकि वीतरागताका अभाव होनेसे उसका विनाश हो जाता है।

शङ्का—उपशान्तकषायके ध्यानका अर्थसे अर्थान्तरमे गमन देखा जाता है ?

समाधान—नही, क्योकि अर्थसे अर्थान्तरमे गमन होनेपर भी चित्त अन्यत्र नही जाता, अत ध्यानका विनाश नही होता।

शका—वीतरागताके रहते हुए भी क्षीणकषायके होनेवाले एकत्ववितर्क अवीचार ध्यानका विनाश देखा जाता है ?

समाधान—नही, क्योकि आवरणका अभाव होनेसे केवली जिनका उपयोग अशेष द्रव्य-पर्यायोमे उपयुक्त होने लगता है इसलिये एक द्रव्य या एक पर्यायमे अवस्थानका अभाव देखकर उस ध्यानका अभाव कहा है। [धवला पु० १३, पृ० ७४-७५]

योग

शङ्का—सयोग यह कौन-सा भाव है ?

समाधान—सयोग यह अनादि पारिणामिक भाव है। इसका कारण यह है कि योग न तो औपशमिकभाव है क्योकि मोहनीय कर्मका उपशम नही होने पर भी योग पाया जाता है। न वह क्षायिक भाव है क्योकि आत्मस्वरूपसे रहित योगकी कर्मोके क्षयसे उत्पत्ति माननेमे विरोध है। योग घातिकर्मोदयजनित भी नही है, क्योकि घातिकर्मोदयके नष्ट होने पर सयोगकेवलिमे योगका सद्भाव पाया जाता है। न योग अघातिकर्मोदय जनित ही हैं क्योकि अयोगकेवलीके अघातिकर्म-का उदय होने पर भी योग नही पाया जाता। योग शरीरकर्मोदय जनित भी नही है क्योकि पुद्गलविपाकी प्रकृतियोके जीव परिस्पन्दनके कारण होनेमे विरोध हैं।

शङ्का—कार्मण शरीर पुद्गलविपाकी नही है, क्योकि उससे पुद्गलोके वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, सस्थान आदिका आगमन आदि नही पाया जाता। इस लिए योगको कार्मण शरीरसे उत्पन्न मानना चाहिए ?

समाधान—नही, क्योकि सब कर्मोका आश्रय होनेसे कार्मण शरीर भी पुद्गलविपाकी ही है।

शङ्का—कार्मण शरीरका उदय विनष्ट होनेके समयमे ही योगका विनाश देखा जाता है अत योग कार्मणशरीर जनित है ?

समाधान—नही, क्योकि यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाशके अनन्तर ही विनष्ट होने वाले पारिणामिक भव्यत्व भावको भी औदायिकपनेका प्रसग प्राप्त होगा।

अत योगको पारिणामिकपना सिद्ध होता है। अथवा योग औदायिक भाव है क्योकि शरीर-नामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात् ही योगका विनाश पाया जाता है और ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार भी नही आता, क्योकि कर्मसम्बन्धके विरोधी पारिणामिक भावकी कर्मसे उत्पत्ति माननेमे विरोध आता है। [धवला पु ५, पृ २२५-२२६]

जोगाणुवादेन मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ? ॥३२॥

योगमार्गणानुसार जीव मनोयोगी, वचनयोगी और कामयोगी कैसे होता है ॥३२॥

योग क्या औदयिक भाव है या क्षायोपशमिक या पारिणामिक या क्षायिक या औपशामिक ? योग क्षायिक तो हो नही सकता, क्योकि वैसा माननेसे समस्त कर्मोके उदयसे युक्त ससारी जीवोके योगके अभावका प्रसग आता है तथा समस्त कर्मोके उदयसे रहित सिद्धोमे योगके अस्तित्व का प्रसग आता है। योग परिणामिक भी नही है क्योकि वैसा माननेपर क्षायिक माननेसे उत्पन्न होने वाले सब दोषोका प्रसंग आता है। योग औपशमिक भी नही है क्योकि औपशमिक भावसे रहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे योगके अभावका प्रसग आता है। योग घातिकर्मके उदयसे भी उत्पन्न नही होता, क्योकि वैसा होनेपर घातिकर्मोके उदयसे रहित केवलीमे योगके अभावका प्रसग आता है। योग अघातिकर्मोके उदयसे भी उत्पन्न नही होता, वैसा होनेपर अयोगकेवलीमे योगके सद्भावका प्रसग आयेगा। योग घातिकर्मोके क्षयोपशमसे भी उत्पन्न नही हैं क्योकि इससे भो सयोगकेवलीमे योगके अभावका प्रसग आयेगा। योग अघातिकर्मोके क्षयोपशमसे भी उत्पन्न नही है क्योकि अघातिकर्मोमे सर्वघाती और देशघाती स्पर्धकोका अभाव होनेसे क्षयोपशमका भी अभाव है। यह सब मनमे विचार कर पूछा गया है कि जोव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ?

खओवसमियाए लद्धीए ॥३३॥

क्षायोपशमिकलब्धिसे जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होता है ॥३३॥

शका—जीव प्रदेशोके सकोच और विस्ताररूप परिस्पन्दको योग कहते हैं। यह परिस्पन्द कर्मोके उदयसे उत्पन्न होता है क्योकि कर्मोदयसे रहित सिद्धोके नही पाया जाता। अयोगकेवलीमे योगका अभाव होनेसे यह कहना उचित नही है कि योग औदयिक नही है क्योकि यदि अयोगकेवलीमे योग नही होता तो शरीरनामकर्मका उदय भी नही होता। शरीरनामकर्मके उदयसे होनेवाला योग उस कर्मोदयके विना नही हो सकता, क्योकि वैसा माननेसे अतिप्रसग दोष आता है। इस प्रकार जब योग औदयिक है तब उसे क्षायोपशमिक क्यो कहा जाता है ?

समाधान—नही, क्योकि शरीरनामकर्मके उदयसे शरीर बननेके योग्य बहुतसे पुद्गलोका सचय होनेपर वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयाभावसे उन्ही पुद्गलोके सदवस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण क्षायोपशमिक कहलानेवाला वीर्य बढता है। उस वीर्यको पाकर_यत जीवप्रदेशोकासकोच-विस्तार बढता है इसीलिये योगको क्षायोपशमिक कहा है।

शका—यदि वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे जनित बलकी वृद्धि और हानिसे जीवप्रदेशोके परिस्पन्दकी वृद्धि-हानि होती है तब तो अन्तरायकर्मका क्षय हो जानेसे सिद्धोमे योगकी बहुलताका प्रसग आता है ?

समाधान—नही, क्योकि क्षायोपशमिकके बलसे क्षायिकबल भिन्न देखा जाता है। अत क्षायोपशमिक बलसे वृद्धि, हानिको प्राप्त होनेवाला जीवप्रदेशोका परिस्पन्द क्षायिकबलसे वृद्धि-हानिको प्राप्त नही होता। क्योकि ऐसा माननेसे अतिप्रसंग दोष आता है।

शंका—यदि योग वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है तो सयोगकेवलीमे योगके अभावका प्रसंग आता है ?

समाधान—नही आता, क्योकि योगमे क्षायोपशमिक भाव तो उपचारसे माना गया है। असलमे तो योग औदायिक है और औदायिक योगका सयोगकेवलीमे अभाव माननेमे विरोध आता है।

वह योग तीन प्रकार है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। मनोवर्गणासे निष्पन्न हुए द्रव्यमनके अवलम्बनसे जो जीवका संकोच-विकोच होता है वह मनोयोग है। भाषावर्गणासम्बन्धी पुद्गलस्कन्धोके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोका सकोच-विकोच होता है वह वचनयोग हैं। जो चतुर्विधा शरीरोके अवलम्बनसे जीवप्रदेशोका सकोच-विकोच होता है वह काययोग है।

[धवला पु० ७, पृ० ७४-७६]

मिथ्यादृष्टि जीवोंका ज्ञान अज्ञान है

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोका ज्ञान अज्ञान कैसे है ?

समाधान—क्योकि उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नही करता।

शंका—ज्ञानका क्या कार्य है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है। मिथ्यादृष्टि जीवोमे वह कार्य नही है इसलिये उनका ज्ञान अज्ञान है। यदि अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव लिया जायेगा तो जीवके विनाशका प्रसग आयेगा।

शंका—दयाधर्मको माननेवाली जातियोमे उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टिमे तो श्रद्धान पाया जाता है ?

समाधान—नही, क्योकि आप्त, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके दयाधर्म आदिमे यथार्थ श्रद्धान होनेका विरोध है।

ज्ञानका कार्य न करनेपर ज्ञानको अज्ञान कहनेका व्यवहार लोकमे अप्रसिद्ध नहीं है, क्योकि पुत्रका कार्य न करनेवाले पुत्रमे भी लोकमे अपुत्र व्यवहार देखा जाता है।

[धवला पु० ५ पृ० २२४]

इन्द्रियका अर्थ

शंका—जिन जीवोके दो इन्द्रियाँ पाई जायें उन्हे द्वीन्द्रिय कहते हैं ऐसा ग्रहण करनेमे क्या दोष है ?

समाधान—उपर्युक्त अर्थ ग्रहण करनेपर अपर्याप्त कालमे विद्यमान जीवोके इन्द्रिया नही पाई जानेसे उनके अग्रहणका प्रसंग प्राप्त होगा।

शंका—क्षयोपशमको इन्द्रिय कहते हैं, द्रव्येन्द्रियको इन्द्रिय नही कहते।

समाधान—नही, क्योकि सयोगकेवलीका क्षयोपशम नष्ट हो जानेसे उनको अतीन्द्रियपनेका प्रसंग आता है।

शंका—आने दो ?

समाधान—नही, क्योकि सूत्रमे सयोगकेवलीको पञ्चेन्द्रिय कहा है।

यथा-'पञ्चेन्द्रिय जीव सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलि पर्यन्त कितने हैं।' [धवला पु० ३ पृ० ३११-१२]

पृथिवीकायिकका अर्थ

यहाँ पृथिवी है काय जिनके उन्हे पृथिवीकायिक जीव कहते है ऐसा अर्थ नही करना चाहिये, क्योकि ऐसा अर्थ करनेपर विग्रहगतिमे विद्यमान जीवोंके अकायित्वका अर्थात् पृथिवीकायित्वके अभावका प्रसंग आता है।

शका—तो फिर पृथिवीकायिकका क्या अर्थ करना चाहिये ?

समाधान—पृथिवीकायनामकर्मके उदयसे युक्त जीवोंको पृथिवीकायिक कहते है ऐसा अर्थ करना चाहिये।

शंका—कर्मके भेदोमे तो कोई इस नामका कर्म नही है ?

समाधान—यह कर्म एकेन्द्रिय नामकर्मके भीतर गर्भित है।

शका—यदि ऐसा है तो सूत्रपठित कर्मोकी संख्याका नियम नही रहता।

समाधान—सूत्रमे कर्म आठ ही हैं या एकसौ अडतालीस ही हैं, इसप्रकार अन्य सख्याका निषेध करनेवाला एवकार (ही) पद नही है।

शका—तो फिर कर्म कितने है ?

समाधान—लोकमे कर्मोके हाथी, घोडा, भेडिया, भौरा, पतग, खटमल आदि जितने फल पाये जाते हैं उतने ही कर्म भी हैं। उनमे बादरनामकर्मके उदयसे युक्त जीव बादर कहलाते है।

शंका—स्थूलशरीरवाले जीवोको बादर क्यो नही कहते ?

समाधान—नही, क्योकि वेदनक्षेत्र विधानसे बादर एकेन्द्रियोकी अवगाहनासे सूक्ष्म एकेन्द्रियोकी अवगाहना बहुत पाई जाती है इसलिये स्थूलशरीरवाले जीवोंको बादर नही कह सकते। अत जिनका शरीर प्रतिघातयुक्त है वे बादर हैं और अन्य पुद्गलोंमे जिनका शरीर अप्रतिघाती होता है वे सूक्ष्म जीव हैं।

एक-एक जीवके प्रति जो शरीर होता है उसे प्रत्येक कहते हैं। जिन जीवोका प्रत्येकशरीर होता है वे प्रत्येकशरीरजीव हैं। सूत्रमे प्रत्येकशरीरपदका निर्देश साधारणशरीर वनस्पतिकायिकके प्रतिषेधके लिये किया है। पृथिवीकायिक आदि जीव प्रत्येकशरीर ही होते हैं।

शका—सूत्रमे पृथिवीकायिक आदि जीवोको प्रत्येक नाम क्यो नही दिया गया ?

समाधान—उनमे प्रत्येकशरीर सभव ही है, असंभव नहीं है, इसलिये उनके साथ प्रत्येक पद नही लगाया गया, क्योकि व्यभिचारके या उसकी सभावनाके होनेपर विशेषण सार्थक होता है, ऐसा न्याय है।

शंका—विग्रहगतिमे वर्तमान वनस्पतिकायिक जीव क्या प्रत्येकशरीर है या साधारण-

शरीर ? प्रत्येकशरीर तो हो नही सकते, क्योकि कार्मणकाययोगमे वर्तमान वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते हैं अत वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरजीवोके अनन्तपनेका प्रसग आता है। परन्तु सूत्रमे उनका प्रमाण असख्यात लोकमात्र कहा हैं। तथा वे जीव साधारणशरीर भी नही हो सकते क्योकि उनमे साधारणजीवोका लक्षण नही पाया जाता। और प्रत्येकशरीर तथा साधारण-शरीरसे भिन्न वनस्पतिकायिक जीव होते नही हैं। इसलिये जिनका शरीर प्रत्येक है वे प्रत्येक-शरीर हैं यह कथन घटित नही होता है ?

समाधान—जिस जीवने एक शरीरमे स्थित होकर अकेले ही सुख-दु.खके अनुभव करने योग्य कर्म उपार्जित किया है वह प्रत्येकशरीर है। तथा जिस जीवने एक ही शरीरमे स्थित बहुत जीवोके साथ सुखदु खरूप कर्मफलके अनुभव करने योग्य कर्म उपार्जित किया है वह जीव साधा-रणशरीर है। परन्तु जिसकी आयु छिन्न नही हुई है अर्थात् जो जीव अपनी पर्यायको छोडकर वनस्पतिकायमे उत्पन्न नही हुआ है उस जीवके इसप्रकारका प्रत्येक या साधारण व्यपदेश नही हो सकता क्योकि उनके प्रत्यासत्ति (उस पर्यायसे सम्बन्ध) का अभाव है। विग्रहगतिमे तो प्रत्यासत्ति है इसलिये वहाँ उक्त व्यपदेश होता है इसलिये पूर्वोक्त दोष सभव नहो है। अथवा प्रत्येक शरीरनामकर्मके उदयसे युक्त वनस्पतिकायिकजीव प्रत्येकशरीर है और साधारणनामकर्मके उदय-से युक्त वनस्पतिकायिकजोव साधारणशरीर है ऐसा कथन करना चाहिये।

शंका—शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमे दोनो शरीरोमेंसे किसी एकका उदय होता है। इसलिये विग्रहगतिमे रहनेवाले जीवोके प्रत्येकशरीर या साधारणशरीर सज्ञा प्राप्त नही होती ?

समाधान—यह दोष सभव नही है क्योकि विग्रहगतिमे भी प्रत्यासत्ति है अत उपचारसे प्रत्येक शरीर या साधारणशरीर सज्ञा सभव है। अथवा विग्रहगतिमे वर्तमान अनन्त जीव साधारण-नामकर्मके उदयके परवश परस्परमे अनुगत होनेसे एकत्वको प्राप्त हुए एक शरीरमे रहते हैं इस-लिये वे प्रत्येकशरीर नही हैं। [धवला पु ३, पृ ३३२-३३२]

सामायिक और छेदोपस्थापना

द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेकी अपेक्षा जिन्होने 'मैं सर्वसावद्यसे विरत हूँ' इस प्रकार एक यमको स्वीकार किया है वे सामायिकशुद्धिसयत कहे जाते हैं। तथा वे हो जीव पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेकी अपेक्षा पूर्वोक्त यमके तीन, चार, पाच आदि भेद करके स्वीकार करनेपर छेदोपस्थापना शुद्धि सयत कहे जाते हैं।

शङ्का—दोनो नयोका अवलम्बन क्या क्रमसे होता है या अक्रमसे। अक्रमसे तो हो नही सकता, क्योकि परस्परमे विरुद्ध भेद और अभेदका एक साथ व्यवहार नही बन सकता। यदि क्रम से होता हैं तो सामायिकशुद्धिसयत जीव छेदोपस्थापनाशुद्धिसयत नही हो सकते क्योकि एकत्वरूप परिणामोका भेदरूपपरिणामोंके साथ विरोध है। उसी प्रकार छेदोपस्थापनशुद्धिसयत जीव भी उसी समय सामायिकशुद्धिसयत नही हो सकते, क्योकि भेदरूप परिणामोका अभेदरूप परिणामोके साथ विरोध है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर सर्व सयमियोके एक ही यम होता है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करने पर प्रत्येक सयमीके पाच पाच सयम होते हैं। एक जातिके

परिणाम एकान्तसे प्रतिपक्षी परिणामोंसे निरपेक्ष होते है ऐसा नही है। ऐसा माननेपर दुर्नयपनेकी आपत्ति आती है। इसलिये जो सामायिकशुद्धिसयत हैं वे ही छेदोपस्थापनाशुद्धिसयत है और जो छेदोपस्थापनाशुद्धिसयत है वे ही सामायिकशुद्धिसयत है।

[धवला—पु० ३ पृ० ४४७-४९]

अनन्त और असंख्यातमें अन्तर

शङ्का—सादिसान्त मिथ्यात्वका काल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन कैसे है ?

समाधान—एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीत संसारी जीव अधःप्रवृत्तकरण अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरणको करके सम्यक्त्वगुणके प्रथम समयमे ही सम्यक्त्व गुणके द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत ससारीपना हटाकर व परीतससारी होकर अधिक-से-अधिक अर्धपुद्गल परावर्तनकाल तक ही ससारमे ठहरता है। सम्यक्त्वग्रहणके प्रथम समयमे ही मिथ्यात्वपर्याय नष्ट हो जाती है।

शंका—उत्पत्ति और विनाशका एक ही समय कैसे है ?

समाधान—जैसे मिट्टीरूप द्रव्य एक ही समयमे पिण्डाकारसे नष्ट और घटाकारसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार कोई जीव सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपशमसम्यक्त्वके कालमे रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इसलिये वह मिथ्यात्वके साथ सादि रूपसे उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्यायसे विनष्ट हुआ।

शंका—मिथ्यात्व नाम पर्यायका है। वह उत्पाद और विनाश लक्षण वाली है। उसमे स्थितिका अभाव है। यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं तो मिथ्यात्वको द्रव्यपनेका प्रसग आता है क्योकि उत्पाद, स्थिति और भग द्रव्यका लक्षण है ऐसा आर्षवचन है ?

समाधान—यह दोष नही है क्योकि जो एक साथ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यलक्षण वाला है वह द्रव्य है और जो क्रमसे उत्पाद, व्यय, स्थितिवाला होता है वह पर्याय है ऐसा जिनभगवानका उपदेश है।

शंका—यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज, वायुको पर्यायपना प्राप्त होता है ?

समाधान—उन्हे पर्यायपना तो हमे इष्ट ही है।

शंका—किन्तु लोकमे तो उन्हे द्रव्य माना जाता है ?

समाधान—वह व्यवहार नैगमनयके निमितसे होता है। शुद्धद्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर छह ही द्रव्य हैं। और अशुद्धद्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर पृथिवी, जल आदि अनेक द्रव्य हैं, क्योकि व्यजनपर्यायके द्रव्यपना माना है। शुद्धपर्यायार्थिक नयकी विवक्षामे पर्यायके उत्पाद और विनाश दो ही लक्षण है और अशुद्धपर्यायार्थिक नयकी विवक्षामे क्रमसे तीनो भी लक्षण हैं क्योकि बज्रशिला, स्तम्भ आदिमे उत्पन्न हुई व्यजनपर्यायका अवस्थान पाया जाता है। मिथ्यात्व भी व्यजनपर्याय है इसलिये उसमे उत्पाद, स्थिति, भग क्रमसे तीनो ही अविरुद्ध हैं ऐसा जानना।

शंका—'जिन जीवोकी सिद्धि भविष्यकालमे होनेवाली है वे जीव भवसिद्ध है' इस वचनके अनुसार सब भव्य जीवोका व्युच्छेद हो जाना चाहिये अन्यथा उनके लक्षणमे विरोध आता है। व्ययसहित राशि नष्ट न हो ऐसी भी बात नही है, अन्यत्र ऐसा नही पाया जाता ?

समाधान—यह दोष नही है क्योकि भव्यराशि अनन्त है। और अनन्त उसे कहते हैं जो सख्यात या असख्यात राशिका व्यय होने पर भी अनन्त कालमे भी समाप्त नही होता।

शका—यदि ऐसा है तो व्ययसहित अर्धपुद्गल परिवर्तन आदि राशियोका अनन्तपना समाप्त हो जाता है ?

समाधान—हो जाओ समाप्त, उसमे क्या दोष है ?

शंका—किन्तु सूत्र तथा आचार्योके व्याख्यानोमे उनमे अनन्तत्वका व्यवहार पाया जाता है ?

समाधान—उनमे अनन्तत्वका व्यवहार औपचारिक है। उसका खुलासा इस प्रकार है—जो स्तम्भ प्रत्यक्ष प्रमाणसे उपलब्ध है वह जैसे उपचारसे प्रत्यक्ष है ऐसा लोकमे व्यवहार पाया जाता है उसी प्रकार अवधिज्ञानके विषयका उलंघन करके जो राशियाँ स्थित हैं वे सब अनन्त प्रमाण केवलज्ञानके विषय होनेसे उपचारसे अनन्त कही जाती हैं। अत उनमे सूत्र और आचार्योके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्यवहारसे यह व्याख्यान विरोधको प्राप्त नही होता। अथवा व्ययके रहते हुए भी सदा अक्षय रहने वाली कोई राशि है क्योकि सभी प्रतिपक्ष सहीत ही पाये जाते हैं। यह भव्यराशि भी अनन्त है अत व्ययके होते हुए भी अनन्त कालमे भी वह समाप्त नही होगी। [धवला, पु० ४, पृ ३३५-३३९]

शंका—अनन्त और असख्यातमे क्या भेद है ?

समाधान—एक-एक सख्याके घटाते जाने पर जो राशि समाप्त हो जाती वह असख्यात है और जो नही समाप्त होती वह अनन्त है।

शका—यदि ऐसा है तो व्ययसहित होनेसे नाशको प्राप्त होने वाला अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल भी असख्यात हो जायगा ?

समाधान—हो जाओ।

शंका—तो फिर उसे अनन्त क्यो कहा है ?

समाधान—अनन्तरूप केवलज्ञानका विषय होनेसे अर्धपुद्गल परावर्तनरूप काल भी उपचारसे अनन्त कहा जाता है।

शंका—केवलज्ञानका विषय तो सभी सख्याएं हैं अत सभीको अनन्तपना प्राप्त होगा।

समाधान—नही, क्योकि जो सख्याएं केवलज्ञानका विषय हो सकती हैं उनसे अतिरिक्त ऊपरको सख्याएं केवलज्ञानके सिवाय अन्य किसी भी ज्ञानका विषय नही हो सकती। अत एव ऐसी सख्याओमे अनन्तत्वके उपचारकी प्रवृत्ति हो जाती है। अथवा, जो सख्या पांचो इन्द्रियका विषय है वह सख्यात है। उसके ऊपर जो सख्या अवधिज्ञानका विषय है वह असंख्यात है और उसके ऊपर जो सख्या केवलज्ञानका विषय है वह अनन्त है। [धवला, पु० ४, पृ० २६७]

आयरहित जिन सख्याओका व्यय होनेपर सत्त्वका विच्छेद हो जाता है वे संख्याएं सख्यात और असख्यात सख्यावाली होती हैं। आयसे रहित जिन संख्याओका सख्यात और असख्यातरूपसे व्यय होनेपर भी विच्छेद नही होता है उनकी अनन्त सज्ञा है। सब जीवराशि अनन्त है अत उसका

विच्छेद नही होता। इसमे अर्धपुद्गलपरावर्तके साथ व्यभिचार नही आता, क्योकि अनन्तसज्ञा वाले केवल ज्ञानका विषय होनेसे उसकी अनन्तरूपसे सिद्धि है। [धवला, पु० १४, पृ० ३३५]

तिर्यञ्च व मनुष्योंका सुमेरुपर्वतपर गमन

शंका—सुमेरुपर्वतके शिखरपर चढनेमे समर्थ ऋषियोके क्या एक लाख योजन ऊपर उड-कर गमन करनेकी सभावना नही है ?

समाधान—भले ही सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमे ऋषियोके गमन करनेकी शक्ति रही आवे, किन्तु मनुष्यक्षेत्रके ऊपर एकलाख योजन उडकर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति नही है।

शंका—यदि ऐसा है तो पूर्वके वैरी देवोके प्रयोगसे तिर्यंचोका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है ?

समाधान—प्राप्त होता है तो होओ। उसमे कोई दोष नही है। [धवला, पु० ४, पृ० ११७]

हिंसाका स्वरूप

शंका—क्षीणकषायगुणस्थानमे ये निगोद जीव क्यो मरणको प्राप्त होते हैं ?

समाधान—क्योकि ध्यानसे निगोद जीवोकी उत्पत्ति और उनकी स्थितिके कारणका निरोध हो जाता है।

शंका—ध्यानके द्वारा अनन्तानन्त जीवराशिका घात करनेवालोको कैसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—अप्रमाद होनेसे

शंका—अप्रमाद किसे कहते है ?

समाधान—पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, तीन गुप्तियाँ और समस्त कषायोके अभावका नाम अप्रमाद है।

शंका—प्राण और प्राणियोके वियोगका नाम हिंसा है। उसे करनेवाले जीवोके अहिंसालक्षण पाँच महाव्रत कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—नही, क्योकि बहिरग हिंसा आस्रवरूप नही होती।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना

समाधान—क्योकि बाह्य हिंसाके अभावमे भी अन्तरग हिंसासे ही सिक्थक मत्स्यके बन्ध पाया जाता है। जिसके बिना जो नही होता वह उसका कारण है। इसलिये शुद्धनयसे अन्तरग हिंसा ही हिंसा है बहिरग हिंसा हिंसा नही है यह सिद्ध होता है। क्षीणकषायके अन्तरग हिंसा नही है क्योकि कषाय और असंयमका अभाव है। [धवला, पु० १४, पृ० ८९-९०]

सयम और विरतिमें अन्तर

शंका—सयम और विरतिमे क्या भेद है ?

समाधान—समितियोंके साथ अणुव्रत और महाव्रत संयम कहलाते है और समितियोके बिना महाव्रत और अणुव्रत विरति कहलाते हैं। [धवला, पु० १४, पृ० १२]

ग्रन्थमालाके संरक्षक-सदस्योंकी नामावली

१ श्री प० वसोरेलाल पन्नालालजी अकलतरा
२ ,, सेठ भगवानदास शोभालालजी, सागर
३ ,, मोहनलालजी सेठी, दुर्ग
४ ,, प० वालचन्द्र सुरेशचन्द्रजी, नवापारा-राजिम
५ ,, सेठ राजकुमारसिंहजी, इन्दौर
६ ,, ला० प्रेमचन्द्रजी, जैना वाँच दिल्ली
७ ,, ला० जुगमन्दिरदासजी, कलकत्ता
८ ,, ला० मोतीलालजी, दिल्ली
९ ,, प० रविचन्द्रजी, दमोह
१० ,, मोतीलालजी वडकुल जवलपुर
११ ,, स० सिं० धन्यकुमारजी, कटनी
१२ ,, वी० आर० सी०, कलकत्ता
१३ ,, वा० नृपेन्द्रकुमारजी, कलकत्ता
१४ ,, दि० जैन मारवाडी मन्दिर ट्रस्ट, इन्दौर
१५ ,, ला० रघुवरदयालजी, दिल्ली
१६ ,, वा० महेशचन्द्रजी जैन, हस्तिनापुर
१७ ,, सिं० वदलीदास छोटेलालजी, झाँसी
१८ ,, सिं० श्रीनन्दनलालजी, वीना
१९ ,, ला० प्रकाशचन्द्रजी, दिल्ली
२० ,, विजयकुमारजी मलैया दमोह
२१ ,, श्यामलालजी पाडवीय, मुरार
२२ ,, वैजनाथ सरावगी स्मृतिनिधि ट्रस्ट, कलकत्ता
२३ ,, सिं० हजारीलाल शिखरचन्दजी, अमर-पाटन
२४ ,, सिं० भागचन्द्रजी इटोरिया, दमोह
२५ ,, सेठ बावूलालजी, बाँदा
२६ ,, वा० नन्दलालजी, कलकत्ता
२७ ,, सेठ वृजलाल वारेलालजी, चिरमिरी
२८ ,, वा० नेमकुमारजी, आरा
२९ ,, सेठ मुन्नालाल भैयालालजी, टीकमगढ
३० ,, सेठ दयाचन्द वावूलालजी मैनवारवाले, टीकमगढ
३१ श्री चतुर्भुज राजारामजी वैद्य, टीकमगढ
३२ ,, प० किशोरीलालजी शास्त्री, टीकमगढ
३३. ,, सेठ धर्मदासजी वजाज, टीकमगढ
३४ ,, सेठ तुलसीराम लालचन्द्रजी, शाहगढ
३५ ,, सि० दौलतराम वावूलालजी, सोरई (झाँसी)
३६ श्रीमती धर्मपत्नी सेठ मल्थूरामजी, मडावरा (झाँसी)
३७ श्री भगवानदासजी सतभैया, सागर
३८ श्रीमती सिंघैन चम्पावाईजी माते० सिं० जीवनकुमारजी, सागर
३९ ,, सिं० अमीरचन्द्र देवचन्द्रजी, पाटन
४० ,, ला० फकीरचन्द्रजी, दिल्ली
४१. श्री प० वारेलालजी डा० कपूरचन्द्रजी, ठीकमगढ
४२ श्रीमती वृजमालाजी, वम्वई
४३ श्री राजवैद्य ला० महावीरप्रसादजी, दिल्ली
४४ ,, ला० नन्हेमलजी, दिल्ली
४५ ,, ला० अजित प्रसादजी, दिल्ली
४६ ,, वा० सुखमालचन्दजी, दिल्ली
४७ ,, ब्र० प० सरदारमलजी, सिरोज
४८ ,, प० मुन्नालालजी राधेलीय, सागर
४९ ,, वावू सीतारामजी, वाराणसी
५० ,, वा० सुमेरचन्दजी, वाराणसी
५१ ,, दि० जैन मन्दिर विजनौर
५२ ,, प० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, वाराणसी
५३ ,, प० वशीधरजी व्याकरणाचार्य, वीना
५४ ,, डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्री, आरा
५५ डॉ० दरवारीलालजी कोठिया, वाराणसी
५६ श्री प० हीरालालजी कौशल, दिल्ली
५७ ,, अ० भा० दि० जैन केन्द्रीय समिति, दमोह
५८ श्री प्रसन्नकुमारजी, गौरझामर (सागर)
५९ प० गुलावचन्द्रजी दर्शनाचार्य, जवलपुर

६० श्री प० मुन्नालाल चुन्नीलालजी, ललितपुर
६१ ,, सेठ बद्री प्रसादजी, पटना
६२ ,, बाबूलालजी फागुल्ल, वाराणसी
६३ प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला, वाराणसी
६४ श्री शीलचन्द्रजी, वाराणसी
६५ ,, बा० अतुल्यकुमारजी, कलकत्ता
६६ ,, सूरदासजी, ललितपुर
६७ ,, प० श्यामलालजी, ललितपुर
६८. ,, नीरजजी, सतना
६९ डॉ० भागचन्द्रजी, सीहोर
७० श्री विमलकुमार निहालचन्दजी, मडावरा
७१ श्री नवलकिशोरजी, गया
७२ सेठ चिरजीलालजी, वर्धा
७३ डॉ० भागचन्दजी भास्कर, नागपुर
७४ श्री बा० दीपचन्द्रजी, कानपुर
७५ ,, प० सुरेन्द्रकुमारजी वैद्य, बीना
७६ ,, रा० सा० चतुरचन्द्रकुमारजी, आरा
७७ ,, सि० कोमलचन्द्रजी राबेलीय, सागर
७८ ,, मोतीलाल हिराचन्द्रजी गाँधी, औरगाबाद
७९ ब्र० राजारामजी, भोपाल
८० डॉ० बाबूलालजी, बण्डा
८१ सेठ प्यारेलालजी, शाहगढ
८२ डॉ० नन्हेंलालजी, बण्डा
८३ सेठ धनप्रसादजी मुडरया, बण्डा
८४ मायजी कुन्दनलाल कपूरचन्दजी, बण्डा
८५ श्री रघुवरप्रसादजी बजाज, बण्डा
८६ श्रीमती क्षमाबाईजी, गुलगज-मलहरा
८७ चौ० गुलाबचन्द्र जीवनलालजी बजाज, बण्डा
८८ श्रीमती क्षमाबाईजी, बण्डा
८९ डॉ० पूरणचन्द्रजी, बण्डा
९० साव कन्हैयालालजी, बण्डा
९१ सि० छोटेलालजी, बण्डा
९२ सि० बट्टूलाल डॉ० मोतीलालजी, खुरई
९३ ब्र० डालचन्द्रजी टडैया, टीकमगढ
९४ ब्र० जयचन्द्रजी साव, कुण्डलपुर
९५ श्री रज्जूलालजी, बीना
९६ ,, कैलाशचन्द्रजी, गजबासौदा
९७ प० बाबूलालजी जमादार, बडौत
९८ ला० त्रिलोकचन्द्रजी, मेरठ
९९ दि० जैन महिला समाज, फतेहपुर
१०० डॉ० प्रेमसागरजी, बडौत
१०१ ला० भगवानदास अर्हद्दासजी, सहारनपुर
१०२ ला० विशम्बरदास महावीरप्रसादजी सर्राफ, दिल्ली
१०३ ,, जैनेन्द्रकिशोरजी जौहरी, दिल्ली
१०४ श्री हुकुमचन्द हीरालालजी मोदी, ललितपुर
१०५ श्रीमती सेठानी शातिबाईजी, सिवनी
१०६ श्री लखमीचन्द्रजी गुरहा, खुरई
१०७ ,, रामप्रसाद भैयालालजी ललितपुर
१०८ चौ० फूलचन्द पद्मचन्दजी ललितपुर
१०९ श्रीमनीराम बृजलालजी सर्राफ, ललितपुर
११० श्री ब्रजलालजी प्रानपुरावाले, ललितपुर
१११ ,, हीरालालजी सर्राफ, ललितपुर
११२ ,, मुन्नालाल कुन्दनलालजी सर्राफ, ललितपुर
११३ ,, बृजलाल शीलचन्दजी जैन, ललितपुर
११४ श्री सि० रज्जूलालजी, ललितपुर
११५ ,, बाबूलालजी बरया, ललितपुर
११६ श्री करणराय निहालचन्द्रजी जैन, वर्धा
११७ बा० गिन्नीलालजी जैन, कलकत्ता,
११८ श्री दि० जैन मदिर, मुगावली
११९ ,, जैन आदिराज अण्णा, शेडवाल
१२० डॉ० राजारामजी, आरा
१२१ प्रो० सुखनन्दनजी, बडौत
१२२. ,, खडगसेन उदयराज दि० जैन मदिर, वाराणसी
१२३ ला० सालिगराम सतीशचन्द्रजी, आगरा
१२४ ,, नाभिनन्दन दि० जैन मदिर, बीना
१२५ ,, प० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर
१२६ ला० शम्भूनाथजी जैन कागजी, दिल्ली
१२७ श्रीमती धर्मपत्नी श्री जयचन्द लालजी, फतेहपुर, (बाराबकी)
१२८ ला० जियालालजी, बडौत
१२९ बा० लक्ष्मीचन्द्रजी वकील, बडौत
१३० ला० हुकुमचन्द्रजी सर्राफ, बडौत (नेरट)

१३१ श्रीमती सुगन्धीबाईजी, सागर
१३२ श्री महावीर दि० जैन पारमार्थिक सस्था, सतना
१३३ ,, दि० जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर
१३४ ,, रतनलालजी, सरूपगज (सिरोही)
१३५ ,, दि० जैन स्वाध्याय गोष्ठी, ऐत्मादपुर
१३६ श्रीमती युवराज्ञी लक्ष्मीदेवीजी, वाराणसी
१३७ ,, विदुषी ब्र० चन्दाबाईजी, आरा
१३८ ,, नानीवहेन डगरचन्दजी, तलौद
१३९. श्रीमती मणिवहेन श्रीकेदारलाल हुकुमचन्द्र जी शाह, तलौद
१४० सिं० भरोसेलाल दयाचन्द्रजी, मगरपुर
१४१ ,, सेठ भागचन्द्रजी, डौगरगढ
१४२ ,, प० जम्बूप्रसादजी शास्त्री सोरया, मडावरा
१४३ ,, आदीश्वरप्रसादजी, मुजफ्फरनगर
१४४ श्री दि० जैन गणेश वर्णी पुस्तकालय, कानपुर
१४५. ,, जैनबहादुरजी, कानपुर
१४६. वा० इन्द्रजीतजी, कानपुर
१४७ ,, मदनलाल महावीरप्रसादजी, कानपुर
१४८ श्रीमती समुद्रीबाई ध० प० श्रीहुकुमचदजी सतभैया, सागर
१४९ श्रीगौरीलालजी अजमेरा, भीलवाडा
१५० ,, फूलचन्द्र सुरेशचन्द्रजी, सतना
१५१ डॉ० ककूबाई केवलचन्द्र शहा, म्हरुवड, (सतारा)
१५२ ,, एस० के० जैन, रायपुर
१५३ श्री कपूरचन्द्रजी समैया, सागर
१५५ श्री दामोदरदास उदयचन्द्रजी, सागर
१५६ ,, चन्द्रकान्तकृष्ण डोर्ले, कोल्हापुर
१५७ ,, रामराव सितलाजी, दोडल, हिंगोली
१५८ श्री श्रीरतनलाल किशोरीलालजी मालवीय, नई दिल्ली
१५९ सिं० हरिश्चन्द्रजी जैन, जवलपुर
१६० वा० श्रवणकुमारजी जैन, कलकत्ता
१६१ वा० हिम्मतसिंहजी जैन, कलकत्ता
१६२ ,, वशीधरजुगलकिशोरजी सरावगी, कलकत्ता
१६३ सेठ मिश्रीलालजी काला, कलकत्ता
१६४ श्री दि० जैन मन्दिर चौक, भोपाल
१६५ ,, दि० जैन मुमुक्षुमडल सराफा चौक, भोपाल
१६६ ,, सुखलाल छोगमलजी सर्राफ, भोपाल
१६७ सिं० उमरावप्रसाद दयाचन्द्रजी, सोरई(झाँसी)
१६८, श्री सागरमल पन्नालालजी पटवारी, विनौता
१६९ ,, चुन्नीलाल वाबूलालजो भट्ट, खुरई
१७० श्रीमती वालासुन्दरीजी माते० स्व० ला० सुखवीरसिंह श्रीचन्द्रजी, वडौत
१७१ श्रीमती सुशीलावाईजो पाठिका, बीना
१७२ साहू श्रीशीतलप्रसादजी, कलकत्ता
१७३ डॉ० देवेन्द्रकुमारजी, इन्दौर
१७४. डॉ० हरीन्द्रभूषणजी, उज्जैन
१७५. श्री गुलावचन्द्रजी मत्री वीर वाचनालय, ढाना
१७६ ,, दि० जैन मदिर, जैसीनगर (सागर)
१७७ श्रीमती मिथलेशकुमारीजी जैन, कलकत्ता
१७८ सेठ जिनेश्वरप्रसादजी टडैया, ललितपुर
१७९ श्री गोरेलालजी जैन, भानगढ
१८० ,, दि० जैन मन्दिर, वडवानी
१८१ ,, नेमिचन्द्रजी जैन अजमेरा, धरमपुरी (धार)
१८२ श्री केशरलालजी विलाला, जयपुर
१८३ ,, प० ब्र० माणिकचन्द्रजी चवरे, न्यायतीर्थ, कारजा
१८४ ,, दि० जैन महिला समाज, चिलकाना (सहारनपुर)
१८५ ,, दीपचन्द्र मुलायचन्द्रजी मलैया, खुरई
१५६ ,, पन्नालालजी काकरिया, व्यावर
१८७ श्रीमती कैलाशवतीजी ध० प० चौधरी जयप्रसादजी, सुल्तानपुर
१८८ प्रो० अमृतलालजी शास्त्री, वाराणसी
१८९ श्री प० मोहनलालजी शास्त्री, जवलपुर
१९० डॉ० राजकुमारजी, आगरा
१९१ श्रीमती जमनावाईजी ध प श्री वृद्धिचन्द्रजी, दिल्ली
१९२ श्री रिखवचन्दजी वैराठी, जयपुर
१९३ ,, चन्द्रवशकुमारजी जे के नगर आसनसोल
१९४ ,, गुलावचन्द्रजी वैद्य, ककरवाहा (म० प्र०)

६० श्री प० मुन्नालाल चुन्नीलालजी, ललितपुर
६१ ,, सेठ बद्री प्रसादजी, पटना
६२ ,, बाबूलालजी फागुल्ल, वाराणसी
६३ प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला, वाराणसी
६४ श्री शीलचन्द्रजी, वाराणसी
६५ ,, बा० अतुल्यकुमारजी, कलकत्ता
६६ ,, सूरदासजी, ललितपुर
६७ ,, प० श्यामलालजी, ललितपुर
६८ ,, नीरजजी, सतना
६९ डॉ० भागचन्द्रजी, सीहोर
७० श्री विमलकुमार निहालचन्दजी, मडावरा
७१ श्री नवलकिशोरजी, गया
७२ सेठ चिरंजीलालजी, वर्धा
७३ डॉ० भागचन्दजी भास्कर, नागपुर
७४ श्री बा० दीपचन्द्रजी, कानपुर
७५. ,, प० सुरेन्द्रकुमारजी वैद्य, बीना
७६ ,, रा० सा० चतुरचन्द्रकुमारजी, आरा
७७ ,, सि० कोमलचन्द्रजी राघेलीय, सागर
७८ ,, मोतीलाल हिराचन्द्रजी गांधी, औरंगाबाद
७९ ब्र० राजारामजी, भोपाल
८० डॉ० बाबूलालजी, बण्डा
८१. सेठ प्यारेलालजी, शाहगढ
८२ डॉ० नन्हेंलालजी, बण्डा
८३ सेठ धनप्रसादजी मुहरया, बण्डा
८४ भायजी कुन्दनलाल कपूरचन्दजी, बण्डा
८५ श्री रघुवरप्रसादजी बजाज, बण्डा
८६ श्रीमती क्षमाबाईजी, गुलगज-मलहरा
८७ चौ० गुलाबचन्द्र जीवनलालजी बजाज, बण्डा
८८ श्रीमती क्षमाबाईजी, बण्डा
८९ डॉ० पूरणचन्द्रजी, बण्डा
९० साव कन्हैयालालजी, बण्डा
९१ सि० छोटेलालजी, बण्डा
९२ सि० बट्टूलाल डॉ० मोतीलालजी, खुरई
९३ ब्र० डालचन्द्रजी टडैया, टीकमगढ
९४ ब्र० जयचन्द्रजी साव, कुण्डलपुर
९५ श्री रज्जूलालजी, बीना
९६ ,, कैलाशचन्द्रजी, गजबासौदा
९७ प० बाबूलालजी जमादार, बडौत
९८ ला० त्रिलोकचन्द्रजी, मेरठ
९९ दि० जैन महिला समाज, फतेहपुर
१०० डॉ० प्रेमसागरजी, बडौत
१०१ ला० भगवानदास अर्हद्दासजी, सहारनपुर
१०२ ला० विशम्बरदास महावीरप्रसादजी सर्राफ, दिल्ली
१०३ ,, जैनेन्द्रकिशोरजी जौहरी, दिल्ली
१०४ श्री हुकुमचन्द हीरालालजी मोदी, ललितपुर
१०५ श्रीमती सेठानी शांतिबाईजी, सिवनी
१०६ श्री लखमीचन्द्रजी गुरहा, खुरई
१०७. ,, रामप्रसाद भैयालालजी ललितपुर
१०८ चौ० फूलचन्द पद्मचन्दजी ललितपुर
१०९ श्रीमनीराम बृजलालजी सर्राफ, ललितपुर
११० श्री ब्रजलालजी प्रानपुरावाले, ललितपुर
१११ ,, हीरालालजी सर्राफ, ललितपुर
११२ ,, मुन्नालाल कुन्दनलालजी सर्राफ, ललितपुर
११३ ,, बृजलाल शीलचन्दजी जैन, ललितपुर
११४ श्री सि० रज्जूलालजी, ललितपुर
११५ ,, बाबूलालजी बरया, ललितपुर
११६ श्री करणराय निहालचन्द्रजी जैन, वर्धा
११७ बा० गिन्नीलालजी जैन, कलकत्ता,
११८ श्री दि० जैन मंदिर, मुगावली
११९ ,, जैन आदिराज अण्णा, शेडवाल
१२० डॉ० राजारामजी, आरा
१२१ प्रो० सुखनन्दनजी, बडौत
१२२. ,, खडगसेन उदयराज दि० जैन मंदिर, वाराणसी
१२३ ला० सालिगराम सतीशचन्द्रजी, आगरा
१२४ ,, नामिनन्दन दि० जैन मंदिर, बीना
१२५ ,, प० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर
१२६ ला० शम्भूनाथजी जैन कागजी, दिल्ली
१२७ श्रीमती धर्मपत्नी श्री जयचन्द लालजी, फतेहपुर, (बाराबकी)
१२८ ला० जियालालजी, बडौत
१२९. बा० लक्ष्मीचन्द्रजी वकील, बडौत
१३० ला० हुकुमचन्द्रजी सर्राफ, बडौत (मेरठ)

१३१ श्रीमती सुगन्धीबाईजी, सागर
१३२ श्री महावीर दि० जैन पारमार्थिक सस्था, सतना
१३३ ,, दि० जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर
१३४ ,, रतनलालजी, सरूपगज (सिरोही)
१३५. ,, दि० जैन स्वाध्याय गोष्ठी, ऐत्मादपुर
१३६ श्रीमती युवराज्ञी लक्ष्मीदेवीजी, वाराणसी
१३७ ,, विदुषी ब्र० चन्दाबाईजी, आरा
१३८ ,, नानीवहेन डगरचन्दजी, तलौद
१३९ श्रीमती मणिवहेन श्रीकेदारलाल हुकुमचन्द्र जी शाह, तलौद
१४० सिं० भरोसेलाल दयाचन्द्रजी, मगरपुर
१४१ ,, सेठ भागचन्द्रजी, डोगरगढ
१४२ ,, प० जम्बूप्रसादजी शास्त्री सोरया, मडावरा
१४३ ,, आदीश्वरप्रसादजी, मुजफ्फरनगर
१४४ श्री दि० जैन गणेश वर्णी पुस्तकालय, कानपुर
१४५. ,, जैनवहादुरजी, कानपुर
१४६. वा० इन्द्रजीतजी, कानपुर
१४७ ,, मदनलाल महावीरप्रसादजी, कानपुर
१४८ श्रीमती समुद्रीवाई ध० प० श्रीहुकुमचदजी सतभैया, सागर
१४९ श्रीगौरीलालजी अजमेरा, भीलवाडा
१५० ,, फूलचन्द्र सुरेशचन्द्रजी, सतना
१५१ डॉं० ककूवाई केवलचन्द्र शहा, म्हरुवड, (सतारा)
१५२ ,, एस० के० जैन, रायपुर
१५३. श्री कपूरचन्द्रजी समैया, सागर
१५५ श्री दामोदरदास उदयचन्द्रजी, सागर
१५६. ,, चन्द्रकान्तकृष्ण डोर्ले, कोल्हापुर
१५७ ,, रामराव सितलाजी, दोडल, हिंगोली
१५८ श्री श्रीरतनलाल किशोरीलालजी मालवीय, नई दिल्ली
१५९ सिं० हरिश्चन्द्रजी जैन, जवलपुर
१६० वा० श्रवणकुमारजी जैन, कलकत्ता
१६१ वा० हिम्मतसिंहजी जैन, कलकत्ता
१६२ ,, वशीधर जुगलकिशोरजी सरावगी, कलकत्ता
१६३ सेठ मिश्रीलालजी काला, कलकत्ता
१६४ श्री दि० जैन मन्दिर चौक, भोपाल
१६५ ,, दि० जैन मुमुक्षुमडल सराफा चौक, भोपाल
१६६ ,, सुखलाल छोगमलजी सर्राफ, भोपाल
१६७ सिं० उमरावप्रसाद दयाचन्द्रजी, सोरई(झांसी)
१६८, श्री सागरमल पन्नालालजी पटवारी, विनौता
१६९ ,, चुन्नीलाल वावूलालजो भट्ट, खुरई
१७० श्रीमती वालासुन्दरीजी माते० स्व० ला० सुखवीरसिंह श्रीचन्द्रजी, वडौत
१७१ श्रीमती सुशीलाबाईजो पाठिका, वीना
१७२. साहू श्रीशीतलप्रसादजी, कलकत्ता
१७३ डॉ० देवेन्द्रकुमारजी, इन्दौर
१७४. डॉ० हरीन्द्रभूषणजी, उज्जैन
१७५ श्री गुलावचन्द्रजी मत्री वीर वाचनालय, ढाना
१७६ ,, दि० जैन मदिर, जैसीनगर (सागर)
१७७ श्रीमती मिथलेशकुमारीजी जैन, कलकत्ता
१७८ सेठ जिनेश्वरप्रसादजी टडैया, ललितपुर
१७९ श्री गोरेलालजी जैन, भानगढ
१८० ,, दि० जैन मन्दिर, वडवानी
१८१ ,, नेमिचन्द्रजी जैन अजमेरा, धरमपुरी (धार)
१८२. श्री केशरलालजी विलाला, जयपुर
१८३ ,, प० ब्र० माणिकचन्द्रजी चवरे, न्यायतीर्थ, कारजा
१८४ ,, दि० जैन महिला समाज, चिलकाना (सहारनपुर)
१८५ ,, दीपचन्द्र मुलायचन्द्रजी मलैया, खुरई
१५६ ,, पन्नालालजी काकरिया, व्यावर
१८७ श्रीमती कैलाशवतीजी ध० प० चौधरी जयप्रसादजी, सुल्तानपुर
१८८ प्रो० अमृतलालजी शास्त्री, वाराणसी
१८९ श्री प० मोहनलालजी शास्त्री, जवलपुर
१९० डॉं० राजकुमारजी, आगरा
१९१ श्रीमती जमनाबाईजी ध प श्री वृद्धिचन्द्रजी, दिल्ली
१९२ श्री रिखवचन्दजी वैराठी, जयपुर
१९३ ,, चन्द्रवशकुमारजी जे के नगर आसनसोल
१९४ ,, गुलावचन्द्रजी वैद्य, ककरवाहा (म० प्र०)

१९५ श्री मूलचन्द फूलचन्दजी, ललितपुर
१९६ ,, नेमिचन्दजी मगरौनीवाले, शिवपुरी
१९७ ,, गणपतराव खन्नाप्पा मिरजे, कोल्हापुर
१९८ ,, सेठ चन्दूलाल कस्तूरचदजी, वम्वई
१९९ ,, सेठ वालचन्द्र देवचन्द्रजी शहा, वम्वई
२०० ,, चौधरी रज्जूलाल मोतीलालजी, अशोकनगर
२०१ ,, माणिकचन्द्र वीरचन्दजी गांधी, फल्टन
२०२ ,, चन्द्रप्रभ दि जैन मन्दिर, कटनी
२०३ ,, फूलचन्द्र सौभाग्यमलजी गोधा, इन्दौर
२०४ ,, ला जयप्रकाश सत्यप्रकाशजी, मुजफ्फरनगर
२०५ ,, वा शीतलप्रसादजी मित्तल, मुजफ्फरनगर
२०६ ,, प० परमेष्ठीदासजी, ललितपुर
२०७ ,, नेमिचदजी गोदवाले, शिवपुरी
२०८ श्रीमती चम्पावाईजी, मलहरा
२०९ श्रीमती ठगनवाईजी, आरवी
२१० श्री जगदीशप्रसादजी, मुजफ्फरनगर
२११ ,, सुमेरचन्दजी, मुजफ्फरनगर
२१२ ,, दि. जैन मन्दिर, वहराइच
२१३ श्रीमती सुधा पटोरिया ध प डॉ नरेन्द्रकुमारजी पटोरिया, नागपुर
२१४ श्री एस पी देशमुख, आरा
२१५. श्रीमती राजकुमारीजी रावेलीय ध प सिं देवकुमारजी, कटनी
२१६ श्रीमती विमलाजी ध प प्रो मोतीलालजी विजय, कटनी
२१७ ला वावूलाल राजेन्द्रकुमारजी, गाजियावाद
२१८ श्री वाहुवली विद्यापीठ, वाहुवली (कोल्हापुर)
२१९ श्रीमती विदुषी गजावेनजी वाहुवली
२२०. डॉ अशोककुमारजी वी मगदुम अकली (ता मिरज)
२२१ श्रीरामगौडा तात्या पाटेल, जैनापुर (कोल्हापुर)
२२२ श्री हडमगौडा देवगोडा पाटिल, नीमसिरगांव (कोल्हापुर)
२२३ मार्ले एण्ड कम्पनी, साहूपुरी कोल्हापुर
२२४ श्री जनगौडा रामगौडा पाटिल, जयसिंहपुर
२२५ ,, धन्यकुमार वालगौडा पाटिल, कुम्भोज (कोल्हापुर)
२२६ ,, नेमिनाथ नानागवाडे, राजारामपुरी कोल्हापुर
२२७ व्र माणिकचन्द्रजी भीसीकर, वाहुवली
२२८ श्रीमती रमादेवी ध प डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर
२२९ प प्रसन्नकुमारजी, टीकमगढ
२३० श्री पार्श्वनाथ दि जैन मन्दिर, हाथरस
२३१ ,, सौभाग्यमलजी, वाराणसी
२३२ ,, शान्तिसागर स्वाध्याय मन्दिर उ–खानापुर (वेलगांव)
२३३. ला राजकृष्ण प्रेमचन्द्रजी दिल्ली
२३४ श्री मैनेजर, एस के सुगरमिल, हथुआ (विहार)
२३५ ,, मैनेजर, एस के सुगरमिल, लोरिया (विहार)
२३६. ,, वा सुमेरचन्द्रजी, आरा
२३७ ,, प्रो प्रेमचन्द्रजी जैन, डिब्रूगढ (आसाम)
२३८ श्री हुकमचन्द्रजी, मन्त्री दि जैन पारमार्थिक सस्था, सतना
२३९ ,, कैलाशचन्द्रजी, सतना
२४०, ,, मूलचन्द्रजी, सतना
२४१ ,, कोमलचन्द्रजी, सतना
२४२ ,, हेमचन्द्रजी, सतना
२४३ ,, वैद्य कुन्दनलालजी, सतना
२४४ ,, सेठ ऋषभदासजी, सतना
२४५ श्री सोमचन्द्रजी, सतना
२४६ ,, प्रकाशचन्द्रजी, सतना
२४७ ,, दयाचन्द्रजी अभियन्ता सिंचाई विभाग, सतना
२४८ ,, नेमिचन्द्रजी, सतना
२४९ श्रीमती क्रान्तिजी ध प प्राचार्य श्री ज्ञानचन्द्रजी, सतना

२५० श्री हिम्मतलाल एस शाह, अहमदाबाद
२४१ ,, रतनचन्द्रजी कल्याणपुरावाले, ललितपुर
२५२ ,, हीरालाल घूडमलजी हरदा, (म प्र.)
१५३ ,, धन्यकुमार मोहनलालजी दोगी, कोल्हापुर
२५४ ,, मानिकचन्द्रजी, भोपाल
२५५ ,, दि जैन मन्दिर, अमरपाटन
२५६ ,, सिं दौलतराम मगनलालजी सर्राफ, ललितपुर
२५७ ,, पुत्तूलाल जुग्गीलालजी सर्राफ, ललितपुर
२५८ ,, मथुराप्रसादजी वैद्य, ललितपुर
२५९ ,, माणिकचन्द्रजी सर्राफ, ललितपुर
२६० ,, कपूरचन्द्रजी पालीवाले, ललितपुर
२६१ ,, लक्ष्मणप्रसादजी खिरियावाले, ललितपुर
२६२ ,, खेमचन्द्र राजकुमारजी बजाज, दमोह
२६३. ,, पटवारी श्रीरामप्रसादजी, कटनी
२६४. ,, नायक मुन्नालालजी सर्राफ, बीना
२६५ ,, वा नरेन्द्रप्रसादजी, दिल्ली
२६६. ,, श्रीमन्त सेठ राजेन्द्रकुमारजी, विदिशा
२६७. ,, ला मदनलालजी सर्राफ, बडौत
२६८ श्री दि जैन मन्दिर प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर
२६९ ,, दि जैन महिला समाज, कलोल (उ गुजरात)
१७० ,, प्रो० उदयचन्द्रजी, वाराणसी
२७१. श्री सुरेशचन्द्रजी वडकुल, पनागर
२७२ ,, ज्ञानचन्द्रजी, कबूलनगर, दिल्ली
२७३ ,, दर्शनलाडजी, बम्बई
२७४ ,, प. विनयकुमारजी पथिक, मथुरा
१७५ श्री हुकमचन्द्रजी चूनावाले, कटनी
२७६ ,, पार्श्वनाथ दि जैन मन्दिर, रीठी
२७७ ,, ललीराम नन्दरामजी, मुरार
२७८. ,, वा नेमिचन्द्रजी एडवोकेट, सहारनपुर
२७९ श्रीमती केलादेवीजी ध प. स्व ला चमनलालजी, मेरठ
२८० श्री इन्दरचन्द्र विजयकुमारजी कौशल, छिन्दवाडा,
२८१ श्री लक्ष्मीचन्दजी हूमड, खण्डवा,
२८२ श्री पद्मचन्द्रजी सर्राफ, आगरा
२८३ ,, पचारामजी शास्त्री, बयाना (राजस्थान)
२८४ ,, सुरेन्द्र जिनाप्पा खेमलापूरे, वेलुदवागेवाडी, (वेलगांव)
२८५ ,, मौजीलालजी पिता श्री पन्नालालजी, भानपुरा
२८६. ,, घीसालाल जतनलालजी, नसिराबाद (राजस्थान)
२८७ श्री गम्भीरमलजी सेठी, नसिराबाद (राजस्थान)
२८८. ,, पन्नूलाल भवर लालजी, सोनी नसिराबाद
२८९. श्रीमती कमलादेवीजी ध० प० श्री मोहन लालजी लोहिया, भिण्ड
२९० श्री अभयचन्द्रजी, अशोकनगर (म० प्र०)
२९१ ,, विलासचन्द्र मोतीचन्द्र मेहता, बम्बई
२९२. ,, दि० जैन मन्दिर पुराना बाजार, अशोकनगर
२९३. ,, अमरचन्द्रजी अजमेरा मंत्री दि जैन मंदिर कमेटी, भोपाल

संरक्षक सदस्यता—कोई भी महानुभाव एकमो एक रुपये प्रदान कर ग्रन्यमालाके संरक्षक सदस्य बन सकते हैं। समिति उनका स्वागत करेगी और उन्हें अपने प्रकाशित एवं प्रकाश्यमान ग्रन्थ भेट करेगी।

वर्णी ग्रन्थमालाके प्रकाशन

१	मेरी जीवन गाथा	भाग १	८-००
२	,, ,,	भाग २	४-२५
३	वर्णीवाणी	भाग १	६-००
४	,,	भाग २	४-००
५	,,	भाग ३	६-००
६	,,	भाग ४	३-५०
७	जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका)		१०-००
८	जैन दर्शन		१०-००
* ९	अनेकान्त और स्याद्वाद		०-२५
*१०	अपरिग्रह और विश्वशान्ति		०-२५
*११	पञ्चाध्यायी		९-००
*१२.	श्रावक धर्म प्रदीप		४-००
१३	तत्त्वार्थसूत्र		५-००
१४	द्रव्यसग्रह-भापावचनिका		४-०९
१५	अपभ्रंश प्रकाश		३-००
१६	मन्दिरवेदी प्रतिष्ठाकलशारोहण विधि (नया सस्करण)		२-००
१७.	सामायिक पाठ		०-६०
*१८	सत्यकी ओर (प्रथम कदम)		१-२५
१९	अध्यात्मपत्रावली		१-००
२०	आदिपुराणमें प्रतिपादित भारत		१२-००
२१.	समयसार-प्रवचन		१२-००
२२	तत्त्वार्थसार		६-००

---

* चिह्नांकित ग्रन्थ अप्राप्य हैं। उनके पुन प्रकाशनकी योजना है।